अनहद में बिसराम

प्रवचन-क्रम

1. संसार पाठशाला है...2
2. नास्तिकताः अनिवार्य प्रक्रिया..19
3. तप, ब्रह्मचर्य और सम्यक ज्ञान...33
4. वर्तमान क्षण की धन्यता..48
5. अंतःकरण का अतिक्रमण...64
6. ऋषि पृथ्वी के नमक हैं...87
7. गुरु तीर्थ हैं...101
8. चिंतन नहीं--मौन अनुभूति...119
9. पहले ध्यान--फिर सेवा...132 10...सत्य की उदघोषणा 149

1

अनहद में बिसराम
पहला प्रवचन

संसार पाठशाला है

पहला प्रश्नः ओशो, विश्राम के लिए अनंत आकाश में उड़ने वाला पक्षी घास
का छोटा सा घोंसला बनाता है। और विश्राम के लिए आदमी ने पहले गुफा खोजी, और फिर झोपड़ा और मकान बनाया। और आप आज अनहद में बिसराम की चर्चा शुरू कर रहे हैं।
ओशो, यह अनहद में बिसराम क्या है, यह हमें समझाने की कृपा करें।

आनंद मैत्रेय!
विश्राम के लिए पक्षी घोंसला बनाए, इसमें तो कुछ भी अड़चन नहीं।
क्योंकि घोंसले में किया गया विश्राम, आकाश में उड़ने की तैयारी का अंग है।
आकाश से विरोध नहीं है घोंसले का। घोंसला सहयोगी है, परिपूरक है। सतत तो कोई आकाश में उड़ता नहीं रह सकता। देह तो थकेगी। देह को विश्राम की जरूरत भी पड़ेगी।
इसलिए घोंसला शुभ है, सुंदर है, सुखद है। इतना ही स्मरण रहे कि घोंसला आकाश नहीं है। सुबह उड़ जाना है; रैन बसेरा है। लक्ष्य तो आकाश ही है; घोंसला पड़ाव है। गंतव्य, मंजिल, वह तो अनंत आकाश है; वह तो सीमाओं के पार जाना है। क्योंकि जहां तक सीमा है, वहां तक दुख है; सीमा ही दुख है। सीमा में होना अर्थात कारागृह में होना। जितनी सीमाएं होंगी, उतना ही आदमी जंजीरों में होगा। सब सीमाएं टूट जाएं, तो सब जंजीरें गिर जाएं।
कारागृह से इस मुक्ति के उपाय का नाम ही धर्म है।
संसार का अर्थ है, कारागृह से चिपट जाना; कारागृह को पकड़ लेना; जंजीरों को आभूषण समझ लेना। तोड़ने की तो बात दूर, कोई तोड़े तो उसे तोड़ने न देना। सपनों को सत्य समझ लेना और रास्ते के पड़ावों को मंजिल मान कर रुक जाना। बस, संसार का इतना ही अर्थ है। संसार न तो दुकान में है, न बाजार में है; न परिवार में है, न संबंधों में है। संसार है इस भ्रांति में, जो पड़ाव को मंजिल मान लेती है। संसार है इस अज्ञान में, जो क्षण भर के विश्राम को शाश्वत आवास बना लेता है।
घोंसला बनाओ; जरूर बनाओ, सुंदर बनाओ, प्रीतिकर बनाओ। तुम्हारे सृजन
की छाप हो उस पर। तुम्हारे व्यक्तित्व के हस्ताक्षर हों उस पर। फिर घोंसला हो, कि झोपड़ा हो, कि मकान हो, कि महल हो, अपनी सृजनात्मक ऊर्जा उसमें उंडेलो। मगर एक स्मरण कभी न चूके, सतत एक ज्योति बोध की भीतर जलती रहेः यह सराय है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, इसे छोड़ कर जाना है; जाना ही पड़ेगा। तो जिसे छोड़ कर जाना है, उसे पकड़ना ही क्यों? रह लो; जी लो; उपयोग कर लो। आग्रह न हो, आसक्ति न हो।
दो तरह के लोग हैं। एक हैं, जो संसार में रहते हैं और संसार में गहन आसक्ति निर्मित कर लेते हैं। दूसरे हैं, जो संसार से भाग खड़े होते हैं। जिनको हमने सदियों तक संन्यासी कहा है, थे वे केवल भगोड़े। उन्हें हमने पूजा है; उनकी हमने अर्चना की है। उनके लिए हमने दीए जलाए, धूप बारी; उनके ऊपर हमने फूल चढ़ाए, केसर छिड़की। क्योंकि हमें लगा कि अपूर्व, अद्वितीय, असंभव कार्य उन्होंने कर दिखाया है। हमसे तो छूटता नहीं, और वे छोड़ कर चले गए!
लेकिन उनसे भी छूटा नहीं है। असल में कहीं पकड़ न जाएं, इस डर से भाग खड़े हुए हैं। छूटने में और छोड़ने में फर्क है। छूटना तो बोध की प्रक्रिया है; वह तो सम्यक जागरण है; उसकी सहज निष्पत्ति है।
दो फकीर एक जंगल में यात्रा करते थे, गुरु और शिष्य। बूढ़ा गुरु, युवा शिष्य। युवा शिष्य बहुत हैरान था! हैरान था इसलिए कि ऐसी बात उसने अपने गुरु में कभी देखी ही न थी। कुछ नई ही बात हो रही थी आज। गुरु बार-बार अपनी झोली में हाथ डाल कर कुछ टटोल लेता था। थोड़ी देर में फिर! थोड़ी देर में फिर! झोली में उसका जी अटका था। शिष्य सोचता था कि क्या झोली में है आज!

उसे कभी चिंतित नहीं देखा। उसे कभी झोली में बार-बार झांकते नहीं देखा। आज क्या माजरा है!
फिर सांझ होने लगी, सूरज ढलने लगा। वे एक कुएं पर हाथ-मुंह धोने, थोड़ा विश्राम करने, थोड़ा कलेवा कर लेने को रुके। गुरु पानी भरने लगा। झोला उसने अपने शिष्य को दिया और कहा, जरा सम्हाल कर रखना!
ऐसा भी उसने कभी कहा न था। झोला यूं ही रख देता था। न मालूम कितने घाटों पर और न मालूम कितने कुओं पर रुकना हुआ था। आज क्या बात है! उत्सुकता जगी। जब गुरु पानी भरने लगा, तो शिष्य ने झांक कर झोले में देखा। सोने की एक ईंट झोले में थी! सब राज खुल गया। उसने ईंट को तो निकाल कर झोले के बाहर कुएं के पास फेंक दिया एक गड्ढे में और उसी वजन का एक पत्थर झोले में रख दिया।
गुरु ने जल्दी से हाथ-मुंह धोया, नाश्ता किया। बीच-बीच में झोले पर नजर भी रखी। एक-दो बार चेताया भी शिष्य को कि झोले का ख्याल रखना। शिष्य हंसा, उसने कहा, पूरा ख्याल है; आप बिल्कुल निष्फिक्र रहें। चिंता की अब कोई बात ही नहीं!
जैसे ही निपटे, चलने को आगे बढ़े, गुरु ने जल्दी से झोला वापस ले लिया। अक्सर तो यूं होता था कि झोला शिष्य को ही ढोना पड़ता था। आज गुरु शिष्य पर झोले का बोझ डालने को राजी न था! जल्दी से झोला अपने कंधे पर ले लिया। बाहर से ही टटोल कर देखाः वजन पूरा है; ईंट भीतर है। निश्चिंत हो चलने लगा।
फिर बार-बार कहने लगा, रात हुई जाती है। दूर किसी गांव का टिमटिमाता दीया भी दिखाई पड़ता नहीं! जंगल है। अंधेरा है। अमावस है। चोर, लफंगे, लुटेरे--कोई भी दुर्घटना घट सकती है। जब भी गुरु यह कहे, शिष्य हंसे।
आखिर गुरु ने दो मील चलने के बाद पूछा कि तू हंसता क्यों है?
शिष्य ने कहा, मैं इसलिए हंसता हूं कि अब आप बिल्कुल निश्चिंत हो जाएं। आपकी चिंता का कारण तो मैं कुएं के पास ही फेंक आया हूं।
तब घबड़ा कर गुरु ने झोले में हाथ डाला। देखा तो पत्थर था! सोने की ईंट
तो जा चुकी थी! क्षण भर को तो सदमा लगा। छाती की धक-धक रुक गई होगी। श्वास ठहरी की ठहरी रह गई होगी। लेकिन फिर बोध भी हुआ। बोध यह हुआ कि दो मील तक झोले में तो पत्थर था, लेकिन मैं यूं मान कर चलता रहा कि सोने की ईंट है, तो मोह बना रहा। जिंदगी भर भी अगर मैं यह मान कर चलता रहता कि सोने की ईंट है, तो मोह बना रहता। मोह ईंट में नहीं था, मेरी भ्रांति में था। मोह ईंट में होता, तो इन दो मीलों तक मोह के होने का कोई कारण न था; चिंता की कोई वजह न थी। मेरी आसक्ति मेरे भीतर थी, बाहर की ईंट में नहीं। जिंदगी भर भी आसक्त रह सकता था, अगर यह भ्रांति बनी रहती कि ईंट सोने की है। और तत्क्षण भ्रांति टूट गई, जैसे ही जाना कि ईंट पत्थर की है।
झोला वहीं गिरा दिया। खिलखिला कर हंसा। वहीं बैठ रहा। कहा, अब कहां जाना है? अब गांव वगैरह खोजने की कोई जरूरत नहीं। वैसे ही बहुत थके हैं। अब आज रात इसी वृक्ष के नीचे सो रहेंगे।
शिष्य ने कहा, अंधेरा है! अमावस है! चोर हैं, लुच्चे हैं, लफंगे हैं, लुटेरे हैं!
गुरु ने कहा, रहने दे। अब कुछ भेद नहीं पड़ता। अब अपने पास ईंट ही नहीं, अपने पास सोना ही नहीं, तो लूटने वाला भी क्या लूटेगा!
इसे मैं छूटना कहता हूं। छोड़ा नहीं, छूटा। एक बोध जगा। एक समझ गहरी हुई। एक बात साफ हो गई कि सब उपद्रव भीतर है, बाहर नहीं। बाहर तो सिर्फ बहाने हैं, निमित्त, खूंटियां, जिन पर हम अपने भीतर के उपद्रव टांग देते हैं। फिर धन हो, पद हो, प्रतिष्ठा हो, परिवार हो, प्रियजन हों, मित्र हों, देह हो, मन हो--कोई भी बहाना काम दे देगा। लेकिन अगर भीतर टांगने को ही कुछ न बचा हो, तो फिर सब बहाने रहे आएं, क्या फर्क पड़ता है! फिर बाजार में बैठो कि मरघट में, बराबर है।
वे जो भगोड़े हैं, उनसे संसार छूटा नहीं है; उन्होंने छोड़ा है। और दोनों शब्दों में उतना ही भेद है, जितना जमीन और आसमान में। छूटना तो बोध से होता है; छोड़ना भय से होता है। भय और बोध का क्या नाता? क्या संबंध? वे तो विपरीत हैं; उनका तो कभी मिलन होता ही नहीं। बोध और भय? भय तो पलता है

अंधेरे में। और बोध जगता है उजेले में। बोध है सुबह; और भय है अमावस की रात। दोनों का कैसा मिलन?
वे जो भाग गए हैं छोड़ कर, छिप गए हैं जाकर पहाड़ियों में, गुफाओं में, वे सिर्फ भयभीत हैं, डरे हुए हैं। डर है कि संसार में अगर रहे, तो आसक्ति पकड़ लेगी।
मगर संसार ने कभी किसी को पकड़ा है? तुम कल न मरो, आज मर जाओ, तो संसार तुम्हें क्षण भर न रोकेगा--कि न जाओ; कि ठहरो; कि कुछ देर तो ठहरो! तुम्हारे बिना कैसे चलूंगा! कि तुम्हारे अभाव में, तुम्हारे बिना सब अस्तव्यस्त हो जाएगा, अराजकता हो जाएगी। तुम नहीं, तो फिर जिंदगी कहां! रुक जाओ, ठहर जाओ! थोड़ी देर और। जरा सम्हल लेने दो; परिपूरक खोज लेने दो; फिर चले जाना। ऐसी जल्दी क्या है?
कल के मरते आज मर जाओ, संसार को क्या पड़ी है! कुछ अंतर ही नहीं पड़ता। कितने लोग आए, कितने लोग गए! कितने लोग आते रहे, जाते रहे! कितने लोग आते रहेंगे, जाते रहेंगे! संसार अपनी जगह है। संसार तुम्हें पकड़ता नहीं। तुम संसार को पकड़े हुए हो।
इसलिए छोड़ कर कहां भाग रहे हो? अगर पकड़ने की आदत तुम्हारी है, तो तुम्हारे साथ चली जाएगी। उसे कैसे छोड़ोगे? वह तो भीतर है। तो हो सकता है, महल छोड़ दो; झोपड़ा पकड़ लोगे। सिंहासन छोड़ दो; लंगोटी पकड़ लोगे। तिजोरियां छोड़ दो, भिक्षापात्र पकड़ लोगे। राज्य छोड़ दो, कुछ अंतर न पड़ेगा, एक वृक्ष के नीचे बैठ रहोगे, उस पर कब्जा कर लोगे कि यह मेरा वृक्ष! इसके नीचे कोई और अड्डा न जमाए! किसी और की धूनी न लगे! पकड़ोगे तुम जरूर। क्योंकि पकड़ कहीं यूं जाती है! पकड़ तो केवल समझ से जाती है।
इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूं, भागना मत। भागना है भय। और भय
तो कायरता है। और कायर तो संसार भी नहीं पा सकता, सत्य को क्या खाक पाएगा! इसलिए मेरे मन में भगोड़ों के प्रति कोई आदर नहीं, कोई सम्मान नहीं। वे चाहे कितने ही बड़े भगोड़े रहे हों, और चाहे उन्होंने कितने ही लोगों को प्रभावित कर दिया हो।
लोग तो अपने से विपरीत व्यक्ति से प्रभावित हो जाते हैं। एक आदमी सिर
के बल खड़ा हो जाए और भीड़ लग जाएगी। अब यूं सिर के बल खड़ा होना कोई बड़ी बात नहीं। कोई भी मूढ़ कर सकता है। सच तो यह है, सिवाय मूढ़ के और कौन करेगा!
अगर परमात्मा को तुम्हें सिर के बल ही खड़ा करना था, तो उसने सिर में टांगें उगा दी होतीं। परमात्मा शीर्षासन में बहुत उत्सुक नहीं है। अगर परमात्मा को ही तुम्हें कांटों की सेज पर लिटाना होता, तो तुम्हारे साथ ही कांटों की सेज भेज दी होती; इंतजाम कर दिया होता। उसने तुम्हारे प्रवास के लिए पूरा इंतजाम करके भेजा है। अगर परमात्मा उत्सुक होता तुम्हारे उपवासों में, तो उसने तुम्हें भूखा रखने की कला ही सिखा दी होती। अरे, जो भूख दे सका, वह भूखापन नहीं दे सकता था? अगर परमात्मा उत्सुक होता कि तुम छोड़ दो प्रियजन, तुम छोड़ दो मित्रजन, तुम छोड़ दो परिवार, तुम छोड़ दो लोग, तो तुम्हें परिवार में और प्रियजनों में, मित्रों में पैदा ही क्यों करता? यूं ही जैसे आकाश से वर्षा होती है, तुम भी बरस गए होते!
जार्ज गुरजिएफ कहा करता था कि तुम्हारे महात्मा, तुम्हारे सभी महात्मा परमात्मा के दुश्मन मालूम होते हैं। परमात्मा एक काम करता है, तुम्हारे महात्मा उससे उलटा काम करने को बताते हैं!
लेकिन राज है। राज यह है कि परमात्मा तो तुम्हें सहज, स्वाभाविक बनाता है; महात्मा तुम्हें असहज, अस्वाभाविक बनाते हैं। क्योंकि असहज, अस्वाभाविक होकर ही तुम आकर्षण के बिंदु बनते हो। लोगों के लिए तुम्हारे प्रति सम्मान तभी पैदा होगा, जब तुम कुछ उलटा करो।
अमरीका में एक विचारक हुआ, राबर्ट रिप्ले। वह प्रसिद्ध होना चाहता था। कौन प्रसिद्ध नहीं होना चाहता? चाहता था सारी दुनिया उसे जान ले। गांव में एक बहुत बड़ा सरकस आया हुआ था। सोचा उसने कि सरकस इतना प्रसिद्ध है, जग-जाहिर है; इसके मैनेजर को जरूर कुछ सूत्र पता होंगे प्रसिद्धि के। तो मैनेजर से उसने अलग से मुलाकात ली और कहा कि मुझे भी कुछ राज बताओ! मैं भी प्रसिद्ध होना चाहता हूं!

मैनेजर ने यूं ही मजाक में कहा... । सरकस का ही मैनेजर था; धंधा ही मजाक
का था, तमाशबीनी का था। उसने कहा, इसमें क्या खास बात है! तुम अपने सिर के आधे बाल कटा लो, और चुपचाप, बिना कुछ बोले, जमीन पर टकटकी बांधे पूरे न्यूयार्क की सड़कों पर चक्कर काटते रहो। तीन दिन बाद आना।
तीन दिन बाद वह आया, तो साथ में अखबारों की बहुत सी कटिंग भी लाया। क्योंकि अखबारों में तस्वीरें ही छप गईं। चर्चा हो गई गांव में घर-घर में कि यह कौन है आदमी! आधे सिर के बाल कटाए हुए! कौन प्रसिद्ध न हो जाएगा? रिप्ले ने मैनेजर को बहुत धन्यवाद दिया और कहा, अब आगे के लिए कुछ और बताएं! न्यूयार्क में तो जलवा हो गया; डुंडी पिट गई। एक बच्चा ऐसा नहीं है, जो न जानता हो। गांव-गांव, आस-पास भी खबर फैलने लगी।
मैनेजर ने कहा, अब तुम ऐसा करो, एक बड़ा आईना खरीदो। उस आईने को अपनी कमर पर बांध लो। आईने में देखो, तो पीछे का रास्ता दिखाई पड़ेगा। और बस पीछे की तरफ चलो, आगे की तरफ नहीं। और सारे अमरीका का चक्कर लगा डालो।
और रिप्ले ने वही किया। और चक्कर पूरा होते-होते अमरीका में ही नहीं, सारी दुनिया में प्रसिद्ध हो गया--यह कौन आदमी है!
और उससे कहा, तू बिल्कुल चुप रहना। बोलना है ही नहीं! जितना चुप रहेगा, उतना ही अच्छा। बोले, तो कहीं बात न खुल जाए! बुद्धिमान आदमी का बोलना अच्छा, बुद्धू का चुप रहना अच्छा। क्योंकि बुद्धू चुप रहे तो बुद्धिमान मालूम होता है!
सो रिप्ले बिल्कुल चुप रहा। लाख लोगों ने पूछा। मुस्कुराए! कुछ कहे
ही न। अरे, राज की बातें कहीं कही जा सकती हैं! शब्दातीत! कहो भी तो कैसे कहो? अनिर्वचनीय! प्रवचन से तो मिलती नहीं। बोलने से तो मिलती नहीं। कहने से तो कही नहीं जाती। हस्तांतरणीय नहीं। कोई जानने वाला ही जान ले, तो जान ले।
और मजा तो तब हुआ, जब रिप्ले ने पाया कि कुछ उसके शागिर्द भी पैदा हो गए; उसके पीछे-पीछे चलने लगे। उन्होंने भी छोटी-छोटी व्यवस्थाएं कर लीं। जिससे जैसा दर्पण बन सका, ले आया। अकेला नहीं, अब रिप्ले की एक कतार चलने लगी! और वे भी सब चुप। अरे जब गुरु ही चुप है, तो शिष्य भी चुप!
कुछ भी, जो सामान्य नहीं है, असामान्य है; जो स्वाभाविक नहीं है, अस्वाभाविक है; उससे लोग प्रभावित होते हैं। लोगों को प्रभावित करना अहंकार की बड़ी गहरी अभीप्सा है।
ये जो भगोड़े हैं, इनसे लोग प्रभावित हुए। इनसे प्रभावित होने का कुल कारण इतना था कि ये कुछ कर रहे थे, जो अस्वाभाविक था। स्वाभाविक आदमी से कौन प्रभावित होगा?
जापान का एक सम्राट सदगुरु की तलाश कर रहा था। बहुत तलाश की; सदगुरु न मिला सो न मिला। जो-जो नाम ज्ञात थे, परिचित थे, पहचाने थे, वहां-वहां गया, लेकिन तृप्ति न हुई। अपने बूढ़े वजीर से पूछा कि मैं तो युवा हूं, तुम तो बूढ़े हुए। तुम्हें तो कुछ पता होगा। कोई तो ऐसा आदमी होगा... ।
वह बूढ़ा हंसने लगा। उसने कहा, आदमी तो हैं, लेकिन तुम न पहचान सकोगे। क्योंकि सच्चा सदगुरु बिल्कुल सहज, स्वाभाविक होगा। उसमें कोई सींग थोड़े ही निकले होते हैं, जो तुम पहचान लोगे! तुम तलाश कर रहे हो किसी उलटे-सीधे आदमी की। लोग तो मिलेंगे बहुत उलटे-सीधे। मगर जो अभी खुद ही उलटे-सीधे हैं, वे तुम्हें क्या लाख उपाय भी करें तो मार्गदर्शन दे सकेंगे? तुम्हें भी और अस्तव्यस्त कर देंगे। तुम वैसे ही अराजक अवस्था में हो, वे तुम्हें और अराजक कर देंगे। मैं एक आदमी को जानता हूं... ।
सम्राट तो उत्सुक था। वजीर को कहा, मैं चलने को राजी हूं।
वे दोनों गए मिलने उस फकीर को। वजीर तो चरणों पर गिर पड़ा फकीर के, लेकिन सम्राट उस आदमी को देख कर इस योग्य न पाया कि इसके चरणों में गिरे। आदमी बिल्कुल साधारण था। और काम भी क्या कर रहा था! लकड़ियां काट रहा था। अब कहीं सदगुरु लकड़ी काटते हैं? कि कहीं महावीर लकड़ी काटते मिले जाएं! कि बुद्ध लकड़ी काटते मिल जाएं! सदगुरु कहीं लकड़ियां काटते हैं? सम्राट ने अपने वजीर से कहा कि यह आदमी लकड़ियां काट रहा है! इसकी क्या खूबी है? वजीर ने कहा, इसकी यही खूबी है। इसी से पूछो कि इसकी साधना क्या है! तो पूछा फकीर से कि तेरी साधना क्या है?

फकीर कोई और न था, झेन सदगुरु था, बोकोजू। उसने कहा, मेरी कोई साधना नहीं। जब भूख लगती है, तो भोजन कर लेता हूं। और जब नींद आती है, तो सो जाता हूं। मेरी कोई और साधना नहीं है।
सम्राट ने कहा, लेकिन यह कोई साधना हुई? यह भी कोई साधना हुई? यह तो हम सभी करते हैं। जब भूख लगती है, भोजन करते हैं। जब नींद आती है, सो जाते हैं। बोकोजू ने कहा कि नहीं। इतने जल्दी निष्कर्ष न लो। कई बार तुम्हें भूख नहीं लगती, और तुम भोजन करते हो। और कई बार तुम्हें भूख लगती है, और तुम भोजन नहीं करते। और कई बार तुम्हें नींद आती है, और तुम सोते नहीं। और कई बार तुम्हें नींद नहीं आती, और तुम सोने की चेष्टा करते हो। इतना ही नहीं, तुम जब भोजन करते हो, तब और भी हजार काम करते हो। यंत्रवत भोजन करते रहते हो, और मन न मालूम किन-किन लोकों में भागा रहता है! और जब तुम सोते हो, तब तुम सिर्फ सोते ही नहीं। कितने-कितने सपने देखते हो! कहां-कहां नहीं जाते! क्या-क्या नहीं करते! मन का व्यापार जारी रहता है। मैं जब भोजन करता हूं, तो सिर्फ भोजन ही करता हूं। बस, भोजन ही करता हूं। उस वक्त भोजन करने के सिवाय बोकोजू में और कुछ भी नहीं होता। और जब सोता हूं, तो सिर्फ सोता हूं; उस समय सोने के सिवाय बोकोजू में और कुछ भी नहीं होता। और जब मुझे नींद आती है, तो मैं एक क्षण भी टालता नहीं; तत्क्षण सो जाता हूं।
बोकोजू के संबंध में कहानियां हैं कि कभी-कभी बीच प्रवचन में देते- देते सो जाता था! नींद आ गई, तो बोकोजू क्या करे? इतना नैसर्गिक आदमी! और ब्रह्ममुहूर्त में नहीं उठता था। और जब किसी ने पूछा उससे कि फकीर को तो ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए। तुम ब्रह्ममुहूर्त में नहीं उठते? बोकोजू ने कहा, मैंने परिभाषा बदल ली अनुभव से। फकीर जब उठे, तब ब्रह्ममुहूर्त। जब नींद खुले, तो भीतर का ब्रह्म जागना चाहता है, यह ब्रह्ममुहूर्त।
और जब भीतर का ब्रह्म सोना चाहता है, तो तुम अलार्म भर कर और जबरदस्ती उठने की कोशिश कर रहे हो। ठंडा पानी छिड़क रहे हो आंखों पर। राम-राम जप रहे हो। भाग-दौड़ कर रहे हो, दंड-बैठक लगा रहे हो कि किसी तरह नींद टूट जाए। क्योंकि स्वर्ग जो जाना है! ब्रह्ममुहूर्त में जगे बिना स्वर्ग तो जा न सकोगे!
बोकोजू कहता, जब नींद खुल गई, तब ब्रह्ममुहूर्त।
तो कभी-कभी दोपहर तक सोया रहता। और कभी-कभी आधी रात तक जागा रहता। जब नींद आएगी, तब सोएगा। जब भूख लगी, तो भोजन करेगा। कभी-कभी दिन, दो दिन बीत जाते और भोजन न करता। वह उपवास न था। और कभी-कभी दिन में दो बार भोजन करता। इतना नैसर्गिक!
मगर ऐसे आदमी से कौन प्रभावित हो? हम तो उलटे-सीधे लोगों से प्रभावित होते हैं। इसलिए भगोड़ों ने मनुष्य को बहुत ज्यादा प्रभावित किया। वे हमसे उलटे थे। और हमसे उलटे थे इसलिए, मैं तुमसे कहता हूं, हम से जरा भी भिन्न न थे। हम जैसे ही थे। बस, हम पैर के बल खड़े हैं; वे सिर के बल खड़े थे। हम सोने के पीछे दीवाने हैं; वे डरते थे कि कहीं सोना छू न जाए। हम स्त्रियों के पीछे भागे जा रहे हैं, वे स्त्रियों के प्रति पीठ करके भागे जा रहे थे। मगर भाग जारी थी। और दोनों का केंद्र स्त्री थी। एक स्त्री की तरफ भाग रहा है; एक स्त्री से भाग रहा है। मगर दोनों की नजर स्त्री पर अटकी है। एक कहता है कि स्त्री में ही स्वर्ग है। और एक कहता है, स्त्री नर्क का द्वार है। मगर दोनों के लिए स्त्री महत्वपूर्ण है। किसी के लिए स्वर्ग का द्वार; किसी के लिए नर्क का द्वार। मगर द्वार स्त्री ही है।
मगर स्त्री से छुटकारा नहीं है ऐसे। न पुरुष से छुटकारा है। न धन से छुटकारा है।
विश्राम बनाने के लिए, विराम में जाने के लिए पक्षी घोंसले बनाते हैं, मनुष्य झोपड़े बनाते हैं या महल बनाते हैं। कुछ बुरा नहीं। बस, इतनी ही याद रहे कि उन सीमाओं में आबद्ध न हो जाना। वे सीमाएं तुम्हारी सीमाएं नहीं हैं। कोई सीमा तुम्हारी सीमा नहीं है। रहो जरूर, मगर अतिथि की तरह रहना; आतिथेय मत हो जाना। मेहमान की तरह रहना; मेजबान न हो जाना। तो फिर तुम जहां हो, वहीं संन्यासी हो।
आनंद मैत्रेय! तुमने पूछा कि "विश्राम के लिए अनंत आकाश में उड़ने वाला पक्षी घास का छोटा सा घोंसला बनाता है... ।"

वह उड़ने के लिए जरूरी है। उड़ने के लिए शक्ति संयोजित करनी होगी। जागने के लिए सोना होगा। भागने के लिए बैठना होगा। नहीं तो ऊर्जा विनष्ट हो जाएगी। वह घोंसला आकाश का दुश्मन नहीं है, संगी-साथी है; आकाश का हिस्सा है; आकाश ही है।
मगर कोई पक्षी घोंसले को पकड़ कर नहीं बैठ जाता। तुमने देखा! अंडे फूटते हैं; नए पक्षी पैदा होते हैं। रुकते हैं तब तक घोंसले में, जब तक उड़ने के योग्य नहीं हो जाते। और जिस दिन उड़े कि उड़े। फिर लौट कर आते ही नहीं। फिर घोंसले बनाएंगे, जब उनको खुद अंडे रखने होंगे।
जरूरत है, तो उपयोग करो। संसार का उपयोग करो।
संसार नहीं बांधता है। संसार से भागो मत, जागो।
तुम कहते हो, "और विश्राम के लिए आदमी ने पहले गुफा खोजी, फिर झोपड़ा और मकान बनाया। और आज आप अनहद में बिसराम की चर्चा शुरू कर रहे हैं... ।"
यह अनहद में विश्राम अंतिम विश्राम है। यह आखिरी घोंसला है। फिर उसके पार और मकान नहीं बनाने पड़ते। शाश्वत घर मिल गया, फिर क्या मिट्टी के घरघूले बनाने! क्या फिर रेत के मकान बनाने! जो अभी बनाए और अभी गिरे! फिर क्या क्षणभंगुर में समय को व्यतीत करना है और व्यर्थ करना है! अनहद में बिसराम, दरिया की इस अदभुत सूचना का अंग हैः
जात हमारी ब्रह्म है, माता-पिता है राम।
गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में बिसराम।।
इस सूत्र को समझ लो। यह सूत्र संन्यास का सार है।
"जात हमारी ब्रह्म है।"
जात का अर्थ होता है, जहां से हम जन्मे; जो हमारा वास्तविक जीवन-स्रोत है। इसलिए तुम्हारी जात हिंदू नहीं है, और मुसलमान नहीं है, और ईसाई नहीं है। क्योंकि बच्चा जब पैदा होता है, उसे पता ही नहीं होता कि हिंदू है, कि ईसाई है, कि मुसलमान है। बच्चा जब पैदा होता है, तो न तो संस्कृत बोलता है, न अरबी बोलता है, न लैटिन, न ग्रीक।
मैंने सुना है, एक फ्रेंच दंपति, जिनके बच्चे पैदा नहीं होते थे, एक अनाथ आश्रम से एक स्वीडिश बच्चे को गोद ले लिए। जिस दिन उन्होंने स्वीडिश बच्चे को गोद लिया, फ्रेंच दंपति ने, दोनों ने ही एक स्वीडिश शिक्षिका रख ली और स्वीडिश भाषा सीखने लगे। अचानक! पास-पड़ोस के लोगों ने पूछा कि क्या हुआ? स्वीडिश भाषा किसलिए सीख रहे हो? क्या स्वीडन में बस जाने का इरादा है? या कि स्वीडन की लंबी यात्रा पर जा रहे हो?
उन्होंने कहा, नहीं-नहीं। एक स्वीडिश बच्चे को गोद लिया है। इसके पहले कि वह बड़ा हो और स्वीडिश भाषा में बोलना शुरू करे, हमें कम से कम स्वीडिश तो सीख लेनी चाहिए। नहीं तो हम समझेंगे क्या खाक कि वह क्या बोल रहा है!
बच्चे न तो स्वीडिश बोलते हैं, न फ्रेंच, न हिंदी, न अंग्रेजी। बच्चों
की कोई भाषा नहीं होती; शून्य उनकी भाषा होती है; मौन उनकी भाषा होती है। और उनकी कोई जात नहीं होती। हिंदू नहीं, मुसलमान नहीं, ईसाई नहीं। सब जातें हम थोप देते हैं। और क्या गजब हुआ है! जातों पर जातें थोपे चले जाते हैं। हिंदू होने से ही काम नहीं चलता। फिर उसमें ब्राह्मण; फिर उसमें क्षत्रिय; फिर वैश्य; फिर शूद्र। इतने से भी काम नहीं चलता। फिर अब ब्राह्मणों में भी कोंकणस्थ और देशस्थ!
विनोबा भावे से किसी ने पूछा कि आप कोंकणस्थ ब्राह्मण हैं या देशस्थ? विनोबा ने अपनी सूझ-बूझ के हिसाब से ठीक ही उत्तर दिया, हालांकि मुझे कुछ बहुत ठीक नहीं लगता। उन्होंने कहा, न तो मैं कोंकणस्थ ब्राह्मण हूं, न देशस्थ। मैं तो स्वस्थ ब्राह्मण हूं।
बात तो ठीक है। लेकिन मेरा इतना ही निवेदन है कि इसमें पुनरुक्ति है। स्वस्थ, ब्राह्मण, दोनों का एक ही अर्थ होता है। स्वस्थ का अर्थ होता है, स्वयं में स्थित हो जाना। और ब्राह्मण का अर्थ होता है, स्वयं के ब्रह्म को जान लेना। इसलिए स्वस्थ ब्राह्मण, एक ही बात को कहने के लिए दो शब्द उपयोग कर रहे हो। उचित नहीं है। ब्राह्मण होना काफी है। स्वस्थ होना काफी है। स्वस्थ ब्राह्मण होने की कोई जरूरत नहीं है। एक ही बात को कहने के लिए दो शब्द क्यों उपयुक्त करने? क्यों उपयोग करना?

लेकिन यूं उनकी बात ठीक है कि कोंकणस्थ नहीं, देशस्थ नहीं। लेकिन खतरा यह है कि कुछ स्वस्थ ब्राह्मण पैदा हो सकते हैं। ऐसे ही तो जातियां पैदा होती हैं। विनोबा के पीछे चलने वाले ब्राह्मण कहने लग सकते हैं कि हम स्वस्थ ब्राह्मण हैं। फिर एक जाति पैदा हो गई।
क्या ब्राह्मण होना पर्याप्त नहीं है? क्या ब्रह्म होना काफी नहीं है? क्या ब्रह्म से और कोई परिष्कार हो सकता है? क्या ब्रह्म को सुंदर बनाया जा सकता है, कुछ और शब्द उस पर आरोपित कर दिए जाएं तो?
दरिया ठीक कहते हैंः "जात हमारी ब्रह्म है।"
तो न तो हम हिंदू हैं, न मुसलमान, न ईसाई; न ब्राह्मण, न शूद्र, न क्षत्रिय, न वैश्य। हम ब्रह्म से आए हैं। ब्रह्म का अर्थ है, जीवन का स्रोत; इस विराट अस्तित्व का मूल स्रोत। उस ब्रह्म से हमारा आना हुआ है, और उसी में हमें लौट जाना है। और जिसने इन दोनों के बीच--आने और जाने के बीच, आवागमन के बीच--उसको पहचान लिया, फिर उसका आवागमन मिट जाता है। जिसने जन्म और मृत्यु के बीच अपने भीतर के ब्रह्म को पहचान लिया, फिर उसे दुबारा आने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।
यह जीवन है ही इसलिए, पाठशाला है, कि हम अपने भीतर के ब्रह्म के प्रति सजग हो सकें, जाग सकें, पहचान सकें।
पहचान के लिए एक गणित ख्याल में रखना। मछली सागर में पैदा होती है, लेकिन जब तक सागर में रहेगी, उसे पता ही नहीं चलेगा कि सागर क्या है। खींच लो सागर से! कहो किसी मछुए से, निकाल ले मछली को सागर के बाहर। छोड़ दो तट पर, धूप में, तपी हुई रेत पर। तड़पने दो थोड़ा। और फिर उसे वापस सागर में छोड़ दो। मछली वही है, सागर वही है, लेकिन सब बात बदल गई। अब मछली जानती है कि सागर क्या है। पहले नहीं जानती थी। अब बोध हुआ। अब पता चला कि सागर ही मेरा जीवन है, मेरा आनंद है, मेरा उत्सव है। अब पता चला, सागर ही मेरा संगीत है; सागर ही मेरा नृत्य है। सागर से क्षण भर को छूटना, और नर्क और पीड़ा और दुर्दिन और दुर्भाग्य की शुरुआत!
हम ब्रह्म के सागर से आते हैं; मछलियां हैं, जो संसार के तट पर फेंक दी गईं। जान-बूझ कर फेंकी गई हैं, ताकि पाठ सीख लें। पाठ सीखने का एक ही उपाय है कि थोड़ी देर के लिए बिछुड़न हो जाए। अगर मिलन कभी टूटे ही न, तो बोध नहीं होता।
एक बहुत बड़े अमीर ने जीवन के अंतिम दिनों में तय किया कि सब मैंने पा लिया--धन, पद, प्रतिष्ठा; हीरों के ढेर लग गए--लेकिन सुख तो मैंने जाना नहीं, क्षण भर को न जाना। धन को पाने में दुख उठाया। धन पाकर कुछ सुख मिलता नहीं। धन तो है, लेकिन सुख कहां! और जीवन की अंतिम घड़ी पास आने लगी। सूरज ढलने लगा है। अब ढला, तब ढला। यह उतरने लगा पश्चिम में सूरज। कभी भी रात आ जाएगी। इसके पहले कि मौत आए, सुख को तो जानना ही है।
तो उसने एक बहुत बड़ी झोली में बहुमूल्य हीरे-जवाहरात भरे; अपने घोड़े
पर सवार हुआ। बहुत फकीरों के पास गया। और फकीरों से कहा, यह सारा धन देने को तैयार हूं। सुख की एक झलक दिखा दो!
मगर कौन सुख की झलक दिखाए? कैसे सुख की झलक दिखाए? उत्सुक तो फकीर भी
थे उसके धन को लेने में। और जो उसके धन को लेने में उत्सुक थे, वे क्या खाक सुख की झलक दिखाएंगे! अभी तो उनको खुद भी झलक नहीं मिली! अभी तो वे भी सोच रहे हैं कि धन मिल जाए, तो शायद झलक मिले! और आंख के होते हुए अंधे हैं। इस आदमी को धन मिल गया और धन का झोला लिए घूम रहा है कि मैं देने को तैयार हूं किसी को भी। एक झलक, बस एक झलक! एक नजर भर कर देख लूं सुख क्या है, कि सब निछावर कर दूंगा।
फिर एक सूफी फकीर की उसको खबर मिली। लोगों ने कहा, हम तो न दे सकेंगे झलक। सच तो यह है कि तुम्हारा धन देख कर हमारे भीतर तुमने लालच जगा दिया। हमारी न मालूम कितने दिनों की तपश्चर्या और साधना डगमगा दी। तुम भागो यहां से! ले जाओ अपना धन! हम पहुंचे ही जा रहे थे, पहुंचे ही जा रहे थे, कि तुमने चुका दिया। तुम खुद भी चूके और हमको भी चुका दिया। हां, एक फकीर है, वह जरा उलटा-सीधा फकीर है। शायद वही तुम्हारे काम आए।
तो गया धनपति। अपने घोड़े को रोका उस फकीर के वृक्ष के नीचे। फकीर को अपनी पूरी कथा सुनाई। फकीर ने गौर से सुनी। धनपति ने अपना झोला भी खोल कर

दिखाया। हीरे-जवाहरातों का ढेर था उसमें। अरबों-खरबों के होंगे। फकीर ने कहा, झोला बंद कर!
झोला धनपति ने बंद किया। लगा कि फकीर है तो कुछ पहुंचा हुआ। और दूसरे फकीरों को तो झोले में एकदम रस आ गया था। एकदम उनकी आंखों से लार टपकने लगी थी। वे तो भूल ही गए थे इसको सुख देने की बात। वे तो खुद ही के सुख पाने की आकांक्षा में तल्लीन हो गए थे।
इस फकीर ने कहा, बंद कर ये कचरे को! झोला बंद कर! फिर कुछ सुख दिखाने की बात बने। धनपति ने झोला बंद किया। यह फकीर जंचा। जिसने जीवन भर धन इकट्ठा किया हो, उसको ऐसा ही आदमी जंचता है। और जैसे ही उसने झोला बंद करके एक तरफ रखा, फकीर उठा और झोला लेकर भाग खड़ा हुआ!
एक क्षण को तो धनपति को कुछ समझ में ही नहीं आया कि क्या हो रहा है! किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा रह गया। जब होश आया, तब तक तो फकीर यह गया वह गया! नौ दो ग्यारह हो गया! उसको तो जगह परिचित थी। वह जंगल परिचित था; वह पास में ही बसा गांव परिचित था। इस धनपति को तो सब अपरिचित था। भागा एकदम उसके पीछे; बेतहाशा भागा। घोड़े को भी छोड़ गया। भूल ही गया घोड़े की बात। चिल्लाता हुआ, कि लुट गया! बर्बाद हो गया! मेरी जिंदगी भर की मेहनत पर पानी फेर दिया। अरे, यह कोई फकीर नहीं है; यह बदमाश है; लुच्चा है; चोर है! चिल्लाता जाए, भागता जाएः पकड़ो-पकड़ो!
सारा गांव खड़े होकर देख रहा था। गांव तो फकीर को जानता था। वह कई करतब
इस तरह के पहले कर चुका था! उसके कामों से तो लोग परिचित थे कि वह कुछ उलटा- सीधा करता है! कुछ किया होगा। कोई पकड़ने में उत्सुक नहीं दिखाई पड़ रहा था। और धनपति और भी हैरान था। फिर तो वह गालियां पूरे गांव को देने लगा कि पूरा गांव बदमाशों का, लुच्चों का है। यह फकीर तुम्हारा नेता है या क्या बात है! पकड़ते क्यों नहीं?
लोग हंस रहे थे, खिलखिला रहे थे। मगर उसके प्राणों पर बनी थी। हांफता, भागता, फकीर का पीछा करता रहा। फकीर वापस पहुंच गया उसी झाड़ के नीचे जहां घोड़ा खड़ा था अब भी। झोले को वहीं रख दिया जहां से उठाया था, झाड़ के पीछे जाकर खड़ा हो गया छिप कर।
थोड़ी ही देर बाद धनपति भी हांफता, पसीने से लथपथ, जिंदगी में कभी ऐसा दौड़ा नहीं था। मौका ही न आया था। झोला देखा, एकदम उठा कर छाती से लगा लिया और कहा कि हे परमात्मा! धन्य है तू। किन शब्दों में तेरा आभार करूं! आत्मा को ऐसी शांति मिल रही है, ऐसा सुख मिल रहा है, कभी नहीं मिला!
फकीर बोला, मिला? चलो थोड़ा दर्शन तो हुआ। झलक मिली?
यह धनपति को पता नहीं था कि वह झाड़ के पीछे छिपा है। फकीर बाहर आ गया; अपनी जगह बैठ गया। उसने कहा, देख, तू कहता था झलक दिखा दो, दिखा दी। अब अपने घर जा। अब आगे काम तू कर। तब धनपति को बोध आया। चरणों पर गिरा। कहा कि मैं पहचाना नहीं। लुच्चा-लफंगा चिल्लाया, गालियां दीं, पूरे गांव को गालियां दीं। अब मैं समझा कि वे गांव के लोग क्यों तुम्हें नहीं पकड़ रहे थे। वे तुम्हें जानते होंगे। मगर तुमने क्या गजब किया!
फकीर ने कहा, इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं था। यही परमात्मा की विधि है, और यही समस्त सदगुरुओं की विधि है। तुमसे जब तक हटा न लिया जाए, तब तक तुम्हें पता ही नहीं चलेगा। अचानक तुम्हें सुख मिल गया! यह झोला तो तुम्हारे पास सदा से था। पहले छाती से लगा कर परमात्मा को धन्यवाद नहीं दिया। आज क्यों धन्यवाद दे रहे हो? थोड़ी देर को मछली सागर से छूट गई।
यह संसार एक शिक्षण की व्यवस्था है। इसलिए जिन्होंने तुमसे कहा है संसार छोड़ दो, वे वे ही लोग हैं, जो तुम्हारे बच्चों को समझाएं कि स्कूल छोड़ दो; भाग खड़े होओ!
यह स्कूल है, इसे छोड़ना नहीं है। यहां कुछ सीखना है। यहां परमात्मा से विरह हो गया हमारा। वह जो हमारा मूल स्रोत है, उदगम है, ब्रह्म है, उससे हमारा नाता टूट गया है। इस विरह को भोगना है, ताकि फिर से मिलन की संभावना बन सके। और विरह के बाद जो मिलन है, उसका मजा ही और है।
"जात हमारी ब्रह्म है, माता-पिता है राम।"
जात भी हमने खो दी। न मालूम क्या-क्या बन कर बैठ गए हैं। जमीन पर कोई तीन सौ धर्म हैं। और तीन सौ धर्मों में कम से कम तीन हजार छोटी-छोटी

जातियां, उप-जातियां, और न मालूम क्या-क्या... कितना जाल फैला दिया है! और जिनको हम भले लोग कहें, उनके भीतर भी वही जाल है।
शंकराचार्य जैसे व्यक्ति को, जिनको भारतीय सोचते हैं वेदांत की पराकाष्ठा, उनको भी एक शूद्र ने छू दिया, तो वे नाराज हो गए। शंकराचार्य! पानी फेर दिया सब वेदांत पर; भूल गए सब बकवास कि जगत माया है और ब्रह्म सत्य है। तत्क्षण पता चला शूद्र सत्य है; ब्रह्म वगैरह कोई सत्य नहीं। एक शूद्र ने छू दिया। भूल गए ज्ञान; भूल गए चौकड़ी! एकदम क्रुद्ध हो गए और कहा कि मूढ़, शूद्र होकर तुझे इतनी समझ नहीं कि ब्राह्मण को छू दिया? और मैं अभी गंगास्नान करके आ रहा हूं!
स्नान करके वे चढ़ ही रहे थे दशाश्वमेध की सीढ़ियां, तभी उस शूद्र ने छू दिया। सुबह-सुबह का अंधेरा। अब मुझे फिर स्नान करना पड़ेगा!
उस शूद्र ने कहा, स्नान आप जरूर करिए। मगर इसके पहले कि स्नान करें, मेरे कुछ सवालों का जवाब दे दें। एक तो यह कि अगर संसार माया है, तो किसने किसको छुआ? अगर मैं हूं ही नहीं, अगर यह देह भ्रम है, तो दो भ्रम एक-दूसरे को छू सकते हैं? और अगर छू भी ले भ्रम भ्रम को, तो क्या हर्जा है? और तुम्हारा भ्रम पवित्र, और मेरा भ्रम अपवित्र? कुछ तो संकोच करो! कुछ तो लाज करो! कुछ तो अपने कहे का ख्याल करो! थूके को इतनी आसानी से तो न चाटो! फिर मैं यह भी पूछता हूं कि गंगा में स्नान करने से शरीर पवित्र हुआ कि आत्मा पवित्र हुई? पानी शरीर को छुएगा कि आत्मा को? अगर शरीर पवित्र हुआ है, तो शरीर क्या पवित्र हो सकता है? क्योंकि शरीर तो मिट्टी है। और तुम्हीं तो समझाते हो कि शरीर में कुछ भी नहीं है।
ये सारे महात्मागण समझाते हैं। खास कर स्त्रियों के शरीर में। क्योंकि ये सब लिखने वाले पुरुष हैं। यह तो बड़ी कृपा है कि स्त्रियों ने शास्त्र नहीं लिखे। लिखना चाहिए उन्हें। सारे पुरुष हैं लिखने वाले! स्त्रियों को तो पढ़ने भी नहीं देते। उनके लिए तो बना दिया है कुछ अलग ही हिसाब। रामायण पढ़ो; सत्यनारायण की कथा पढ़ो--कूड़ा-करकट! उपनिषद नहीं। जो कीमती है, वह नहीं। क्या स्त्री-बुद्धि समझेगी कीमती को! वह तो पुरुषों की बात है। पुरुष पढ़ेंगे उपनिषद। और स्त्रियां बाबा तुलसीदास की चौपाइयां रटेंगी।
और उन्हीं बाबा तुलसीदास की, जो कह गए स्त्रियों को कि ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी! स्त्रियां इन्हीं को घोट रही हैं। स्त्रियों को वेद पढ़ने की मनाही! और पुरुष स्त्रियों के संबंध में क्या- क्या कहते रहे! कि स्त्री का शरीर है क्या? मांस-मज्जा, मवाद, खून; वात, पित्त, कफ। जैसे पुरुष के शरीर में कोई हीरे-जवाहरात, स्वर्ण-भस्मी! यह पुरुष का शरीर आता कहां से है? यह आता है स्त्री के गर्भ से। वही वात, पित्त, कफ! लेकिन स्त्री का शरीर सिर्फ मल-मूत्तर और पुरुष का शरीर जीवनजल! जी भर कर पीओ!
यह देह तो देह है; यह क्या पवित्र होगी! और आत्मा तो पवित्र है ही; उसे कैसे पवित्र करोगे! उस शूद्र ने बड़े बहुमूल्य सवाल उठाए, जो बड़े-बड़े वेदांती नहीं उठा सके थे। शंकराचार्य अगर किसी व्यक्ति के सामने हतप्रभ हुए, तो वह शूद्र था।
मगर शंकराचार्य को भी ख्याल नहीं है कि जगत को ब्रह्म कह रहे हैं, तो इसका क्या अर्थ होगा! फिर कैसा ब्राह्मण? फिर कैसा शूद्र? जातियों पर जातियां बन गई हैं। बड़ी सेवा में रत हैं लोग; बड़े धार्मिक कार्यों में लगे हैं। मगर मौलिक भ्रांतियां वही की वही।
मदर टेरेसा को नोबल प्राइज मिली, क्योंकि उन्होंने गरीबों की बड़ी सेवा की। वह सरासर झूठ बात है। वह सिर्फ पाखंड है; ऊपरी बकवास है। भीतर बात कुछ और है। अनाथालय खोल रखे हैं; विधवा आश्रम खोल रखे हैं; वे तरकीबें हैं कि कैसे स्त्रियां, कैसे अनाथ बच्चे ईसाई हो जाएं। और ईसाई ही नहीं, कैथलिक ईसाई होने चाहिए।
अभी एक प्रोटेस्टेंट परिवार ने अमरीका से आकर मदर टेरेसा से प्रार्थना की कि हम एक बच्चे को गोद लेना चाहते हैं, हमारा कोई बच्चा नहीं है। तो उन्हें फार्म दिया गया भरने को, जिस फार्म में पहली बात यह थी कि बच्चा तभी गोद मिल सकता है, जब आप कैथलिक ईसाई हों। वह प्रोटेस्टेंट

परिवार तो हैरान हुआ। उसने कहा, ईसाई हम भी हैं; ईसाई तुम भी हो। थोड़ा सा फर्क है कि हम प्रोटेस्टेंट हैं, तुम कैथलिक हो। कोई भारी फर्क नहीं। वही बाइबिल मानते हैं हम, वही जीसस; वही तुम वही हम। थोड़े कुछ दो कौड़ी के भेद हैं। और तुम तो मनुष्य-जाति की सेवा में तत्पर हो। तुम्हें क्या फर्क पड़ता है?
लेकिन नहीं। प्रोटेस्टेंट परिवार को ईसाई होते हुए भी बच्चा गोद लेने
का हक नहीं दिया गया।
ये सब जालसाजियां हैं। ऊपर बड़ी ऊंची-ऊंची बातें हैं! ये अनाथालय, ये विधवा आश्रम, यह दीन-दरिद्रों की सेवा और कुछ भी नहीं है, सिवाए कैथलिक ईसाई धर्म का प्रचार। कैसे कैथलिकों की संख्या दुनिया में बढ़ जाए! पुराने समय में लोग एक-दूसरे से तर्क-वितर्क करके तय करते थे कि कौन सही है। फिर बात और बिगड़ी। तर्क-वितर्क का जमाना गया। क्योंकि तर्क-वितर्क वर्षों लेते हैं, और फिर भी निर्णायक नहीं होते। कौन निर्णय कर पाया है? कौन आस्तिक किसी नास्तिक को समझा पाया है कि ईश्वर है? और कौन नास्तिक किसी आस्तिक को समझा पाया है कि ईश्वर नहीं है? कौन जैन हिंदू को समझा पाया है? कौन हिंदू जैन को समझा पाया है? वह समझाने का मामला बहुत लंबा है।
इसलिए मुसलमानों ने संक्षिप्त मार्ग लिया, तलवार! कहां की बकवास में पड़े हो? निपटारा अभी करो; नगद करो। जिसकी लाठी उसकी भैंस! जो जीत जाए, वह सत्य। सत्यमेव जयते! कहते ही हैं कि सत्य की सदा विजय होती है। उन्होंने जरा सा भेद कर लिया। उन्होंने कहा, जिसकी विजय होती है वही सत्य। थोड़ा सा ही तो भेद है, कुछ ज्यादा भेद नहीं।
मगर तलवार के दिन भी गए। आदमी थोड़ा सभ्य हुआ। उसे यह बात बेहूदी लगी
कि जीवन-सिद्धांतों का निर्णय तलवार से हो। तो फिर कैसे निर्णय हो? तो फिर कुछ ज्यादा होशियारी की ईजादें की गईंः सेवा करो। अस्पताल खोलो। अनाथालय खोलो। विधवा आश्रम बनाओ। वृद्धाश्रम बनाओ। कोढ़ियों के पैर दबाओ। भिखमंगों को भोजन दो। ऐसे रोटी खिला कर, दवा देकर लोगों का धर्म-परिवर्तन करो।
स्वभावतः, इसका परिणाम एक ही होगा। जैसे हिंदुस्तान में है। कोई समृद्ध परिवार भारत का ईसाई नहीं होता। क्यों होगा? जिसके पास अपनी रोटी है, जिसके पास अपना मकान है, जिसके पास अपना धन है, वह क्यों ईसाई होगा? भारत में कौन लोग ईसाई हो गए हैं? आदिवासी, नंगे, भिखमंगे, भूखे, दीन-दरिद्र, अनाथ, अपंग, वे सारे के सारे ईसाई हो गए हैं।
जातियों पर जातियां! धर्मों पर धर्म! उनके भीतर छोटे-छोटे टुकड़े!
दरिया कहते हैं, एक ही बात याद रखो कि परमात्मा के सिवा न हमारी कोई माता है, न हमारा कोई पिता है। और ब्रह्म के सिवाय हमारी कोई जात नहीं। ऐसा बोध अगर हो, तो जीवन में क्रांति हो जाती है। तो ही तुम्हारे जीवन में पहली बार धर्म के सूर्य का उदय होता है।
"गिरह हमारा सुन्न में।"
तब तुम्हें पता चलेगा कि शून्य में हमारा घर है--हमारा असली घर! जिसको बुद्ध ने निर्वाण कहा है, उसी को दरिया शून्य कह रहे हैं। परम शून्य में, परम शांति में, जहां लहर भी नहीं उठती, ऐसे शांत सागर में या शांत झील में, जहां कोई विचार की तरंग नहीं, वासना की कोई उमंग नहीं, जहां विचार का कोई उपद्रव नहीं, जहां शून्य संगीत बजता है, जहां अनाहत नाद गूंज रहा है--वहीं हमारा घर है।
"अनहद में बिसराम।"
और जिसने उस शून्य को पा लिया, उसने ही विश्राम पाया। और ऐसा विश्राम जिसकी कोई हद नहीं है, जिसकी कोई सीमा नहीं है।
"अनहद में बिसराम।" यही संन्यासी की परिभाषा है। "गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में बिसराम।" यह संन्यासी की पूरी परिभाषा आ गई। मगर इसके लिए जरूरी है कि हम जानेंः "जात हमारी ब्रह्म है, माता-पिता है राम।"
मैं अपने संन्यासी को न तो ईसाई मानता हूं, न हिंदू, न मुसलमान, न जैन,
न बौद्ध। मेरा संन्यासी तो सिर्फ शून्य की खोज कर रहा है। सारी दीवारें गिरा रहा है। मेरा संन्यासी तो अनहद की तलाश में लगा है, सीमाओं का

अतिक्रमण कर रहा है। घर छोड़ना नहीं है। घर में रहते ही जानना है कि घर मेरी सीमा नहीं है। परिवार छोड़ना नहीं है। परिवार में रहते ही जानना है कि परिवार मेरी सीमा नहीं है। बस, यह बोध! इस बोध को ध्यान कहो, जागरण कहो, विवेक कहो, सुरति कहो; जो भी शब्द तुम्हें प्रीतिकर हो, वह कहो। लेकिन इसे लक्ष्य समझो कि पहुंचना है शून्य में; तभी तुम्हें विश्राम मिलेगा।
नहीं तो जीवन एक संताप है, एक पीड़ा है, एक विरह है। विरह की अग्नि! इसमें हम झुलसे जाते हैं; थके जाते हैं; टूटे जाते हैं; बिखरे जाते हैं; उखड़े जाते हैं। हमारे पत्ते-पत्ते कुम्हला गए हैं; फूलों के खिलने की तो बात बहुत दूर, हमारी जड़ें सूखी जा रही हैं। और जैसे ही किसी ने शून्य में अपनी जड़ें जमा लीं, तत्क्षण हरियाली छा जाती है; फूल उमग आते हैं; वसंत आ जाता है। बहार आ जाती है। फूलों में गंध आ जाती है। भंवरे गीत गाने लगते हैं। मधुमक्खियां गुंजार करने लगती हैं।
उस उत्सव की घड़ी में ही जानना कि जीवन कृतार्थ हुआ है। उसके पूर्व हम व्यर्थ ही जी रहे हैं। उसके बाद ही जीना जीना है। उसके बाद ही मरना मरना है। उसके बाद जीने में भी मजा है और मरने में भी मजा है। उसके बाद जीवन भी एक धन्यवाद है और मृत्यु उसी धन्यवाद की परम ऊंचाई, परम शिखर।

दूसरा प्रश्नः ओशो, क्या किसी संत के दिए हुए मंत्र को दोहराने से हम मुक्ति नहीं पा सकते? बेशक वह संत जीवित हो या नहीं! अगर मुक्ति नहीं तो कुछ अधिक आध्यात्मिक विकास तो होगा या नहीं? और क्या यह सच है कि कभी कोई मंत्र के शब्दों का मतलब जानने की कोशिश नहीं करनी चाहिए, क्योंकि मतलब जानने से तो सिर्फ यही ही होगा कि मन सोच-विचार और कल्पना में भाग लेने लगेगा। मैं इसलिए यह सवाल पूछ रहा हूं, क्योंकि मैंने सुना है कि आप मंत्र के बहुत खिलाफ हैं और कहते हैं कि मंत्र जपना सिर्फ बेवकूफों और मूर्खों के लिए है।

नवलकिशोर डी. डी.!
इस प्रश्न में बहुत से प्रश्न हैं, एक-एक को क्रमशः लेना होगा। पहली बात, पूछा है तुमने, "क्या किसी संत के दिए हुए मंत्र को दोहराने से हम मुक्ति नहीं पा सकते?"
मुक्ति पाई नहीं जाती है। मुक्ति कोई उपलब्धि नहीं है; अनावरण है। मुक्ति कोई गंतव्य नहीं है, कोई दूर की मंजिल नहीं है, जहां तक चल कर पहुंचना है। मुक्ति हमारा स्वभाव है।
जात हमारी ब्रह्म है, माता-पिता है राम।
गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में बिसराम।।
मुक्ति हमारा स्वभाव है। इसलिए मुक्ति को पाने की भाषा में मत सोचना! पाने की भाषा लोभ की भाषा है। और जहां लोभ है, वहां मुक्ति नहीं। अलोभ मुक्ति की आधारशिला है। अहंकार पाने की भाषा में सोचता हैः धन पा लूं, पद पा लूं। फिर जब इनसे ऊब जाता है और पाता है कि इन्हें पा लेने पर भी कुछ नहीं मिलता, तो सोचने लगता हैः परमात्मा को पा लूं। स्वर्ग को पा लूं। मोक्ष को पा लूं। निर्वाण को पा लूं। मुक्ति को पा लूं। सत्य को पा लूं। विषय तो बदल गए; धन नहीं, पद नहीं। धन की जगह ध्यान आ गया; पद की जगह परमात्मा आ गया। लेकिन तुम नहीं बदले; विषय बदल गए। वासना तो वही की वही रही, पाने की। क्या पाना चाहते हो, इससे फर्क नहीं पड़ता। जब तक पाना चाहते हो, तब तक उलझे रहोगे।
मुक्ति पाने से नहीं मिलती है। पाने की बात ही व्यर्थ है, ऐसा जानने
से तत्क्षण अनुभव में आ जाती है। तत्क्षण शब्द को स्मरण रखना। कल नहीं, परसों नहीं--अभी, यहीं।
बुद्ध ने छह वर्ष तक पाने की कोशिश की। स्वाभाविक! आदमी लोभ की दुनिया में जीता है। तो जिस तरह धन और पद को पाते थे, सोचा, इसी तरह मुक्ति को पा लेंगे! छह वर्ष तक सतत चेष्टा की। सब किया जो लोगों ने कहा कि करो; जिनको तुम कह रहे हो संत। किसी ने मंत्र दिए, तो मंत्र दोहराए। किसी ने उपवास करवाया, तो उपवास किया। और किसी ने सिर के बल खड़े होने को कहा, तो सिर के बल

खड़े रहे। तपश्चर्या, तो तपश्चर्या! सुंदर देह थी, राजकुमार थे, सूख कर कांटा हो गए।
एक मूढ़ ने बता दिया कि धीरे-धीरे भोजन को कम करो। इतना कम करो क्रमशः
कि बस एक चावल का दाना ही भोजन रह जाए। इस तरह कम करते-करते-करते एक चावल का दाना रह जाए। फिर धीरे-धीरे बढ़ाना, दो चावल के दाने, तीन चावल के दाने... । जिस दिन एक चावल का दाना रह गया, बुद्ध इतने कमजोर हो गए कि निरंजना नदी को पार करते थे, पार न कर सके।
मैं निरंजना को देखने गया था, सिर्फ इसीलिए कि कैसी नदी है जिसको बुद्ध पार न कर सके! भवसागर पार कर गए और निरंजना पार न कर सके? देखा तो बहुत चौंका। नदी नहीं है, नाला है। गर्मी के दिन थे, बिल्कुल सूखा था! कोई भी पार कर जाए। छोटा बच्चा पार कर जाए। कोई तैरने वगैरह की भी जरूरत नहीं थी। घुटने-घुटने पानी भी नहीं था।
ये बुद्ध क्यों पार नहीं कर सके? कमजोर इतने हो गए थे कि निरंजना के किनारे पर एक वृक्ष की जड़ को पकड़ कर किसी तरह अपने को अटकाए रहे। जब थोड़ी सी ताकत आई, तो किसी तरह सरक कर घाट पर चढ़े। उस घड़ी वृक्ष की जड़ को पकड़े हुए उन्हें यह ख्याल आया कि यह मैंने क्या किया! देह भी गंवा बैठा, आत्मा तो मिली नहीं। और मैंने यह कभी सोचा ही नहीं कि देह को गंवाने से आत्मा के मिलने का तर्क क्या है! निरंजना नदी तो पार नहीं कर सकता हूं, यह छोटी सी नदी, तो यह जीवन का इतना बड़ा भवसागर कैसे पार करूंगा?
यह घटना बड़ी क्रांतिकारी सिद्ध हुई। उन्होंने उसी क्षण, वह जो छह साल व्यर्थ की दौड़-धूप की थी, छोड़ दी। धन और पद की दौड़ तो पहले ही छोड़ चुके थे; उस संध्या मोक्ष की दौड़ भी छोड़ दी।
नवलकिशोर! यह घटना बहुत विचारणीय है। दौड़ ही न रही। उस सांझ जब वे सोए, पूर्णिमा की रात थी, और चित्त पहली दफा अनहद के विश्राम को उपलब्ध हुआ था। क्योंकि जहां दौड़ नहीं, वहां विश्राम है। चाहे शरीर से न भी दौड़ो, अगर मन से भी दौड़ रहे हो, तो भी तो थकान होती है। मन भी तो थकता है।
अब कोई दौड़ ही न थी; कुछ पाना ही न था। सब व्यर्थ है, कुछ भी पाना नहीं है। जो है, जैसा है, उससे ही राजी हो रहे। इसको बुद्ध ने तथाता कहा है। जो है, जैसा है, ठीक है।
उस संध्या तथाता के इस भाव में ही सोए। बाद में कहा कि वह पहली रात थी,
जब सच में मैं सोया। विश्राम परिपूर्ण था, एक सपना भी न आया। क्योंकि जब चाह ही न रही, तो सपने कहां से आएं? सपने तो चाह की ही छाया है, जो नींद में पड़ती है। दिन में जो चाह है, रात वही सपना है।
एक सपना नहीं। और सुबह जब आंख खुली, तो कहा बाद में, कि ऐसा विश्राम कभी पाया ही न था। ऐसी शांति छाई थी! रोआं-रोआं विराम में था, विश्राम में था। न कुछ करना था; न कहीं जाना था; न कुछ पाना था। सब मोह छूट गए, संसार के भी और परलोक के भी। और तभी देखा कि रात का आखिरी तारा डूब रहा है। जैसे- जैसे वह तारा डूबा, वैसे-वैसे ही भीतर, अगर कोई कहीं धूमिल सी रेखा भी रह गई होगी लोभ की, वह भी विलुप्त हो गई। आखिरी तारे के डूबने के साथ ही बुद्ध को महापरिनिर्वाण उपलब्ध हुआ। अनहद में विश्राम पाया। गिरह हमारा सुन्न में! शून्य में घर मिल गया।
सवाल उठता है कि बुद्ध ने छह साल की तपश्चर्या के कारण बुद्धत्व पाया
या तपश्चर्या को छोड़ने के कारण बुद्धत्व पाया? ढाई हजार वर्षों में बौद्ध विचारक इस पर मंत्रणा करते रहे हैं, विचारणा करते रहे हैं, विवाद करते रहे हैं। मेरे हिसाब में विवाद व्यर्थ है। दोनों ही बातें उपयोगी हैं। वह छह वर्ष जो तपश्चर्या की थी, उसका भी हाथ है। पाने में नहीं; पाया तो तपश्चर्या को छोड़ कर। लेकिन तपश्चर्या का हाथ है तपश्चर्या को छुड़ाने में!
तपश्चर्या करते-करते एक बात दिखाई पड़ गई कि यह पागलपन है; इसमें कुछ सार नहीं। संसार तो पहले ही छूट चुका था, अब यह मोक्ष भी छूट गया। मोक्ष पाने की आकांक्षा भी छूट गई। लोभ की जो अंतिम रेखा रह गई थी, वह भी विलुप्त हो गई। तो तपश्चर्या ने इतना काम किया। जैसे एक कांटा गड़ जाता है, तो हम दूसरे कांटे से उसको निकाल लेते हैं। फिर दोनों कांटों को फेंक देते हैं।

ऐसा नहीं है कि पहला कांटा फेंक दिया और दूसरे को सम्हाल कर उसके घाव में रख लिया कि इसकी बड़ी कृपा है! किस शब्दों में इसका आभार करें!
एक कांटे से दूसरा निकल गया, फिर दोनों हम फेंक देते हैं। ऐसे ही तपश्चर्या से, एक व्यर्थ बात मन में अटकी थी कि पाने से मिलेगा परमात्मा, वह बात निकल गई। परमात्मा तो मिला ही हुआ है। दौड़ खतम हुई, चाह मिटी, कि पाया। पाया तो सदा से था ही।
तुमने एक क्षण को भी परमात्मा खोया नहीं है नवलकिशोर! इसलिए पहले तो
यह भाषा छोड़ दो पाने की। यह लोभ की भाषा है। यह धंधे की भाषा है। यह व्यवसाय की भाषा है।
दूसरी बात, तुम कहते हो, "किसी संत के दिए हुए मंत्र को दोहराने से... ।" पहली तो बात, तुम कैसे जानोगे कौन संत है? अगर तुम यही पहचान लो कि कौन संत है, तो तुम खुद ही संत हो गए। केवल संत ही संत को पहचान सकता है। तुम कैसे पहचानोगे कौन संत है? जिसको भीड़ संत कहती होगी, उसी को तुम संत मान लोगे। और भीड़ को कुछ पता है? भीड़ तो मूढ़ों की जमात है।
एक बात तो पक्की है कि जिसको भीड़ संत कहे, जरा सावधान रहना। उस पर तो प्रश्नवाचक चिह्न लगा देना। क्योंकि भीड़ उसको ही संत कहेगी, जो भीड़ की अपेक्षाओं के अनुकूल पड़ता होगा।
जैन, दिगंबर जैन नंगे आदमी को संत कहेंगे। बौद्ध भिक्षु नहीं कहेंगे उसको संत। जैन तो अगर दिगंबर हैं, तो नग्न को संत कहेंगे। और अगर श्वेतांबर हैं, तो मुंहपट्टी-धारी को संत कहेंगे। दिगंबर मुंहपट्टी-धारी पर हंसेंगे। क्योंकि यह तो परिग्रही है। मुंह पर पट्टी बांधना, यह तो आरोपण है। और श्वेतांबर नग्न जैन मुनि पर हंसेंगे, कि यह तो अशोभन है, अशिष्ट है, अभद्र है। सूफी फकीर हिंदू फकीर पर हंसेंगे कि यह भी कोई संतत्व है! और हिंदू फकीर सूफी पर हंसेंगे कि यह भी कोई संतत्व है!
ईसाई तो उसको संत कहेंगे, जो दरिद्रों की सेवा कर रहा हो। और भारत में संतों ने कभी किसी की सेवा नहीं की; ख्याल रखना। यहां तो संतों की सेवा करनी पड़ती है। यहां तो जैन अपने संत के जब दर्शन को जाते हैं, उनसे पूछो, कहां जाते हो? तो वे कहते हैं, संत की सेवा करने जा रहे हैं।
संत और सेवा करे? कौन करवाएगा संत से सेवा? क्या पाप करवाना है अपने हाथ से? समझ लो कि महावीर स्वामी मिल जाएं और तुम्हारे पांव दबाने लगें! तुम दबवाओगे? तुम एकदम उचक कर भाग खड़े होओगे कि हे प्रभु, बचाओ! यह क्या कर रहे हो? आप और पैर दबा रहे हो? क्या सदा के लिए नर्क में गिरवा दोगे? कि बुद्ध मिल जाएं और एकदम तुम्हारी चंपी करने लगें! मुफ्त भी करें, तो तुम कहोगे कि नहीं भैया, नहीं करवाना। अरे, हम आपकी चंपी करेंगे! आप हमारी चंपी करें? भगवान बुद्ध और चंपी करें? कभी नहीं। होने ही नहीं देंगे।
लेकिन ईसाइयों की परिभाषा संत की वही है, जो तुम्हारे पैर दबाए, जो तुम्हारी सेवा करे। ईसाइयों के हिसाब से जीसस संत हैं, क्योंकि उन्होंने मनुष्य के उद्धार के लिए अपना जीवन दे दिया। महावीर क्या खाक संत हैं-- ईसाइयों के हिसाब से! किया क्या मनुष्य-जाति के लिए? हां, ध्यान किया। तो वह तो स्वार्थ है, खुद के आनंद के लिए! महास्वार्थी हैं। बुद्ध ने क्या किया? अपनी मुक्ति पा ली। मगर अपनी मुक्ति पानी परार्थ तो नहीं। परार्थ तो किया जीसस ने; सूली पर लटक गए, अपनी जान गंवा दी मनुष्य के उद्धार के लिए। यह दूसरी बात है कि उद्धार हुआ कि नहीं। अभी तक हुआ तो नहीं। किसी के सूली पर लटकने से किसी का क्या उद्धार होना है!
महावीर अपने बाल लोंचते थे, केश-लुंच करते थे। और बौद्ध भिक्षु हंसते
थे कि यह पागलपन है। और बौद्ध भिक्षुओं की बात में भी अर्थ है। क्योंकि अक्सर स्त्रियां जब पगलाती हैं, तो बाल खींचती हैं! तुमने देखा ही होगा कि स्त्री रूठ जाती है, तो एकदम बाल लोंचने लगती है। अगर पागलखाने में जाओ, तो तुमको कई पागल मिलेंगे, जो बाल लोंचते हैं। बाल लोंचना कुछ पागलपन का हिस्सा है।
तो बौद्धों को तो लगा कि यह महावीर का दिमाग कुछ खराब है। बाल लोंचना! लेकिन महावीर को मानने वाला मानता है कि महावीर का त्याग परम है। वे उस्तरे का भी उपयोग नहीं करते। अब यह क्या उस्तरे को रखे फिरना! उस्तरा

वैसे भी घातक! कहीं किसी पर गुस्सा आ जाए और गर्दन काट दो! या खुद ही पर निराशा आ जाए और गर्दन काट लो!
फिर दूसरी बात यह कि उस्तरे पर निर्भर होना वस्तु पर निर्भर होना है। महावीर तो वस्तु-मुक्त हैं। वे तो किसी तरह की परनिर्भरता नहीं मानते। अब किसी नाई से जाकर बाल बनवाना, वह भी जंचता नहीं। उसका मतलब हुआ कि नाई पर निर्भर हो गए। मोक्ष में पता नहीं नाई मिलते हैं कि नहीं मिलते! अपने बाल खुद ही लोंच लिए, यह स्वावलंबन है! है तो स्वावलंबन; साफ लगता है।
तुम किसको संत कहते हो? संत की तुम्हारी परिभाषा क्या है? परिभाषा तुमने पाई कहां से? तुम्हारे आस-पास जो भीड़ होगी, वही तुम्हें परिभाषा दे देती है कि इस तरह का आदमी संत होता है। एक बार भोजन करता हो, तो संत। इस तरह बैठता हो, इस तरह उठता हो, तो संत। भीड़ की अपेक्षाएं जो पूरी करता है, वह उस भीड़ के लिए संत।
नवलकिशोर! तुम कहते हो, "क्या किसी संत के दिए हुए मंत्र को दोहराने से... ।"
और संत और मंत्र देगा? असंभव! क्योंकि मंत्र शब्द बनता है उसी धातु से जिससे मन बनता है। मन तो मंत्र से ही बनता है। मन का काम ही क्या है? तुमने कभी ख्याल किया! मन का काम है सलाह देनाः ऐसा करो, ऐसा करो; वैसा मत करना। इसलिए तो हम सलाहकार को मंत्री कहते हैं। सलाह देता है, कि यह करो, वह करो। मन जो है, वह मंत्री है। वह सलाहकार है। मन और मंत्र संयुक्त हैं। मंत्र, यूं समझो कि ईंट है; उसी की ईंटों से बना हुआ मन है।
मन से मुक्त होना है। इसलिए मंत्र के द्वारा तो कोई मन से मुक्त नहीं
हो सकता। मंत्र का तो उपयोग मन से ही करना होगा। अगर तुम बैठ कर राम-राम जपोगे, तो जपोगे किससे? मन से ही जपोगे। और अगर मन का ही अभ्यास कर रहे हो, मन की ही दंड-बैठक लग रही है। तुम राम-राम, राम-राम किए जा रहे हो, यह मंत्र की ही दंड-बैठक है। इससे तो मन और मजबूत होगा। मंत्र से मन मजबूत होता है। और जितना मन मजबूत होता है, उतना ही तुम्हारे और तुम्हारी आत्मा के बीच बाधा खड़ी होती है।
इसलिए कोई संत मंत्र नहीं देगा। संत तो तुम्हारे मंत्र को ही छीन लेगा और तुम्हारे मन को भी छीन लेगा। संत तो तुम्हें रास्ता बताएगा मन के पार जाने का। हां, अगर तुम्हें मन की शक्तियों को बढ़ाना है--आध्यात्मिक शक्तियों का नाम मत लेना--अगर मन की शक्तियों को बढ़ाना है, तो मंत्र उपयोगी है। मंत्र के प्रयोग से मन की शक्तियां बढ़ जाएंगी।
मगर मन की शक्तियों को बढ़ा कर भी क्या करोगे? समझ लो कि पानी पर भी चलने लगे, तो फायदा क्या है? वर्षों की मेहनत के बाद अगर पानी पर भी चलने लगे और कांच भी चबाने लगे, तो कोई कांच का नाश्ता करना है? और पानी पर चलने के लिए नावें हैं। और सरलता से तैरना सीख सकते हो। लकड़ी की जरा सी डोंगी काम दे देती है। उसके लिए वर्षों की मेहनत करना और पानी पर चलना सीखना! और कांच चबाना! चबाना किसलिए? क्या फालतू बोतलें वगैरह फेंकने में बहुत दिल दुखता है? कि कैसी बहुमूल्य चीजें फेंकी जा रही हैं! अरे, आज अगर मंत्र-सिद्ध होते, चबा लेते। क्या करोगे?
अगर दूसरों के विचार भी पढ़ने लगे! अपने ही विचार पढ़ कर कुछ नहीं मिला; दूसरे का विचार पढ़ कर क्या मिलेगा और? कचरा अपना ही काफी है, और दूसरे का कचरा और लेकर क्या करोगे? दूसरा अपने विचारों से मुक्त होना चाह रहा है, और तुम उसके विचार पढ़ने को उत्सुक हो!
मंत्र से मन की शक्तियां जरूर बढ़ सकती हैं। क्यों? क्योंकि मंत्र एक खास लक्ष्य के लिए वैज्ञानिक प्रक्रिया है। वह लक्ष्य है तंद्रा। अंग्रेजी में जिसको हिप्नोसिस कहते हैं, उसके लिए हमारा पुराना यौगिक शब्द है तंद्रा।
एक तो जागृति है, वह तो मंत्र से आती नहीं। एक निद्रा है, वह बिना ही मंत्र के आ जाती है। दोनों के मध्य की एक स्थिति है तंद्रा; वह मंत्र के द्वारा लाई गई निद्रा है। हिप्नोसिस का अर्थ तंद्रा होता है।
अगर तुम एक ही शब्द को बहुत बार दोहराओगे, तो उससे तंद्रा पैदा होती है। तंद्रा पैदा होने की सीधी प्रक्रिया है। अब तुम बैठे हो। राम-राम, राम-

15

राम, जपे जा रहे हो, जपे जा रहे हो, जपे जा रहे हो! इसके दो परिणाम होते हैं, एक तो मन एक ही चीज से ऊब जाता है। ऊब नींद लाती है।
इसलिए धार्मिक सभाओं में लोग सोते हैं। अब वही राम, वही सीता, वही रावण, वही कहानी। कितनी बार तो देख चुके! फिर वही हनुमान जी, फिर वही लिए चले आ रहे हैं पहाड़! सब वही का वही। तो अब रामलीला देखोगे कि सोओगे! इससे बेहतर है सो ही जाओ! इस बकवास को देखने में सार क्या है! रामलीला में तो कभी-कभी लोग जागते हैं, जब कुछ गड़बड़ हो जाती है।
जैसे ऐसा हुआ एक बार कि जब रामलीला शुरू हुई और सीता का स्वयंवर रचा गया, तो कहानी यूं है कि खबर आती है लंका से कि हे रावण, तेरी लंका में आग लगी है। तो रावण भागता है। लंका में आग लगी हो, तो यह कोई विवाह रचाने का अवसर है! बेचारा भागता है अपनी लंका बचाने।
यह तरकीब है। यह ऋषि-मुनियों की जालसाजी है। यह झूठ है। लंका वगैरह में कोई आग नहीं लगी थी। मगर जब तक वह बेचारा लौटे, तब तक यहां मामला खतम हो गया। उसको हटाना जरूरी था, क्योंकि वह शिव का भक्त था। और वह शिव का धनुष था। और उसने प्रार्थना की थी; शिव से उसे वरदान था कि शिव उसका साथ देंगे, सहायता करेंगे। अरे, अपने चमचों की कौन सहायता नहीं करता? छोटे-मोटे भी करते हैं; वे तो शिव जी बेचारे बड़े पहुंचे हुए पुरुष हैं! और यह रावण कितनी सेवा किया उनकी। अपनी गर्दन काट-काट कर रख देता था! अब और क्या चाहिए? चमचे से और क्या चाहिए?
तो वह तोड़ देता धनुष-बाण। डर था। रामचंद्र जी उसके सामने छोकरे ही थे। एक-दो धौल जमाता और तोड़-ताड़ कर अपना लेकर सीता को रवाना हो जाता। तो सब रामायण वहीं खतम कर देता! तो उसको भगाना पड़ा। जब तक वह गया, तब तक राम ने धनुष-बाण तोड़ लिया। विवाह हो गया।
अब इसको तो, बार-बार होता है, तो लोग जाते ही से अपना इंतजाम करके लेकर जाते हैं। रामलीला लोग देखने जाते हैं, तो दरी ले जाते हैं, चटाई ले जाते हैं। कंबल तक ले जाते हैं! अपनी दरी-चटाई बिछा कर, कंबल ओढ़ कर मस्त, बच्चों को सुला कर, फिर खुद भी झपकी लेते हैं।
मगर उस दिन कुछ गड़बड़ हो गई। बच्चे तक जग गए। क्योंकि जब रावण को खबर आई
कि तेरी लंका में आग लगी है। उसने कहा कि लगी रहने दो। लोग थोड़े चौंके कि यह बात क्या है! जनक महाराज भी थोड़े हैरान हुए कि अब करना क्या है? रामचंद्र जी की तो सटपटी गुम हो गई होगी। लक्ष्मण बोले होंगे, भैया, अब क्या करना!
और उसने तो, रावण ने, आव देखा न ताव; वह गुस्से में था। असल में मैनेजर
ने उसको जितनी मिठाई मिलनी चाहिए थी, उतनी नहीं दी थी; कम दी थी। उसने कहा, देख लेंगे! सो उसने पहला ही अवसर हाथ आया, दिखा दिया। उठा और उसने तोड़ दिया धनुष! और धनुष भी क्या था! कोई शिव जी का धनुष है! यही बास की पोंगरी रखी हुई थी बांध कर। उसने तोड़-ताड़ कर, कई टुकड़े करके फेंक दिए, एक-दो नहीं। और उसने कहा, निकाल तेरी सीता कहां है? खतम करो इस बात को एक बार। क्या हर साल लगा रखा है कि वही का वही खेल फिर से हो, फिर!
सारी जनता जग गई। बच्चे रोने लगे। स्त्रियां चौंक गईं। लोग खड़े हो गए, बैठे ही नहीं, कि यह हो क्या रहा है! न देखा कभी आंखों से, न सुना कभी कानों से! यह नई ही रामलीला हो रही है! वह तो भला हो जनक का। बूढ़े थे, सयाने थे, पुराने अनुभवी थे, घाघ जिसको कहते हैं। कई रामलीलाएं करवा चुके थे। उन्होंने तत्क्षण मामले को सम्हाल लिया। उन्होंने कहा, भृत्यो! तुम भूल से मेरे बच्चों के खेलने का धनुष ले आए हो। अरे, यह शिव जी का धनुष नहीं है। शिव जी का असली धनुष लाओ!
पर्दा गिराया। धक्का देकर किसी तरह रावण को हटाया। दूसरा धनुष-बाण लाया गया और दूसरे आदमी को रावण बना कर लाया गया। जनता बड़ी चौंकी कि यह रावण तो दूसरे मालूम होते हैं! वह पुराना पहलवान कहां है?
उसको तो चार आदमी पकड़े अंदर बैठे हैं। वह भीतर से चिल्ला रहा है कि छोड़ो जी, मैं धनुष-बाण तोडूंगा। आज मामला खतम ही कर देना है, रफा-दफा! किसी तरह उसको मिठाई दी, समझाया-बुझाया कि भैया, धनुष-बाण न तोड़। तू जितनी मिठाई लेना हो, ले ले। और आगे से हम ख्याल रखेंगे। जो भूल हुई सो हुई।

कभी-कभी ऐसे मौके आते हैं, अन्यथा तो रामलीला में लोग सोएंगे। वही का वही पुनरुक्त हो रहा है।
छोटे-छोटे बच्चों को सुलाने के लिए हम यही उपयोग करते हैं नवलकिशोर। मां बैठ जाती है बगल में, दबा देती है बच्चे को बिस्तर में। चारों तरफ से कंबल दबा देती है। भाग भी नहीं सकता कहीं। और बैठी है कि राजा बेटा सो जा! मुन्ना बेटा सो जा! राजा बेटा सो जा! मुन्ना बेटा सो जा!
अब क्या खाक करे राजा बेटा और मुन्ना बेटा? सोए नहीं, तो क्या करे? हालांकि मां यही सोचती है कि मेरे सुरीले राग के कारण सो रहा है।
यह सुरीले राग का सवाल नहीं है। यह ऊब पैदा हो रही है; घबड़ा रहा है वह।
यह तो मां अगर बच्चे के बाप के पास भी बैठ कर कहे कि राजा बेटा सो जा, मुन्ना बेटा सो जा, तो वे भी सो जाएंगे। अगर नींद न आएगी, तो भी कम से कम बहाना करेंगे, घुर्राने लगेंगे कि आ गई बाई, नींद आ गई! तू जा! अब हम कभी न उठेंगे। बिल्कुल सो गए।
तुम जब जपते हो मंत्र, तो तुम केवल तंद्रा पैदा कर रहे हो। निरंतर की पुनरुक्ति से तंद्रा पैदा होती है। इससे कुछ आध्यात्मिक जीवन का संबंध नहीं है।
और तुम पूछते हो कि "क्या इससे कुछ अधिक आध्यात्मिक विकास नहीं होगा?" अध्यात्म का कोई विकास होता है? अध्यात्म तो तुम्हारे भीतर पूरा का पूरा मौजूद है। सिर्फ भीतर आंख ले जानी है और प्रकट हो जाता है। उसकी अभिव्यक्ति होती है, विकास नहीं। और इसलिए मैंने कहा है कि जो नासमझ हैं, वे ही केवल मंत्रों में उलझते हैं। समझदार को तो मन से मुक्त होना है। तब शून्य में विश्राम होगा, अनहद में विश्राम होगा।
आज इतना ही।

अनहद में बिसराम
दूसरा प्रवचन

नास्तिकताः अनिवार्य प्रक्रिया

पहला प्रश्नः ओशो, जीवन के चालीस वर्ष नास्तिक समाजवादी विचारधारा में गंवाने के बाद पिछले पंद्रह वर्षों से आपका संपर्क पाया। और जीवन में जो आनंद और उत्सव का अनुभव किया, उसका कैसे वर्णन करूं? और कैसे अपनी कृतज्ञता प्रकट करूं? शब्द बिल्कुल ओछे पड़ गए हैं। आप क्या मिले, बस सब कुछ मिल गया! प्रभु, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

अमृत बोधिसत्व!
आस्तिक होने के लिए नास्तिक होना अत्यंत अनिवार्य है। अभागे हैं वे जिन्होंने कभी नास्तिकता नहीं चखी, क्योंकि वे आस्तिकता का स्वाद न समझ पाएंगे। आस्तिकता उभर कर प्रकट होती है, नास्तिकता की पृष्ठभूमि चाहिए। जैसे ब्लैकबोर्ड पर लिखते हैं सफेद खड़िया से, अक्षर-अक्षर साफ दिखाई पड़ता है। यूं तो सफेद दीवाल पर भी लिख सकते हैं, मगर तब अक्षर दिखाई न पड़ेंगे। इस जगत के बड़े से बड़े दुर्भाग्यों में से एक है कि हम प्रत्येक बच्चे
को नास्तिक बनने के पहले आस्तिक बना देते हैं। वह आस्तिकता झूठी होती है, उसमें कुछ प्राण नहीं होते। उस आस्तिकता में पंख नहीं होते। वह निर्वीर्य होती है, निर्जीव होती है। खिलौनों की तरह कृष्ण को पकड़ा देते हैं, राम को पकड़ा देते हैं, बुद्ध को, महावीर को पकड़ा देते हैं। अभी बच्चे में जिज्ञासा भी नहीं जगी, अभी प्रश्न भी नहीं उठा, और हमने उत्तर दे दिए! जहां प्रश्न ही नहीं है, वहां उत्तर मिथ्या होगा; वहां उत्तर की कोई गुंजाइश ही नहीं है। बीमारी ही नहीं है, और तुमने इलाज शुरू कर दिया! तुम दवा पिलाने लगे! तुम्हारी दवा जहर बन जाएगी।
और आस्तिकता जहर बन गई है। सारी पृथ्वी आस्तिकता से पीड़ित है, नास्तिकता से नहीं। और आदमी कुछ ऐसा मूढ़ है कि एक अति से दूसरी अति पर जाने में उसे देर नहीं लगती। रूस, चीन और दूसरे कम्युनिस्ट देश दूसरी अति पर चले गए। बच्चा पैदा हुआ, और वे उसे नास्तिकता सिखाने लगते हैं।
सिखाई नास्तिकता उतनी ही थोथी होगी, जितनी सिखाई आस्तिकता। किसी बच्चे को भूख तो नहीं सिखानी होती, प्यास तो नहीं सिखानी होती, नींद तो नहीं सिखानी होती।
नास्तिकता वैसी ही स्वभावतः पैदा होती है। नास्तिकता का ठीक अर्थ हैः जिज्ञासा, आकांक्षा जानने की, अन्वेषण, खोज। वह यात्रा है। प्रत्येक व्यक्ति अपने साथ लेकर आया है उसके बीज। किसी को नास्तिक बनाने की जरूरत नहीं है और न किसी को आस्तिक बनाने की जरूरत है। बनाया कि चूक हुई। बनाया कि ढोंग हुआ। बनाया कि मुखौटे उढ़ा दिए। फिर मुखौटे हिंदू के हों, कि मुसलमान के, कि ईसाई के, कि नास्तिक के, कम्युनिस्ट के, इससे भेद नहीं पड़ता। दूसरों के द्वारा उढ़ाए गए मुखौटे तुम्हारा चेहरा नहीं हैं। और तुम्हारा चेहरा ही काम आएगा।
जीवन उधार नहीं जीया जा सकता। जीवन प्रामाणिक होना चाहिए। हमें इतना धैर्य रखना चाहिए कि बच्चे पर जब जिज्ञासा अपने आप अवतरित होगी, जब वह पूछेगा, तो हम साथ देंगे। और साथ भी बहुत सोच कर देना।
साथ देने का अर्थ नहीं है कि वह पूछे और तुम उत्तर देना। प्रश्न उसका, उत्तर तुम्हारा, मेल कैसे होगा? प्रश्न उसका तो उत्तर भी उसका ही होना चाहिए, तभी तृप्ति होगी, तभी संतोष होगा, तभी बोध होगा, बुद्धत्व होगा।
तो जब बच्चे को जिज्ञासा जगे, प्रश्न उठें, संदेह के झंझावात आएं, तब माता को, पिता को, परिवार को, प्रियजनों को, शिक्षकों को सहयोग देना चाहिए-- प्रश्नों के निखारने का, निखारने में, प्रश्नों पर धार रखने में। प्रश्नों पर उत्तर नहीं थोपने हैं, प्रश्नों को त्वरा देनी है, तीव्रता देनी है। प्रश्नों को ऐसी प्रगाढ़ता देनी है कि जब तक व्यक्ति उनके उत्तर स्वयं न खोज ले, चैन न पाए, विश्राम न पाए। उसके प्रश्नों को मूल्य दो।

मगर किसको पड़ी है! हमें जल्दी है हमारे उत्तर थोप देने की। हमारा न्यस्त स्वार्थ यही है कि हम जल्दी से अपने उत्तर थोप दें। बेटा पैदा हुआ, कि चलो उसका यज्ञोपवीत संस्कार करो, कि चलो उसका खतना करवाओ, कि चलो उसको मुसलमान बनाओ, हिंदू बनाओ, ईसाई बनाओ, बपतिस्मा करवाओ। जैसे उसका तो इसमें कुछ भाग ही नहीं है। यह सब दूसरों का गोरखधंधा है, जिसमें उसको फंसना है। ये जो उसे फंसा रहे हैं, ये भी फंसाए गए थे। इनके बाप-दादे भी फंसाए गए थे; और उनके बाप-दादे भी। और ये पीढ़ियों दर पीढ़ियों बीमारियां सरकती चली जाती हैं, और भी जघन्य होती जाती हैं। ये रोग इतने घने हो जाते हैं कि इनका इलाज करना मुश्किल हो जाता है।
अमृत बोधिसत्व, तुम धन्यभागी हो कि तुम जब मुझे मिले, नास्तिक थे। मुझसे मिलने के लिए नास्तिक होना ठीक-ठीक क्षण है, जैसे वसंत। और वह नास्तिकता तुम्हारी ओढ़ी हुई नहीं थी, क्योंकि भारत में कौन नास्तिकता उढ़ाएगा तुम्हें! वह सहज थी, तुम्हारी थी, अपनी थी; निजता थी उसमें, व्यक्तित्व था उसका। तुम्हें ही मुझसे प्रेम हो गया, ऐसा नहीं; मुझे भी तुमसे प्रेम हो गया। जहां भी प्रामाणिकता है वहां मैं ऐसे बरस पड़ता हूं जैसे जल से भरा हुआ कोई बादल बरसे।
अमृत बोधिसत्व समाजवादी थे, और महत्वपूर्ण समाजवादी थे। कहानी तो यह
है कि स्वयं माओत्से तुंग ने अमृत बोधिसत्व के चित्र को पेकिंग में रख कर सलामी दी थी, क्योंकि अमृत बोधिसत्व ने गुजरात के एक कारखाने पर कब्जा कर लिया था और उस कारखाने की मालकियत मजदूरों में बांट दी थी। वह पहला समाजवादी प्रयोग था। भारत में बहुत उसकी चर्चा नहीं हुई। लेकिन चीन और रूस तक उसकी चर्चा हुई।
मुझे जब अमृत बोधिसत्व मिले थे, तो शायद उन्होंने कभी सोचा भी न होगा
कि यह जीवन में एक नया मोड़ आया, ऐसा जिसकी कल्पना भी न थी, स्वप्न भी न देखा होगा। उनके संगी-साथियों ने भी न सोचा होगा कि अमृत बोधिसत्व कभी संन्यासी हो जाएंगे।
मगर मेरी अपनी सूझ यही है कि जो नास्तिक होने की हिम्मत रखता है, वही कभी संन्यासी भी हो सकता है। संन्यास नास्तिक होने से भी बड़ी हिम्मत है। जो नास्तिक होने की हिम्मत नहीं रखता इसलिए आस्तिक है, उसकी आस्तिकता दो कौड़ी की है, उसका कोई भी मूल्य नहीं है। कचरा है। जितने जल्दी उससे छुटकारा हो जाए, उतना अच्छा है। जो नास्तिक होने तक की हिम्मत नहीं रखता, वह क्या खाक आस्तिक होगा! आस्तिकता बड़ी बात है। नास्तिकता तो छोटी बात है। नहीं तो हमेशा छोटा होता है।
तुमने ख्याल किया, जब तुम नहीं कहते हो, तो सिकुड़ जाते हो; और जब तुम हां कहते हो, तो फैल जाते हो! और आस्तिकता का अर्थ है, समग्ररूपेण अस्तित्व को हां कहना। सारी नहीं गिर जाए, सारा नकार गिर जाए। नहीं कहने में तो कोई अड़चन नहीं है बड़ी, क्योंकि नहीं अहंकार को भरती है। हम नहीं इसीलिए तो कहते हैं। नहीं भोजन है अहंकार का। जितना नहीं कहो, उतना अहंकार को मजा आता है। इसलिए जहां नहीं कहने की कोई जरूरत भी नहीं, वहां भी हम मौका नहीं चूकते; वहां भी हम नहीं कहेंगे।
अगर तुम रेलवे स्टेशन पर टिकट की खिड़की पर टिकट खरीदने खड़े हो, तो तुमने देखा होगा कि क्लर्क को कुछ काम भी नहीं है तो भी वह फाइलें उलटाने लगता है, तुम्हारी तरफ देखता ही नहीं। वह यह कह रहा है, तुम हो ही क्या! वह एक ढंग से नहीं कह रहा है। अगर तुम बीच में दखलंदाजी करो कि भई, मुझे टिकट चाहिए। वह कहेगा, चुप रहो! काम में बाधा न डालो। पंद्रह मिनट बाद आना। छोटा सा बच्चा अपनी मां से पूछता है, बाहर खेल आऊं?
नहीं! जैसे कि कोई गुनाह की बात पूछ रहा है, कोई अपराध करने जा रहा है। सिर्फ बाहर धूप है, पक्षी हैं, वृक्षों पर फूल खिले हैं, बच्चे को बहुत से निमंत्रण बाहर से आ रहे हैं। पड़ोसियों के बच्चे खेल रहे हैं, खिलखिला रहे हैं। वह मां से पूछता है, बाहर खेल आऊं? नहीं! जैसे नहीं तो जबान पर रखा है। नहीं कहने में मजा है, क्योंकि बल पता चलता है। हां कहने में बल पता नहीं चलता। जिसको थोड़ी सी भी सत्ता है, वह भी नहीं कहेगा। चपरासी भी नहीं कहेगा। है चपरासी, बैठा है स्टूल पर, लेकिन तुम पहुंचोगे तो यूं व्यवहार

करेगा जैसे राष्ट्रपति हो--ठहरो अभी! रुको अभी! अभी मालिक काम में उलझे हैं।
नहीं कहने में एक मजा है। मजा यह है कि देखो मेरी ताकत, रोक दे सकता हूं। बड़ों-बड़ों को रोक देता हूं। तुम किस खेत की मूली हो!
तो नहीं कहना तो बहुत छोटी बात है। अगर उस छोटी सी बात को भी कहने की हिम्मत नहीं है, तो फिर हां जैसी विराट अनुभूति को कैसे स्वीकार करोगे? नास्तिक होना नहीं कहना है। हर बच्चे को नास्तिकता से गुजरना ही चाहिए। वह अनिवार्य प्रक्रिया है। उसे नहीं कहना ही चाहिए। उसे नहीं सीखना ही चाहिए। क्योंकि नहीं कह कर ही तो, ये नहीं के कांटों के बीच में ही तो कभी हां का गुलाब खिलेगा।
हां, जिसने नहीं कही है और नहीं कहने के लिए कष्ट भोगा है, वह ज्यादा दिन तक नहीं नहीं कहता रहेगा। उसे समझ में आनी बात शुरू हो जाएगी, क्योंकि नहीं से कोई तृप्ति नहीं मिलती, संतोष नहीं मिलता, आनंद नहीं मिलता। दूसरे को दुख भला दे दो; मगर दूसरे को दुख देने में तुम्हें थोड़े ही सुख मिलता है! दूसरे को मिटा देने में तुम थोड़े ही बन जाते हो!
इंग्लैंड का एक सम्राट अपने राजदूत को फ्रांस भेज रहा था। और फ्रांस में जो उस समय सम्राट था, एकदम झक्की था। इतना झक्की कि कोई फ्रांस राजदूत होकर नहीं जाना चाहता था, क्योंकि वह जरा सी बात में बिगड़ जाए, तो गर्दन कटवा ले। वहीं! देर-अबेर भी न करे, वहीं राज-दरबार में गर्दन कटवा ले। पहले गर्दन कटवाए, फिर दूसरा काम करे।
तो मूर नाम का जो व्यक्ति भेजा जा रहा था, उसने अंग्रेज सम्राट को कहा
कि देखें, मेरे बाल-बच्चे हैं, पत्नी है, बूढ़े मां-बाप हैं, किसी और को भेज दें! वह आदमी पागल है। और आप मुझे भी जानते हैं कि मैं भी गर्म-मिजाज हूं। और उसके साथ बात बिगड़ जाएगी; ज्यादा देर चल नहीं सकती मेरी बात। अगर उसने एक शब्द भी ऐसा कुछ कहा जो मुझे नहीं जमा, तो फिर गर्दन रहे कि जाए। वह मेरी गर्दन कटवा लेगा।
अंग्रेज सम्राट ने कहा, मूर, तू फिक्र न कर। अगर उसने तेरी गर्दन कटवाई, तो कम से कम एक हजार फ्रांसीसियों की गर्दन इंग्लैंड में कटवा लूंगा उसी वक्त। तू बेफिक्र रह!
मूर ने कहा, आप कहते हैं तो जरूर करेंगे। मगर सवाल यह है कि उन एक हजार गर्दनों में से कोई भी गर्दन मेरी गर्दन पर जमेगी क्या? मैं तो गया, अब तुम हजार कटवाओ कि लाख कटवाओ, कटवाओ कि न कटवाओ, क्या फर्क पड़ता है!
मूर ने ठीक बात कही। दूसरे को मिटाने से तुम तो नहीं बनते हो। दूसरे
की मौत तुम्हारा जीवन तो नहीं हो सकती है। दूसरे का दुख तुम्हारा सुख तो नहीं। दूसरे के जीवन के फूलों को तुम नष्ट कर दो, इससे कुछ तुम्हारे जीवन की बगिया में चंपा और चमेली और जुही तो न खिल जाएंगे। पड़ोसी के घर में आग लगा दो, इससे कुछ तुम्हारा झोपड़ा महल तो न हो जाएगा।
नहीं दूसरे को तो दुख दे सकती है, इसलिए थोड़े अहंकार को मजा आ सकता है
कि देखो, चखा दिया मजा! दिखा दिया कि मैं कौन हूं! आज अहसास करवा दिया कि मैं भी कुछ हूं! लेकिन यह अहसास दूसरे को करवा देकर तुमने घाव भला पहुंचा दिया हो, लेकिन उसका घाव तुम्हारे भीतर कोई कमल का खिलना तो नहीं हो जाएगा।
तो जिसने नहीं कहा है, प्रामाणिक रूप से नहीं कहा है, जो नास्तिक है...
। नास्तिक की मेरी परिभाषा यही है कि जो नहीं कहने में तल्लीन हो गया है। जिसने इतना नहीं कहा है कि वह परमात्मा को भी नहीं कह रहा है, आत्मा को भी नहीं कह रहा है, जीवन के सर्वोच्च मूल्यों को नहीं कह रहा है। जो कह रहा है, जीवन सिर्फ पदार्थ है और कुछ भी नहीं, मिट्टी है और कुछ भी नहीं। यहां कुछ सार नहीं है, कुछ शाश्वत नहीं है।
नहीं कहने में थोड़ी-बहुत देर मजा आ जाए, लेकिन कब तक? जल्दी ही एक बात ख्याल में आएगीः अगर कुछ भी नहीं है--न परमात्मा है, न सत्य है, न सौंदर्य है, न शिवत्व है, न शाश्वतता है, न अमृतत्व है, न बुद्धत्व है--तो फिर जीवन एकदम व्यर्थ है। एक मूढ़ के द्वारा कही हुई कथा--शोरगुल बहुत, अर्थ कुछ भी नहीं। व्यर्थ की बकवास है।

नास्तिक अगर प्रामाणिक हो--रूसी नहीं, चीनी नहीं, क्योंकि रूस और चीन में नास्तिक वैसा ही झूठा है, जैसे भारत के आस्तिक झूठे हैं। भारत में आस्तिकता थोपी जाती है, चीन और रूस में नास्तिकता थोपी जाती है। हर थोपी चीज झूठी हो जाती है। जिसके भीतर से नास्तिकता जगी है! और हर बच्चे के भीतर जगती है, जगनी ही चाहिए। मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। मनोवैज्ञानिक अनिवार्यता है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हर बच्चे के जीवन में वह घड़ी आती है जब उसे नहीं कहना ही चाहिए। क्योंकि नहीं कहेगा, तो ही धीरे-धीरे मां-बाप से मुक्त होगा। नहीं कहेगा, तो ही मां की साड़ी को छोड़ेगा; नहीं तो साड़ी को पकड़े ही फिरता रहेगा। नहीं कहेगा, तो ही अपना व्यक्तित्व निखरेगा; नहीं तो मां-बाप की ही दुनिया का एक हिस्सा रहेगा; कभी भी अपनी क्षमता को अलग न कर पाएगा, अपनी प्रतिभा को निखार न पाएगा। इसलिए बच्चे को अनिवार्य रूप से नहीं कहना पड़ेगा।
वह जो बाइबिल की कथा है कि ईश्वर ने कहा अदम को और हव्वा को कि तुम इस वृक्ष के फल न खाना, यह वृक्ष ज्ञान का वृक्ष है। ध्यान रहे, चेताता हूं तुम्हें, बार-बार चेताता हूं, इस ज्ञान के वृक्ष के फल मत खाना! उन्होंने खाए ज्ञान के वृक्ष के फल। और उसी की सजा मिली उन्हें कि वे बहिश्त से निकाल कर बाहर कर दिए गए। लेकिन मैं मानता हूं कि यह कथा बड़ी मनोवैज्ञानिक है। यह हर बच्चे के जीवन में घटती है। यह सिर्फ कथा नहीं है। यह कभी इतिहास में घटी, ऐसा नहीं है। यह हर बच्चे के जीवन में घटती है, अपरिहार्यरूपेण घटती है।
मां-बाप कहेंगे, सिगरेट न पीना, और बच्चा पीएगा। मां-बाप कहेंगे, ऐसा न करना, और बच्चा वैसा ही करेगा। असल में तुम्हें जो न करवाना हो, उसकी बात ही न छेड़ना। तुम्हें जो करवाना हो, उसी के लिए इनकार करना। क्योंकि तुम जिसको इनकार करोगे, बच्चा उसे तोड़ेगा; तोड़ेगा तो ही तुमसे मुक्त हो सकता है।
जैसे एक दिन मां के गर्भ से बच्चे को बाहर आना होता है, वैसे ही एक दिन बच्चे को मां-बाप के मनोवैज्ञानिक गर्भ से भी बाहर आना होता है। और उससे बाहर आने की एक ही प्रक्रिया है कि वह कहे नहीं। मां-बाप के धर्म को नहीं कहे। मां-बाप के सिद्धांतों को नहीं कहे। मां-बाप के आचरण-संहिता को नहीं कहे। मां-बाप जो भी मानते हों, उस सबको नहीं कहे, तो ही वह उस मनोवैज्ञानिक गर्भ के बाहर आएगा और अपने व्यक्तित्व को उपलब्ध होगा। वही उसका असली जन्म है। नहीं तो वह गोबर-गणेश रह जाएगा।
अधिक बच्चे गोबर-गणेश रह जाते हैं। मां-बाप गोबर-गणेशों से बहुत प्रसन्न होते हैं। गोबर-गणेशों की खूब प्रशंसा करते हैं कि बेटा हो तो ऐसा हो! कैसा आज्ञाकारी! इधर बैठो! तो इधर बैठता है। उधर बैठो! तो उधर बैठता है। गोबर-गणेश ही हैं, बैठ गए सो बैठ गए! उठाओ तो उठें, बैठाओ तो बैठें। लेकिन इन गोबर-गणेशों से दुनिया में कोई भी सौंदर्य बढ़ा नहीं। इन गोबर-गणेशों ने दुनिया को दिया क्या?
इस दुनिया को अगर किन्हीं ने भी कुछ दिया है, तो वे वे बच्चे हैं जिन्होंने आज्ञाएं तोड़ी हैं; जो मां-बाप की आज्ञाओं के विपरीत गए हैं; जिन्होंने हिम्मत की है और साहस किया है। हिम्मत बड़ी है, क्योंकि छोटा बच्चा मां-बाप पर निर्भर होता है, सब तरह से निर्भर होता है। भोजन के लिए, वस्त्र के लिए, शिक्षा के लिए, उसका सारा जीवन ही मां-बाप पर निर्भर है। उतनी निर्भरता को भी दांव पर लगा देता है; और जो उसे करना है करता है, करके दिखाता है।
एक छोटे बच्चे ने--मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा, फजलू--उसने सेब का वृक्ष काट डाला। नसरुद्दीन ने उसकी खूब पिटाई की। पिटाई करने के पहले पूछा कि तूने सेब का वृक्ष काटा? तूने ही काटा? उसने कहा, हां, मैंने ही काटा। उसके बाप ने, नसरुद्दीन ने कहा, मैंने तुझसे कितनी बार नहीं कहा था कि
इस वृक्ष को काटना मत। तू यह कुल्हाड़ी लिए बगीचे में क्यों घूमता है? ये बगीचे को बर्बाद करना है? यह वृक्ष मैंने मुश्किल से लगाया था, बामुश्किल बड़ा हुआ था। इस भूमि में, इस तापमान में, इस आबोहवा में सेब लगते नहीं,

इसमें सेब लगने शुरू हो गए थे। मना किया, फिर भी तूने काटा! और ऊपर से तू यह भी जुर्रत कर रहा है कि इनकार भी नहीं करता, कहता है कि हां काटा।
तो बेटे ने कहा, आपने ही मुझे कहानी सुनाई थी कि अमरीका के प्रथम राष्ट्रपति वाशिंगटन ने सेब का वृक्ष काट दिया था। और जब उसके बाप ने पूछा तो वाशिंगटन ने कहा, हां, वृक्ष मैंने ही काटा है। बाप ने मारा तो नहीं, वरन पुरस्कार दिया, क्योंकि बेटा सत्य बोला। मैं तो उसी आधार पर चल रहा हूं। उलटे मुझे पिटाई पड़ रही है!
बाप ने कहा, वह कहानी मुझे मालूम है, मैंने ही तुझे सुनाई। मगर तू यह
भी ख्याल रख कि जब वाशिंगटन ने सेब का वृक्ष काटा था, तो उसका बाप वृक्ष पर नहीं बैठा था। हरामजादे, मैं वृक्ष के ऊपर बैठा हुआ था। यह भी कोई वक्त था काटने का!
लेकिन बच्चों को कितना ही तुम सताओ, जिनमें थोड़ी भी प्रतिभा है, जिनमें थोड़ी भी तेजस्विता है, वे इनकार करेंगे। उन्हें इनकार करना ही है, करना ही पड़ेगा। यह मनोवैज्ञानिक अनिवार्यता है, अपरिहार्यता है। नास्तिकता इस सारे इनकार का इकट्ठा नाम है। सारी धारणाएं, सिद्धांत, शास्त्र, परंपरा, व्यवस्था, स्थापित स्वार्थ, स्थापित मूल्य, इन सबको इनकार करने का नाम नास्तिकता है।
मेरे देखे, अमृत बोधिसत्व, जो इतना इनकार करता है, उसे एक दिन वह घड़ी जरूर आ जाती है जब यह प्रश्न उठता हैः इस इनकार से मैंने पाया क्या?
हां, मां-बाप से छूटा, मुक्त हुआ, अपने पैर पर खड़ा हुआ, अब क्या? अब आगे
की यात्रा कैसे हो? और तभी पहली दफा जीवन में आस्तिकता की किरण फूट सकती है, अगर संयोग मिल जाए किसी आस्तिक से मिलने का।
तुम धन्यभागी थे कि मुझे मिल गए। मैंने तुम्हें नाम दिया, अमृत बोधिसत्व। वे दो शब्द मैंने तुम्हारे लिए उपयोग किए, उन्हीं दो को तुम इनकार करते रहे थे। अमृत यानी परमात्मा, शाश्वत, जो सदा है। और बोधिसत्व अर्थात उसे जान लेना, पहचान लेना, अनुभव कर लेना, बुद्धत्व को पा लेना। मैंने तुम्हें जो दो शब्द दिए, वे तुम्हारी पूरी चालीस साल की नास्तिकता की पृष्ठभूमि में ही दिए। उसी पृष्ठभूमि में वे उभर कर प्रकट हुए।
तुम कहते हो, "मैं चालीस साल तक नास्तिक था। समाजवादी विचारधारा में जीवन गंवाने के बाद पिछले पंद्रह वर्षों से आपका संपर्क पाया। और जीवन में जो आनंद और उत्सव का अनुभव किया, उसका कैसे वर्णन करूं!"
इन पंद्रह वर्षों में और भी लाखों लोग मेरे संपर्क में आए, लेकिन उन सभी को वह आनंद और उत्सव अनुभव नहीं हुआ, जो तुम्हें अनुभव हुआ है। और उसका कारण तुम्हारी नास्तिकता थी। तुम तैयार थे, तुम्हारी पृष्ठभूमि तैयार थी। आस्तिक भी मेरे संपर्क में आए हैं। मगर चूंकि उनकी आस्तिकता झूठी थी, उनका मेरे संपर्क में आना भी झूठा हुआ। मेरे और उनके बीच एक दीवाल बनी रही। तुम उघाड़े थे। तुम्हारे और मेरे बीच कोई दीवाल न थी। तुमने सारे वस्त्र पहले ही फेंक दिए थे। तुम नग्न खड़े थे सूरज में। तुमसे मेरा संपर्क सीधा हो सका।
आस्तिक यहां आ जाता है, तो उसे बड़ी मुश्किल होती है, क्योंकि उसकी धारणाएं बीच में खड़ी रहती हैं। उसकी आकांक्षा होती है कि मैं उसकी धारणाओं का समर्थन करूं! और मैं उसका दुश्मन नहीं हूं, तो कैसे उसकी धारणाओं का समर्थन करूं! उसकी धारणाओं का समर्थन करूं तो उसके जीवन में कभी क्रांति नहीं होगी। मुझे तो उसकी धारणाएं तोड़नी ही पड़ेंगी। तुम्हारी कोई धारणा न थी, इसलिए काम आधा तो तुम कर ही चुके थे। पुराने को तो तुम मिटा चुके थे, नए को बनाने की बात थी। वह बहुत आसान है। असली सवाल तो पुराने को मिटाना है, क्योंकि पुराने से हमारा मोह होता है। नए को बनाने के लिए तो हरेक उत्सुक हो जाता है। लेकिन जिनका पुराने से मोह है, उनके मोह बड़े भयंकर होते हैं।
मैंने सुना, एक पुराना चर्च था। वह गिरने के करीब था। इतना जीर्ण-जर्जर कि उसके भीतर जाकर कोई प्रार्थना करने में भी डरता था, कि जरा हवा जोर से चलती थी, तो चर्च कंपता था, चरमराता था। अब गिरा, तब गिरा! औरों की तो बात छोड़ दो, पादरी भी भीतर नहीं जाता था। वह भी चर्च के बाहर से ही प्रार्थना करके लौट जाता था।

आखिर चर्च के जो प्रमुख थे, उनकी बैठक हुई। और उन्होंने कहा, अब कुछ करना होगा। अब चर्च में लोगों ने जाना ही बंद कर दिया; इतना ही नहीं, चर्च के पास से भी निकलना बंद कर दिया; क्योंकि पता नहीं कब गिर जाए। और चर्च पुराना है।
और जितना पुराना हो उतना ही बहुमूल्य होता है। यह कुछ अजीब धारणा है लोगों की, कि पुराना जितना हो उतना ही मूल्यवान होता है। बिल्कुल मरा- मराया हो, सड़ा-सड़ाया हो, उतना ज्यादा मूल्यवान। लाश ही बची हो, अस्थिपंजर ही रह गए हों, तो और भी मूल्यवान। लोग अपने-अपने धर्म को पुराना सिद्ध करने में ऐसी दीवानगी करते हैं, सच और झूठ की फिक्र ही नहीं करते। गुड़ भी हो तो गोबर कर देते हैं। सिद्ध करने की चेष्टा कि पुराना, पुराना होना चाहिए। सारे वैज्ञानिक आधारों से तय होता है कि वेद पांच हजार साल से ज्यादा पुराने नहीं हैं, लेकिन लोकमान्य तिलक की चेष्टा जीवन भर यह रही कि नब्बे हजार साल पुराने हैं। क्यों? ऐसा क्या दीवानापन है? पुराना है, तो मूल्यवान होना चाहिए! जितना पुराना हो! जैसे कि धर्म न हुआ, शराब हुई; जितनी पुरानी हो, उतनी ही कीमती। सभी धर्म इस चेष्टा में लगे रहते हैं; एक-दूसरे को हराने की चेष्टा में लगे रहते हैं।
ईसाई तो मानते हैं कि पृथ्वी का जन्म ही जीसस से चार हजार चार वर्ष पहले हुआ। इसलिए नब्बे हजार साल पहले वेद रचे गए, यह बात तो व्यर्थ ही हो गई। समय ही कहां था? कुल चार हजार चार वर्ष ईसा से पूर्व, इतना ही तो कुल समय था। मगर इसके तो प्रमाण हैं कि समय इससे बहुत पुराना था, स्पष्ट प्रमाण हैं।
लेकिन प्रमाणों को कोई सुनता है! अंधे कहीं प्रमाणों को सुनते हैं! ईसाई पादरियों ने यह तर्क खोज निकाला है कि वे प्रमाण ठीक हैं; वे प्रमाण ईश्वर ने आस्तिकता की परीक्षा के लिए रख दिए हैं। अरे, ईश्वर क्या नहीं कर सकता! जो दुनिया बना सकता है, वह क्या नहीं कर सकता! उसने जमीन के भीतर ऐसी हड्डियां रख दीं, जो मालूम पड़ती हैं कि नब्बे हजार साल पुरानी हैं। मगर हैं नहीं। उसके लिए क्या कठिन है! यह तो परीक्षा के लिए बनाई हैं उसने कि देखें, कौन असली श्रद्धावान है और कौन नकली! इससे तय हो जाएगा।
लोकमान्य तिलक कहते हैं कि नब्बे हजार साल पुराना है वेद। जैन बड़े प्रसन्न होते हैं। वे कहते हैं, बिल्कुल ठीक। ठीक कहते हैं आप। नब्बे हजार साल पुराना होना ही चाहिए, क्योंकि ऋग्वेद में हमारे प्रथम तीर्थंकर का उल्लेख है। सो निश्चित, हमारे प्रथम तीर्थंकर तुम्हारे ऋग्वेद से भी पुराने हैं। और सम्मानपूर्वक उल्लेख है!
और यह तो आदमी की आदत है कि जिंदा संत को कोई सम्मान देता है? अपमान देते हैं। यह तो सीधा गणित है। जिंदा संत को अपमान, मुर्दा संत को सम्मान। तो इतने सम्मान से उल्लेख है ऋग्वेद में जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभ का, इससे सिद्ध होता है कि कम से कम तीन सौ से लेकर पांच सौ वर्ष तो गुजर ही चुके होंगे। नहीं तो इतना सम्मान नहीं हो सकता। जीवित अगर होते वह, तब तो अपमान होता, गालियां पड़तीं।
आदमी का कुछ गणित है। जिंदा तीर्थंकर हो, गाली दो; क्योंकि जिंदा तीर्थंकर तुम्हारी धारणाओं के विपरीत होगा। और जब मर जाए, तो सम्मान करो; क्योंकि मर जाए, तो फिर पश्चात्ताप पकड़ता है कि अरे, हमने गालियां दीं, अपमान किया, पाप किया, अब कहीं फल न भोगना पड़े! तो जिंदा हो तो पत्थर मारो, मर जाए तो फूल चढ़ाओ। वे फूल भी तुम्हारे पत्थरों का पश्चात्ताप हैं, और कुछ भी नहीं। जीसस को सूली दो, और फिर मर जाने के बाद दो हजार साल तक हजारों-हजारों चर्चों में पूजा करो। सुकरात को जहर पिलाओ, और फिर ढाई हजार सालों तक दर्शन-शास्त्रों की हर किताब में सुकरात को घोषित करो कि इससे महान कोई दार्शनिक नहीं हुआ। यह पश्चात्ताप है, और कुछ भी नहीं।
जो व्यक्ति धारणाओं से भरा आता है, उसके साथ मुझे मुश्किल खड़ी हो जाती है। उसकी धारणाओं के अनुकूल मुझे होना चाहिए, तो वह मेरे साथ राजी होता है। और मैं उसकी धारणाओं के अनुकूल कैसे हो सकता हूं?
अजयकृष्ण यहां हैं। उनको कम्मू बाबा परेशान किए हुए हैं। कम्मू बाबा मेरे और उनके बीच खड़े हैं। कम्मू बाबा नहीं खड़े हैं, अजयकृष्ण उनको खड़ा किए हुए हैं! वे तो जा भी चुके! मगर कम्मू बाबा की आड़ अजयकृष्ण को बचा रही

है। हर चीज को वे कम्मू बाबा को बीच में लाकर देखते हैं। क्योंकि कम्मू बाबा ने कहा कि हमेशा अपने माता-पिता का सम्मान करना, उनकी इच्छा के विपरीत न जाना। अजयकृष्ण को संन्यास लेना है, लेकिन मां कहती है, इससे मुझे दुख होगा। कैसे संन्यास लें? कम्मू बाबा कहते थे कि कभी अपने मां-बाप को दुख न देना!
और जरा यह तो पूछो कि कम्मू बाबा ने अपने मां-बाप को कितना दुख दिया होगा! नहीं तो कम्मू बाबा हो पाते? ये अजयकृष्ण कम्मू बाबा हो पाएंगे कभी? सोचो! कम्मू बाबा के तो मां-बाप का भी पता चलाना मुश्किल होगा। ऐसे भागे होंगे दुख देकर कि फिर पीछे लौट कर न देखा होगा। कम्मू बाबा से... ।
लेकिन नहीं, हमारी धारणा। हमारी धारणा की परिपूर्ति होनी चाहिए। गुरजिएफ से किसी ने पूछा कि सारे धर्मशास्त्र कहते हैं कि अपने मां- बाप को आदर दो, सम्मान दो। क्यों? तो गुरजिएफ ने कहा, इसका कारण है। इसमें ईश्वर की चालबाजी है।
सुन कर वह आदमी बहुत हैरान हुआ। गुरजिएफ तो अपने किस्म का अनूठा आदमी था। और इस तरह के अनूठे आदमी अनूठी बात ही कहते हैं। उसने कहा, क्या कहते हैं आप! इसमें ईश्वर की चालबाजी है?
गुरजिएफ ने कहा, निश्चित ईश्वर की चालबाजी है, क्योंकि ईश्वर को भलीभांति पता है, जो व्यक्ति अपने मां-बाप को आदर देता है, वह ईश्वर को भी आदर देगा। अरे, जो मां-बाप तक की फिक्र नहीं करता, वह क्या खाक फिक्र ईश्वर-वीश्वर की करेगा! ईश्वर यानी महापिता। जब छोटे ही पिता को धक्का दे दिया, तो आकाश में बैठे पिता की कौन फिक्र करता है? देखा जाएगा, जब मिलेंगे! और अभ्यास तो यहीं हो रहा है। अगर यहीं छोटे-छोटे मां-बाप से डरे रहे, तो बड़े पिता के सामने तो एकदम कंपोगे, एकदम घुटनों पर गिर पड़ोगे। कहोगे कि हे परम प्रभु, दया करो, बचाओ, रक्षा करो! मैं तो पतित हूं, तुम पतितपावन हो! गुरजिएफ ने बात ठीक कही कि सारे धर्मशास्त्र इसलिए कहते हैं; इसमें परमात्मा की चालबाजी है। परमात्मा की हो या न हो, लेकिन पुरोहितों की चालबाजी जरूर। क्योंकि मां-बाप को आदर दो, तो पुरोहित को भी तुम आदर दोगे, क्योंकि मां-बाप और पुरोहित एक ही शड्यंत्र के हिस्से हैं। मां-बाप कहते हैं, पुरोहित को आदर दो; पुरोहित कहता है, मां-बाप को आदर दो। पुरोहित समर्थन करता है मां-बाप का; मां-बाप समर्थन करते हैं पुरोहित का।
लेकिन जब भी तुम बुद्ध या महावीर या जीसस जैसे व्यक्ति के पास जाओगे,
तो तुम्हारी इन धारणाओं का कोई समर्थन नहीं हो सकता।
अब तो अजयकृष्ण कुछ ऐसे घबड़ा गए हैं कि कल उन्होंने झूठे नाम से प्रश्न पूछा। कल जो नवलकिशोर डीड़ी.के नाम से जो प्रश्न था, वह अजयकृष्ण का था। नवलकिशोर को मैं जानता हूं, वर्षों से जानता हूं। उन्होंने कभी प्रश्न पूछा ही नहीं। अचानक वे प्रश्न पूछेंगे, इसकी संभावना नहीं। और पूछ भी नहीं सकते; वे अपने बाप से डरे हुए हैं। उनके पिता जो हैं डी. डी., वे उनके हाथ-पैर तोड़ देंगे अगर उनको पता चल गया कि इधर आकर उन्होंने प्रश्न पूछा है। वह प्रश्न पूछा है अजयकृष्ण ने, नाम लिख दिया--उनके मित्र हैं-- नवलकिशोर। पूछ कर लिख दिया होगा नाम कि भैया, तुम्हारा नाम लिख रहा हूं, या बाद में बता दिया होगा, या न भी बताया हो। क्योंकि कम्मू बाबा ने यह तो कहा नहीं कि अपने मित्र के नाम से कभी प्रश्न न पूछना!
अजयकृष्ण सुनते भी हैं व्याख्यान, तो यहां बुद्ध-भवन में बैठ कर नहीं सुनते! बाहर, बगीचे में बैठ कर। इतने पास बैठ कर सुनना खतरनाक है। अरे, सम्मोहित हो जाएं, कुछ से कुछ हो जाए! थोड़ी देर को भूल-भाल जाएं कम्मू बाबा को; कोई बात गले उतर जाए! तो उधर दूर बैठे रहते हैं दरवाजे के पास कि अगर एकदम कोई बात पकड़ ही ले, तो कम से कम भागने की सुविधा तो है; दरवाजे से निकल भागें! शरीर भी थोड़ा वजनी है; दरवाजे के पास ही रहना ठीक है। एकदम भागें इधर से और कोई गार्ड वगैरह पकड़ ही ले! और उतनी देर में तो बात ही हो जाए। अरे, बात होने में कोई देर लगती है! कभी-कभी तो एक शब्द काम कर जाता है। तो अपनी सुरक्षा से चलना चाहिए।
अमृत बोधिसत्व जब मेरे पास आए थे, तो नास्तिक थे, समाजवादी थे; दोनों बातों ने सहयोग दिया। उससे हानि नहीं हुई। नास्तिक थे, तो मुझे कुछ मिटाने को न था। वे खुद ही पुराने चर्च को गिरा चुके थे। जमीन साफ थी।

यह मैंने पुराने चर्च की तुमसे कहानी कही। लोग डरने लगे, तो इकट्ठे हुए ट्रस्टी। और उन्होंने कहा, अब क्या करें? चर्च तो पुराना है, गिराना उचित भी नहीं, पुरानी चीज! और बचाया भी नहीं जा सकता। तो कुछ बीच का रास्ता। तो उन्होंने बीच का रास्ता निकाला। उन्होंने चार प्रस्ताव स्वीकार किए--सर्वसम्मति से। पहला प्रस्ताव कि हमें बहुत दुख है, लेकिन मजबूरी है, प्रभु क्षमा करना, कि तेरे पुराने चर्च को हमें गिराना पड़ेगा। दूसरा प्रस्ताव सर्वसम्मति से कि यद्यपि हम पुराना चर्च गिरा रहे हैं, लेकिन हम कसम खाते हैं कि नए चर्च में कोई भी नई चीज नहीं लगाएंगे। पुराने चर्च के ही दरवाजे, पुराने ही चर्च की खिड़कियां और कांच, पुराने चर्च की ही मूर्ति और पत्थर, पुराने चर्च की ही ईंटें, हर चीज पुराने चर्च की ही लगाएंगे! और तीसरा प्रस्ताव स्वीकृत किया सर्वसम्मति से कि जब तक नया चर्च बन न जाए, तब तक हम पुराने को गिराएंगे भी नहीं। जब नया बन कर खड़ा हो जाएगा, तो हम पुराने को गिराएंगे। और चौथा--और वह भी सर्वसम्मति से--कि नए चर्च को हम ठीक वहीं बनाएंगे जहां पुराना चर्च है! वही बुनियाद, वही भूमि, वही स्थापत्य, वही ढंग।
और इन मूढ़ों को यह भी ख्याल न आया, ये क्या प्रस्ताव स्वीकार कर रहे हैं! मगर यह हर आदमी की मूढ़ता है। अतीत को हम पकड़ते हैं, जोर से पकड़ते हैं। उसमें बड़ी सांत्वना मिलती है।
अमृत बोधिसत्व जब मेरे पास आए, उनके पास कोई अतीत न था, मैं प्रसन्न हुआ था। नास्तिक को देख कर मैं सदा प्रसन्न होता हूं। ये जो लोग आ जाते हैं--कोई कम्मू बाबा को लेकर आ गया, कोई मुईनुद्दीन बाबा को लेकर आ गया, कोई निजामुद्दीन बाबा को लेकर आ गया--इनके बाबा देख कर ही मैं सोचता हूं कि पहले इन बाबा से सिर फोड़ो! किसी तरह बाबा में से बोगदा बनाओ, तब कहीं ये दिखाई पड़ें तो पड़ें। ये छिपे हैं बहुत पीछे। और अक्सर तो यह होता है कि एक बाबा नहीं होता, बाबा अकेले नहीं पाए जाते। एक बाबा, तो उसके पीछे और-और बाबा होते हैं। बाबाओं की कतार लगी होती है, क्यू लगे होते हैं। बाबाओं की परंपरा होती है, सिलसिले होते हैं।
जब भी मैं किसी नास्तिक व्यक्ति को देखता हूं, तो आह्लादित होता हूं। हां, नास्तिकता उसकी निज होनी चाहिए। उसकी स्लेट कोरी है। उसकी स्लेट पर काम किया जा सकता है। उसका कैनवस कोरा है। उस पर चित्र उभारा जा सकता है। उसका दर्पण निर्मल है, उसमें परमात्मा की छवि बन सकती है।
और तुम समाजवादी थे, अमृत बोधिसत्व, इससे भी लाभ हुआ। क्योंकि समाजवादी ही केवल समझ सकता है व्यक्तिवाद का मूल्य। जीवन बड़ा अनूठा गणित है! जिन लोगों के जीवन में समाजवाद की कोई स्पष्ट रूप-रेखा नहीं है, उनके सामने व्यक्ति की भी कोई रूप-रेखा नहीं होती। रहते हैं भीड़ में, भीड़ के हिस्से होते हैं; मगर चूंकि समाजवाद की कोई स्पष्ट रूप-रेखा नहीं होती, इसलिए व्यक्ति को भी अलग करके देखने की क्षमता नहीं होती।
समाजवादी का अर्थ क्या होता है? समाजवादी का अर्थ होता हैः व्यक्ति
का कोई मूल्य नहीं; व्यक्ति केवल समाज के लिए एक उपकरण मात्र है, साधन मात्र है। समाज साध्य है, व्यक्ति साधन है। व्यक्ति की कुर्बानी दी जा सकती है समाज के लिए।
लेकिन असलियत यह है कि समाज केवल एक शब्द है। समाज कहीं मिला तुम्हें? जरा ढूंढने निकलो, तुम्हें कहीं कोई समाज मिलेगा? जब मिलेगा, कोई व्यक्ति मिलेगा। व्यक्ति का यथार्थ है। समाज तो केवल संज्ञा मात्र है। अच्छे- अच्छे प्यारे-प्यारे शब्द बहुत भटकाने और भरमाने वाले हो जाते हैं--समाज, मनुष्यता! मनुष्यता को कहां खोजोगे?
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम मनुष्यता को प्रेम करते हैं।
मैं उनसे कहता हूं, मनुष्य को प्रेम करो। मनुष्यता को क्या खाक प्रेम करोगे! कैसे करोगे? गले लगाओगे मनुष्यता को? यह तो तरकीब है बचने की। मनुष्य को तो तुम छोड़ना चाहते हो, मनुष्य से तो बचना चाहते हो, क्योंकि मनुष्य तो यथार्थ है। मनुष्यता का अच्छा शब्द खोज लिया तुमने, एक हवाई शब्द, जिसमें कुछ भी नहीं है। खाली शब्द।
लेकिन उस खाली शब्द को सिर पर उठाए लिए फिरोगे, झंडा ऊंचा रहे हमारा!
और झंडे में है क्या? एक कपड़े का टुकड़ा बांध रखा है, रंगीन कर लिया होगा।

और झंडा है क्या? सिर्फ डंडे को छिपाने का उपाय है, और कुछ भी नहीं। जब तुम कहते हो, झंडा ऊंचा रहे हमारा! तब ठीक से समझ लेना, तुम यह कह रहे हो, डंडा ऊंचा रहे हमारा! लेकिन डंडा ऊंचा रहे हमारा, यह अगर कहो, तो और डंडे उठ जाएंगे कि कौन है तू डंडा ऊंचा करने वाला? झंडा ऊंचा रहे हमारा, ठीक है भई, मजे से करो, झंडे में क्या हर्जा है? मगर झंडे के भीतर होता डंडा ही ऊंचा है।
मनुष्यता को प्रेम करते हैं! दिव्यता को प्रेम करते हैं! सत्य को प्रेम करते हैं! सौंदर्य को प्रेम करते हैं! मगर यथार्थ? यथार्थ कुछ और है। खोजने जाओगे, मनुष्यता नहीं मिलेगी, मनुष्य मिलेगा। सौंदर्य नहीं मिलेगा, सुंदर फूल मिलेंगे, सुंदर सूरज मिलेगा, सुंदर चांद-तारे मिलेंगे। कोई सुंदर तत्व मिलेगा, सौंदर्य नहीं। ये तो कोरे शब्द हैं, थोथे शब्द हैं। मगर थोथे शब्द बड़े महत्वपूर्ण बन जाते हैं, इतने महत्वपूर्ण बन जाते हैं कि हम यथार्थ की कुर्बानी चढ़ा सकते हैं।
समाजवादियों ने व्यक्ति की कुर्बानी चढ़ा दी। रूस में स्टैलिन ने अंदाजन एक करोड़ व्यक्ति मारे, और बेझिझक मारे। और मार सका बिना किसी संकोच के, बिना किसी अपराध भाव के। कारण? एक ऊंचा शब्द! यह व्यक्ति कोई अपने लिए तो मार नहीं रहा है, कोई हिंसा तो कर नहीं रहा है। यह तो समाजवाद की वेदी पर आहुति चढ़ाई जा रही है। यह तो जो लोग समाजवाद के आने में बाधा डाल रहे हैं, उनकी कुर्बानी चढ़ाई जा रही है।
व्यक्ति मारे समाजवाद के लिए। और समाजवाद किसके लिए है? व्यक्तियों
के लिए। कैसा चक्कर है! कैसा दुष्टचक्र है! समाजवाद है व्यक्तियों के लिए और व्यक्ति काटे जा रहे हैं समाजवाद के लिए! स्टैलिन का तर्क पुराना तर्क है, कोई नया नहीं। हमेशा ऊंची चीज के लिए नीचे को कुर्बान किया जा सकता है। लेकिन ख्याल रखना कि ऊंची चीज है भी या नहीं? या केवल एक कोरा शब्द है? शांति के लिए लोग युद्ध करते हैं। क्या मजा है! कहते हैं शांति, और करते हैं युद्ध! और कहते हैं, शांति की रक्षा के लिए कर रहे हैं!
मोहम्मद की तलवार पर यह वचन खुदा हुआ थाः शांति ही मेरा धर्म है।
तलवार पर यह वचन खुदा हुआ था! और मोहम्मद ने अपने धर्म को भी नाम दिया, इसलाम। इसलाम का अर्थ होता है, शांति का धर्म। और इसलाम ने जितनी अशांति फैलाई है, शायद किसी ने भी नहीं फैलाई है। तलवार के बलबूते पर जबरदस्ती इसलाम करोड़ों लोगों पर थोपा गया है। और यह शांति का धर्म है!
हिंदू सहिष्णुता की बात करते हैं। और हजारों साल से जितना हिंदुओं ने शूद्रों को सताया है, दुनिया में किसी ने किसी को नहीं सताया। और सहिष्णु! और इनको सब जगह कण-कण में परमात्मा के दर्शन होते हैं। मगर शूद्र में नहीं होते! स्त्री में नहीं होते! स्त्री नर्क का द्वार है! यह बड़ा मजा है! कण-कण में राम बसा है! सियाराम मय सब जग जानी। मगर सिया का अलग से पूछो मामला, तो नर्क का द्वार! सीता मैया नर्क का द्वार; रामचंद्र जी से जोड़ दो, तो बस सोने में सुगंध आ गई; नर्क का द्वार एकदम स्वर्ग का द्वार हो गया! कण-कण में इनको परमात्मा दिखाई पड़ता है, लेकिन शूद्रों में नहीं।
हिंदुओं ने जितना अनाचार किया स्त्रियों के साथ, शूद्रों के साथ, उतना दुनिया में किसी ने भी नहीं किया। और यह धर्म सहिष्णुता का धर्म है, प्रेम का धर्म है, विश्व-बंधुत्व का धर्म है! दावा है हमारा कि सारा विश्व हमारा कुटुंब है। और शूद्र को भी हम अपने परिवार का हिस्सा न बना सके! शूद्र को तो छोड़ दो, स्त्री को भी हम अपना अंग न बना सके!
जैन मानते हैं, स्त्री-पर्याय से किसी का मोक्ष नहीं। क्या मजा है! और यही जैन कहते हैं कि तुम शरीर नहीं हो, आत्मा हो। जरा देखते हो असंगतियां, मूढ़तापूर्ण बातें! तुम शरीर नहीं हो, आत्मा हो। तो क्या आत्मा भी स्त्री और पुरुष होती है? आत्मा तो बस आत्मा ही है। उसमें कैसे स्त्री-पुरुष होगा कोई? शरीर ही स्त्री-पुरुष होता है। और अगर व्यक्ति शरीर है ही नहीं, तो ध्यान को उपलब्ध व्यक्ति, समाधि को उपलब्ध व्यक्ति स्त्री होगा या पुरुष? लेकिन जैन कहते हैं कि स्त्री-पर्याय से मोक्ष नहीं।
एक जैन स्त्री--पता नहीं किस भूल-चूक से, बड़ी हिम्मतवर स्त्री रही होगी--तीर्थंकर हो गई। जरूर अदभुत हिम्मत की रही होगी। मल्लीबाई उसका नाम था। जैनियों को बड़ा कष्ट हुआ होगा। रही होगी बलशाली महिला कि जैनियों को

भी पानी पिला दिया! और लगता है, बिना छाने पिला दिया। क्योंकि स्त्री का तो पर्याय, उस पर्याय से मोक्ष ही नहीं; मोक्ष की बात ही छोड़ो--मल्लीबाई भी अदभुत हिम्मत की औरत रही होगी--उसने तो घोषणा ही कर दी कि वह तीर्थंकर है। अरे, मोक्ष तो उसे मिल ही गया, दूसरों को भी मिलाने की हकदार है। बड़ी हिम्मतवर स्त्री रही होगी।
मगर जैनियों ने क्या चालबाजी की, उसका नाम ही बदल दिया। मल्लीबाई नहीं, मल्लीनाथ कर दिया। इसलिए जब तुम जैनियों के तीर्थंकरों की फेहरिस्त पढ़ोगे, तो तुम्हें पता भी नहीं चलेगा इसमें एक स्त्री भी है। नेमीनाथ, पार्श्वनाथ, उसी में मल्लीनाथ। क्या चालबाजियां हैं! थी बेचारी स्त्री, बाई को नाथ कर दिया। अब बाई को बाई कैसे कहें! अगर बाई कहें, तो सारा शास्त्र गड़बड़ होता है। अगर स्त्री तीर्थंकर हो गई, तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। फिर स्त्री को नर्क का द्वार कैसे कहोगे?
जैन बातें तो करते हैं आत्मा की, मगर अटके हैं शरीर से ही। अभी स्त्री- पुरुष की ही बात चल रही है। ऊंचे शब्द!
कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि तू फिक्र मत कर मारने में, क्योंकि आत्मा मरती ही नहीं। क्या अदभुत सिद्धांत! जब आत्मा मरती ही नहीं तो तू बेफिक्री से मार। पागल हो गया है कि छोड़ कर भागता है युद्धक्षेत्र को? धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे! यह तो धर्म का युद्ध हो रहा है। कहां भाग रहा है? जूझ! और परमात्मा ने जिनको मारना है, उनको वह मार ही चुका है; तू तो निमित्त मात्र है।
अगर यह बात सच है, तो फिर हिटलर का क्या कसूर है? तो फिर स्टैलिन का क्या कसूर है? तो फिर माओत्से तुंग का क्या कसूर है? फिर ये छोटे-मोटे हत्यारे, यह नाथूराम गोडसे, इसका क्या कसूर है? अरे जब परमात्मा ने मार ही डाला, तो यह तो बेचारा निमित्त मात्र है। और इसने कोई ज्यादा कसूर नहीं किया, एक महात्मा गांधी को मारा; वे भी काफी बूढ़े हो चुके थे और मरना चाहते थे।
मरने के दो ही दिन पहले उन्होंने कहा था कि अब मैं जीना नहीं चाहता। परमात्मा ने सुन ली होगी। कभी-कभी सुन लेता है! और तभी तो उसने भेज दिया नाथूराम! नाथूराम मतलब कलियुगी राम। हैं तो राम ही, नाथू ही हुए तो क्या! और पुण्य-नगरी पूना के निवासी! क्या जगह चुनी उन्होंने भी! पुण्य-नगरी पूना से भेज दिया नाथूराम को, कि अब राम तुम्हीं जाओ, मेरा भक्त मुश्किल में पड़ा है। मेरा भक्त कह रहा है, अब मुझे जीना नहीं।
महात्मा गांधी कहते थे, मैं एक सौ पच्चीस वर्ष जीऊंगा। मगर जब से सत्ता कांग्रेसियों के हाथ में आई तब से उनको पता चला, अब जीना बेकार है। क्योंकि जैसे ही उनके शिष्य सत्ता में गए, उन्होंने उनकी फिक्र ही छोड़ दी। अरे, कौन फिक्र करता है तुम्हारी! कीमत तुम्हारी तभी तक थी, जब तक सत्ता हाथ में न आई थी। अब सत्ता उनके हाथ में थी, तुम हो क्या? रहो तो ठीक, न रहो तो ठीक। असल में न ही रहो तो ज्यादा ठीक, क्योंकि रहोगे तो कुछ न कुछ गड़बड़ करोगे, कुछ दखलंदाजी करोगे, कुछ दांव-पेंच बताओगे, कुछ इधर-उधर की बातें लाओगे; उनकी राजनीति को ठीक से न चलने दोगे। वे भी चाहते थे कि छुटकारा हो। भीतरी! ऊपर चाहे न भी कहते हों। क्योंकि सात दिन पहले ही सरदार वल्लभभाई पटेल ने लखनऊ की एक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की रैली में यह घोषणा की थी कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से ज्यादा सुंदर, सुव्यवस्थित, सुसांस्कृतिक और धार्मिक कोई संगठन भारत में नहीं है। और उसी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सदस्य ने महात्मा गांधी को गोली मारी।
मगर कसूर क्या? एक ही आदमी को मारा।
अगर हम शास्त्रों को मान कर चलें, तो वह जो कुरुक्षेत्र का युद्ध हुआ, धर्मक्षेत्र जो था--खूब हुआ धर्मक्षेत्र में भी काम--एक अरब से लेकर सवा अरब आदमी के बीच लोग मरे। एक अरब व्यक्ति! अभी भी भारत में नहीं हैं। अभी दुनिया की कुल आबादी चार अरब अब हो पाई--सारी दुनिया की! अभी भारत की आबादी तो केवल सत्तर करोड़ है। अभी भी भारत में एक अरब लोग नहीं हैं। उस समय कुरुक्षेत्र के छोटे से मैदान में गजब कर दिया!
मगर चमत्कार ही करना हो परमात्मा को तो क्या नहीं कर सकता! अरे, उसके हाथ में सब कुछ है। एक अरब आदमी कैसे बिठा दिए! यूं समझो कि रहा होगा कोई...

जैसे रेलगाड़ी का कंडक्टर थर्ड क्लास के डब्बे में आदमी भरता ही चला जाता है, भरता ही चला जाता है। इसीलिए तो उसको डब्बा कहते हैं! डब्बा जैसा सुंदर शब्द दुनिया की किसी भाषा में नहीं है। दुनिया की किसी भाषा में रेल के डब्बे को डब्बा नहीं कहते; यहीं कहते हैं, क्योंकि यहां उसका व्यवहार डब्बे की तरह होता है। भरते जाओ! न संख्या का कोई सवाल है। भरने वाले चाहिए। या रहा होगा कोई दिल्ली का टैक्सी चलाने वाला।
एक टैक्सी में अठारह आदमी पकड़े गए! टैक्सी को पकड़ कर थाने ले जाया गया। सरदार जी, जो टैक्सी चला रहे थे, उनको बहुत डांटा-डपटा थानेदार ने और कहा कि तुमने हद्द कर दी; अठारह आदमी! सरदार ने कहा कि आप भरोसा करते हो? तो अठारह आदमी बिठा कर बता दो! हालांकि अठारह आदमी उनके ही सामने उतारे गए थे, मगर थानेदार और सारे पुलिस वाले कोशिश करके अठारह आदमी न बिठा सके गाड़ी में।
तो उस टैक्सी वाले ने कहा, अब बोलो! अरे, जब बैठ ही नहीं सकते अठारह, तो सरासर झूठ बात है। थानेदार ने कहा, तूने भी गजब कर दिया! अपनी आंखों से हमने उतरते देखे, मगर चढ़ा नहीं पा रहे, यह हम भी मानते हैं!
तो भगवान भी कोई टैक्सी वाला रहा या क्या! कुरुक्षेत्र का छोटा सा मैदान! हां, हाकी-क्रिकेट का मैच करना हो तो ठीक। ओलंपिक भी करना हो तो मुश्किल पड़ जाए, तो छोटा पड़ जाए। वहां सवा अरब आदमी मरवा डाले! और जरा सोचो तो कि सवा अरब आदमी जहां लड़े हों, वहां थोड़ी-बहुत जगह भी तो चाहिए। अगर घमासान एक-दूसरे के साथ खड़े हों, तो घूंसा तक चलाना मुश्किल! तलवारें वगैरह निकालेंगे कहां? और हाथी-घोड़ों का क्या होगा? और रथ वगैरह कैसे चलेंगे? ये तो वैसे ही मर जाएंगे, बिना मारे मर जाएंगे।
मगर कृष्ण ने कहा कि बेफिक्री से मार, क्योंकि आत्मा तो मरती ही नहीं।
जब आत्मा मरती ही नहीं, तो दुनिया में फिर हत्या का कोई अपराध ही नहीं। अच्छे-अच्छे शब्दों की आड़ में भी हम क्या-क्या छिपा लेते हैं! आत्मा नहीं मरती, इसलिए मारो बेफिक्री से! और परमात्मा के बिना इशारे के तो पत्ता नहीं हिलता। तो तुम मारोगे कैसे? उसने मार ही दिया होगा पहले। तुम न मारोगे, कोई और मारेगा।
अच्छे शब्दों ने मनुष्य की छाती पर पहाड़ रख दिए हैं। समाजवाद अच्छा शब्द है, प्यारा शब्द है; मगर झूठा, निहायत झूठा! दुनिया में व्यक्ति हैं, समाज कहीं भी नहीं; मनुष्य हैं, मनुष्यता कहीं भी नहीं। मगर यह समाजवादी को ही समझ में आ सकता है।
तुम जब मेरे पास आए थे, समाजवादी विचारधारा और नास्तिकता में डूबे हुए, तो मैंने देखा था कि संभावना है। अब तुम ऊब गए थे। देख चुके थे तुम समाजवाद को भी, उसकी व्यर्थता को भी। नास्तिकता को तुमने जी लिया था और देख चुके थे उसकी निरर्थकता को। वहीं से संन्यास का फूल खिल सकता था। इसलिए तुम्हें मैंने नाम दियाः अमृत बोधिसत्व। और आज वह घड़ी आ गई कि तुम कह सकते हो कि अब जीवन में आनंद है, उत्सव है, उसका कैसे वर्णन करूं! उसका वर्णन तो नहीं किया जा सकता।
तुम कहते हो, "आप क्या मिले, सब कुछ मिल गया!"
कहना तो कठिन हो जाता है। जो भी महत्वपूर्ण है, अनकहा रह जाता है।

किसको आती है मसीहाई, किसे आवाज दूं?
बोल ऐ खूंखार तनहाई, किसे आवाज दूं?
पढ़ते-पढ़ते, पढ़ते-पढ़ते दुख गई हैं पुतलियां,
बुझ रही है शम्मए-बीनाई, किसे आवाज दूं?
चुप रहूं तो हर नफस डसता है नागिन की तरह,
आह भरने में है रुसवाई, किसे आवाज दूं? हाय! इस गुरबत के जंगल में पुकारूं तो किसे, किससे है मेरी शनासाई, किसे आवाज दूं?
ये जम्हाई-पे-जम्हाई अलहफीजो-अलअमां,
उफ ये अंगड़ाई-पे-अंगड़ाई, किसे आवाज दूं? उफ खामोशी की ये बांहें दिल को भरमाती हुई, उफ ये सन्नाटे की शहनाई, किसे आवाज दूं?

चल रहे हैं जिंदगी पर चांदनी के नेशतर,
चुभ रही है दिल में पुरवाई, किसे आवाज दूं?
मुश्किल तो होगा अब कहना। अब आवाज देना मुश्किल होगा।
उफ खामोशी की ये बाहें दिल को भरमाती हुई,
उफ ये सन्नाटे की शहनाई किसे आवाज दूं?
लेकिन तुम्हारे भीतर जो शहनाई बज रही है, वह मुझे सुनाई पड़ रही है, कहो
न कहो। कहना भी चाहो तो न कह सकोगे।
कल अमृत बोधिसत्व दर्शन में उपस्थित थे। मैं भी चौंका क्षण भर को। इतना रूपांतरण हुआ है! इतनी क्रांति हुई है! नए हो गए हैं! एक नए बच्चे की तरह हो गए हैं। कहो या न कहो, मुझे तुम्हारे भीतर की शहनाई सुनाई पड़ रही है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, इस वर्ष से जनगणना की जा रही है, जिसमें अनिवार्य रूप से जाति-धर्म की जानकारी देकर घोषणा करनी पड़ती है। चूंकि आपके संन्यासी तथाकथित किसी प्रचलित जाति-धर्म को मान्यता नहीं देते, वे जनगणना अधिकारी को क्या जानकारी दें?

अरूपानंद!
इतने जल्दी भूल गए? कल ही तो मैंने कहा--
जात हमारी ब्रह्म है, माता-पिता हैं राम।
गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में बिसराम।।
अब और क्या चाहिए? माता-पिता की जगह लिख देना राम; जाति की जगह ब्रह्म;
धर्म की जगह शून्य; और भाषा की जगह अनहद।
जात हमारी ब्रह्म है, माता-पिता हैं राम।
गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में बिसराम।।

तीसरा प्रश्नः ओशो, भारतवर्ष में आपके बाद जो सबसे ज्यादा प्रसिद्ध धर्मगुरु हैं, तो वे हैं आचार्य तुलसी। अभी-अभी उन्होंने कुछ नए आयाम शुरू किए हैं, वे इस प्रकार हैं--
(1) तुलसी फाउंडेशन की स्थापना।
(2) गृहस्थों को नव-संन्यास दिया जा रहा है, जिसके अधीन वे गृहत्याग नहीं करते हैं, ब्रह्मचर्य पालन करते हैं एवं संन्यासी की तरह जीते हैं।
(3) जब तुलसी सभागृह में पधारते हैं, तो श्रावक उदघोष करते हैंः जय भगवान!
(4) जो पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, उन पर दोनों तरफ आचार्य तुलसी के चित्र होते हैं।
भगवान, आपकी इस तरह खुलेआम नकल करते जाते हैं एवं आपका विरोध करते जाते हैं, हम कब तक देखते रहें, बताने की कृपा करें।
अभी-अभी उन्होंने हर महीने दस दिवसीय शिविर-ध्यान लेने शुरू किए हैं।
ओशो, क्या ये नकल करने वाले थोड़े भी शर्मिंदा नहीं होते? बताने की कृपा करें।

पहली तो बात, कृष्ण सत्यार्थी, मैं कोई प्रसिद्ध व्यक्ति हूं? बदनाम कहो, चलेगा! बदनामी में मुझे रस भी है; प्रसिद्धि में मुझे कोई रस नहीं। और तुम मुझे धर्मगुरु कहते हो! तो अधर्मगुरु कौन होगा? ये अच्छी- अच्छी बातें आचार्य तुलसी, विनोबा भावे, पुरी के शंकराचार्य, इन सबके लिए छोड़ दो। मेरा काम तो बदनामी से चल जाएगा, अधर्मगुरु होने से भी चल जाएगा। रही नकल की बात, तो दया करो उन पर। क्या करें, मजबूरी है! खुद का कोई बोध नहीं, खुद का कोई अनुभव नहीं। नकल भी करते हैं, नकल करना भी नहीं आता, और तो बात और!

ऐसा ही प्रश्न चैतन्य कीर्ति ने पूछा है। पूछा हैः
ओशो, आचार्य तुलसी के शिष्यों ने प्रेक्षा-ध्यान साधना शिविर स्मारिका भेजी है, जिसमें रामसमंद के श्री भिक्षु बोधिस्थल शिविर में हुए

प्रेक्षा-ध्यान तथा प्रवचनों का विवरण प्रकाशित हुआ है। आपके पुराने समय के साहित्य में जो निष्क्रिय ध्यान है--शरीर शिथिल हो रहा है, श्वास शांत हो रही है, विचार शांत हो रहे हैं--वही ज्यों का त्यों इनका प्रेक्षा-ध्यान है। सक्रिय ध्यान में थोड़ा हेर-फेर करके इनके साधक कुंडलिनी-जागरण भी करते हैं।
आचार्य श्री तुलसी तथा युवाचार्य महाप्राज्ञ से प्रेरित होकर जिन साधुओं, साध्वियों तथा साधकों ने जो प्रवचन वहां दिए, वे प्रवचन तथा बोध-कथाएं शब्दशः आपके प्रवचनों से ली गई हैं। हां, कहीं-कहीं अपनी बातें जोड़ कर छीछा-लेदर भी की है।
नकल यहां तक की है कि शिविर-स्थल के प्रवेश-द्वार पर एक साइन बोर्ड लगाया हैः कृपया अपने मन और जूते यहीं उतार दें।
स्मारिका का अंतिम उदगार हैः युगों युगों तक अमर रहेगा तुलसी नाम तुम्हारा।
ओशो, ऐसे लोगों की ध्यान में क्या गति होती है?

ध्यान का अर्थ है, अपने भीतर मौलिक स्वरूप की खोज। ध्यान उधार नहीं होता, बासा नहीं होता, नकल तो हो ही नहीं सकता है। इन बेचारों को ध्यान से क्या लेना-देना है!
इनको तो सिर्फ एक बात अखर रही है कि मेरी बात दुनिया के कोने-कोने तक पहुंच रही है, लाखों लोग आंदोलित हो रहे हैं। इनको यही अड़चन लग रही है कि जरूर मेरी बात में कुछ होगा जिसके कारण इतने लोग प्रभावित हो रहे हैं। और उस प्रभाव से कहीं हम वंचित न रह जाएं, कहीं ऐसा न हो कि हम पिछड़ जाएं, कहीं इस दौड़ में पीछे न रह जाएं; इसलिए नकल करो। इस बात की ही नकल करो। इस बात में ही कुछ होगा।
इन सबको बता दोः इस बात में कुछ भी नहीं होता; व्यक्ति में होता है कुछ। बातों की नकल तुम कितनी ही करो, कुछ परिणाम नहीं होगा। इससे तुम तो ध्यान को उपलब्ध होओगे ही नहीं, जिनको तुम ध्यान करवा रहे हो, उनको भी भटका रहे हो, भरमा रहे हो। इसका भी तुम पाप कर रहे हो।
इन पर दया करो, नाराज न होना। और इनकी कोई चिंता लेने की जरूरत नहीं है।
आज इतना ही।

अनहद में बिसराम
तीसरा प्रवचन

तप, ब्रह्मचर्य और सम्यक ज्ञान

पहला प्रश्नः ओशो,
सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अंतःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो
यं पश्यंति यतयः क्षीणदोषाः।।
यह आत्मा सत्य, तप, सम्यक ज्ञान और ब्रह्मचर्य से ही प्राप्त किया जा सकता है। जिसे दोषहीन यति देखते हैं, वह शुभ्र आत्मा इसी शरीर के अंदर वर्तमान है।
ओशो, मुंडकोपनिषद के इस सूत्र को हमारे लिए बोधगम्य बनाने की कृपा करें।

शरणानंद!
यह सूत्र तो सरल है, पर हजारों वर्षों की व्याख्याओं ने इसे बहुत जटिल
कर दिया है। नासमझ सुलझाने चलते हैं तो और उलझा देते हैं! नीम-हकीम से सावधान रहना जरूरी है। बीमारी इतनी खतरनाक नहीं, जितना नीम-हकीम खतरनाक सिद्ध हो सकता है। बीमारी का तो इलाज है, लेकिन नीम-हकीम के चक्कर में पड़ जाओ, तो इलाज नहीं है। और नीम-हकीमों से दुनिया भरी हुई है।
एक आदमी को सर्दी-जुकाम था। बहुत दिनों से था। और बार-बार लौट आता था। बड़े-बड़े चिकित्सकों के पास गया, कोई इलाज न कर पाया। फिर एक नीम-हकीम मिल गया। उसने कहा, यह भी कोई बड़ी बात है! यह तो बाएं हाथ का खेल है! चुटकी बजाते दूर कर दूंगा। इतना करो, सर्दी की रातें हैं, आधी रात में उठो। झील पर जाकर नग्न स्नान करो। झील के किनारे खड़े होकर ठंडी हवा का सेवन करो!
वह आदमी बोला, आप होश में हैं या पागल हैं! सर्द रातें हैं; बर्फीली हवाएं हैं। आधी रात को नंग-धड़ंग झील में स्नान करके खड़ा होऊंगा, हड्डी- हड्डी बज जाएगी! इससे मेरा सर्दी-जुकाम दूर होगा? नीम-हकीम ने कहा, यह मैंने कब कहा कि इससे सर्दी-जुकाम दूर होगा! इससे तुम्हें डबल निमोनिया हो जाएगा! और डबल निमोनिया का इलाज मुझे मालूम है! फिर मैं निपट लूंगा!
इस दुनिया में जीवन जटिल न होता, अगर जीवन के व्याख्याकार तुम्हें न मिल गए होते। उन्होंने सर्दी-जुकाम को डबल निमोनिया में बदल दिया है!
यह सूत्र बिल्कुल सीधा-साफ है। लेकिन जब तुम इस सूत्र को पढ़ोगे, तो तुम सूत्र नहीं पढ़ रहे हो। सूत्रों के सुंदर शब्द आच्छादित हो गए हैं न मालूम कितनी व्याख्याओं से!
जैसे जब तुम पढ़ोगे सत्य, क्या समझोगे? पढ़ोगे तप, क्या समझोगे? पढ़ोगे सम्यक ज्ञान, क्या समझोगे? पढ़ोगे ब्रह्मचर्य, क्या समझोगे? शब्द तो बहुत दूर खो गए हैं जंगलों में व्याख्याओं के। तुम्हारे हाथ में व्याख्याएं रह गई हैं।
सत्य शब्द तुम्हें याद दिलाएगा शास्त्रों की, और शास्त्रों में सत्य नहीं है। क्योंकि शब्दों में ही सत्य नहीं है। सत्य है शून्य में। और तुमसे सदा कहा गया है कि सत्य बोलो। तुम्हारे भीतर सत्य में और बोलने में एक संयोग बन गया है। सत्य बोला नहीं जाता, जीया जाता है, अनुभव किया जाता है। यद्यपि जिसने सत्य का अनुभव किया, उसके आचरण में, उसके उठने-बैठने में, उसके हलन-चलन में, उसकी हर गतिविधि में सत्य की आभा होती है। उसके शब्दों में भी सत्य की प्रतिध्वनि होती है--सत्य नहीं, प्रतिध्वनि। और उस प्रतिध्वनि को वही समझ पाएगा, जिसने अपने भीतर का सत्य जाना हो।
गीता जिन्हें कंठस्थ है, कि रामायण की चौपाइयां याद किए बैठे हैं, कि बाइबिल या कुरान या धम्मपद सिर पर ढो रहे हैं--इनसे तो सत्य बहुत दूर हो गया। सत्य तो तुम्हारे जीवन का सार है। सत्य बाहर नहीं है, भीतर है। वेदों में नहीं है, पुराणों में नहीं है; तुम्हारी चेतना की सुगंध है। सत्य ध्यान में है।

लेकिन जब भी तुम सत्य शब्द को सुनते हो, तो तुम्हें लगता है, शास्त्र।
याद आते हैं वेद, कुरान, बाइबिल। याद आते हैं बुद्ध, महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, मोहम्मद।
सत्य शब्द सुन कर कभी तुम्हें अपनी याद आती है? आनी वही चाहिए। न बुद्ध से सत्य मिलेगा, न कृष्ण से। सत्य मिलेगा तो अपने स्मरण से।
मगर व्याख्याओं का घनघोर जंगल है! इतनी सदियां बीत गई हैं तुम्हें संस्कारित होते-होते कि अब सीधी-सादी बात भी बोध में नहीं आती, विकृत हो जाती है; खंडित हो जाती है; टूट-फूट जाती है; कुछ की कुछ हो जाती है।
सत्य है ध्यान की, शून्य की, निर्विचार की अनुभूति। उस अनुभूति में न विचार होते, न कल्पना होती, न तुम होते हो। क्योंकि तुम स्वयं भी एक कल्पना हो, एक विचार हो। अहंकार विचार की एक तरंग-मात्र है, एक लहर। जहां सारी लहरें खो गईं, वहां अहंकार भी खो गया।
सत्य है निरअहंकारिता की प्रतीति, उसका साक्षात्कार। लेकिन क्या ऐसा स्मरण आता है सत्य शब्द को पढ़ कर? जब पढ़ोगेः सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा--यह आत्मा सत्य है, तप है, सम्यक ज्ञान है, ब्रह्मचर्य है। तो क्या तुम्हारे मन में विचार उठते हैं?
तप से विचार उठता है, सिर के बल खड़े हुए लोग! उपवास करते हुए लोग! सूरज
से आग बरस रही है और वे अपने चारों तरफ धूनी रमाए बैठे हुए हैं! तप से तुम्हें क्या याद आता है? कांटों पर लेटे हुए लोग! सर्दियों में बर्फीली नदियों में नग्न खड़े लोग! कि गर्मियों में जलती हुई रेत पर पालथी मारे हुए बैठे हुए लोग! जटाजूटधारी! शरीर के दुश्मन! अपने को गलाने में लगे, सड़ाने में लगे! इस तरह के आत्महंताओं की याद आती है। तप शब्द को सुन कर ही याद आती है उन लोगों की जो अपने को कष्ट देने में कुशल हैं।
दुनिया में दो तरह के हिंसक हैं। एक वे, जो दूसरों को सताते हैं। ये छोटे हिंसक हैं। क्योंकि दूसरे को तुम सताओगे, तो दूसरा कम से कम आत्मरक्षा तो कर सकता है। प्रति-उत्तर तो दे सकता है। भाग तो सकता है। पैरों पर गिर कर गिड़गिड़ा तो सकता है। कोई उपाय खोज सकता है। रिश्वत दे सकता है। चापलूसी कर सकता है। सेवा कर सकता है। गुलाम हो सकता है।
और दूसरे तरह के वे आत्म-हिंसक हैं, जो खुद को सताते हैं। वहां कोई बचाव नहीं। वह हिंसा बड़ी है। अब तुम खुद ही अपने को सताओगे, तो कौन तुम्हें बचाएगा! कौन प्रतिकार करे! अपना ही हाथ अगर आग में जलाना हो, तुमने ही अगर तय किया हो आग में जल जाने का, तो फिर बचना मुश्किल है। आत्महत्या करने वाले व्यक्ति को कैसे बचाओगे? कानून नियम बनाता है, मगर बचा पाता है क्या? कानून बड़ा मूढ़तापूर्ण मालूम पड़ता है। कानून कहता है, जो आदमी आत्महत्या करेगा, उसको सजा मिलेगी।
अब यह बड़े मजे की बात है! उसने तो आत्महत्या कर ही ली, अब तुम क्या खाक सजा दोगे! सजा तुम उसको दे सकते हो, जो आत्महत्या कर रहा हो और कर न पाया हो। और जो आत्महत्या करना चाहता है, क्या इस दुनिया में उसे कुछ कमी है! इतने सरदार इतनी बसें चला रहे हैं, ट्रकें चला रहे हैं देशी ठर्रा पीए हुए! ट्रेनें चल रही हैं! मालगाड़ियां दा.ैड रही हैं! झाड़ हैं, पहाड़ हैं, नदी हैं, समुद्र हैं! जिसको आत्महत्या करनी है, इस बड़े जगत में कोई उसे बचा सकता है! कैसे बचाओगे? कोई नहीं बचा सकता।
हां, पकड़ा जाता है वह व्यक्ति जो करना नहीं चाहता था, यूं ही करने का बहाना कर रहा था। करने की तरकीब कर रहा था, कि उसका कुछ प्रभाव पड़ जाए। धमका रहा था।
स्त्रियां आत्महत्या के बहुत उपाय करती हैं। दो-चार गोली खा लेंगी नींद की। मगर इतनी कभी नहीं खातीं कि मर जाएं! इतनी ही खाती हैं कि तुमको थोड़ी मुसीबत में डाल दें। कि अब डाक्टर को बुलाओ! कि अब पुलिस से छिपाओ! कि अब डरो उनसे! कि अब दुबारा, तुमने जो भूल की थी, अब न करना! अब उनकी मान कर चलना! यह उनकी तरकीब है। यह गांधीवादी तरकीब है अपने को सता कर तुम पर कब्जा पाने की।
तप से तुम्हारे मन में क्या ख्याल उठता है? तप शब्द तुम्हारे भीतर कौन
सी आकृतियां उभारता है? आत्म-दमन! आत्म-पीड़न! लेकिन तप से इसका कोई संबंध नहीं है।

तप का ठीक-ठीक अर्थ इतना ही होता है कि जीवन में बहुत दुख हैं, इन दुखों को सहजता से, धैर्य से, संतोष से, अहोभाव से अंगीकार करना। और दुख पैदा करने की जरूरत नहीं है। दुख क्या कुछ कम हैं! पांव-पांव पर तो पटे पड़े हैं। दुख ही दुख तो हैं चारों तरफ। लेकिन इन दुखों को भी वरदान की तरह स्वीकार करने का नाम तप है।
सुख को तो कोई भी वरदान समझ लेता है। दुख को जो वरदान समझे, वह तपस्वी है। जब बीमारी आए, उसे भी प्रभु की अनुकंपा समझे; उससे भी कुछ सीखे। जब दुर्दिन आएं, तो उनमें भी सुदिन की संभावना पाए। जब अंधेरी रात हो, तब भी सुबह को न भूले। अंधेरी से अंधेरी बदली में भी, वह जो शुभ्र बिजली कौंध जाती है, उसका विस्मरण न हो।
कुछ दुख आरोपित करने की जरूरत नहीं है, दुख क्या कम हैं! इसलिए मैं अपने संन्यासी को नहीं कहता कि संसार को छोड़ो; जंगल में जाओ; अपने को सताओ। संसार में कोई दुखों की कमी है कि तुम्हें जंगल जाना पड़े! यहां तरह-तरह के दुख हैं। जीवन चारों तरफ संघर्ष, प्रतियोगिता, वैमनस्य, ईर्ष्या, जलन, द्वेष, इन सबसे भरा है। एक दुश्मन नहीं, हजार दुश्मन हैं। जिनको तुम दोस्त कहते हो, वे भी दुश्मन हैं। कब दुश्मन हो जाएंगे, कहना मुश्किल है। मैक्यावेली ने अपनी अदभुत किताब प्रिंस में लिखा है कि अपने दोस्तों
से भी वह बात मत कहना, जो तुम अपने दुश्मनों से न कहना चाहो। क्यों? क्योंकि तुम्हारा जो आज दोस्त है, वह कल दुश्मन हो सकता है। मैक्यावेली पश्चिम का चाणक्य है। दोस्त से भी मत उघाड़ना अपने हृदय को, क्योंकि वह भी नाजायज लाभ उठाएगा किसी दिन। फिर तुम पछताओगे।
यहां तो सब तरफ कांटे ही कांटे हैं, अब और कांटों की शय्या बनाने की जरूरत क्या है? तुम जिस शय्या पर सोते हो रोज, वह कांटों की नहीं? उतने से मन नहीं भरता? पत्नी और पति तुम्हें कम दुख दे रहे हैं?
मैंने सुना, पति-पत्नी में पति के देर से घर लौटने पर झगड़ा हो रहा था। पत्नी बोली, अगर आप आइंदा रात नौ बजे के बाद आएंगे, तो मैं आपको छोड़ कर किसी और से शादी कर लूंगी।
पति ने कहा, तब तो पड़ोस वाले गुप्ताजी से ही कर लेना!
पत्नी ने आश्चर्यचकित होते हुए पूछा, गुप्ताजी से ही क्यों?
पति ने शांति से उतर दिया, मैं उनसे बदला लेना चाहता हूं।
यहां कुछ कमी है!
एक दोस्त अपने संगी-साथी से कह रहा था, बारिश आने वाली है, मुझे बड़ा डर
लग रहा है; मेरी पत्नी बाजार गई हुई है।
उसके मित्र ने कहा, इसमें डरने की क्या बात है! अरे, बारिश कुछ उसे गला
तो न देगी। कोई मिट्टी की तो बनी नहीं। बहुत बारिश आ जाएगी, तो किसी दुकान में घुस कर खड़ी हो जाएगी। मित्र ने कहा, इसी का तो डर है। जिस दुकान में घुस जाती है, वहीं उधारी करके आ जाती है!
इस जिंदगी में तुम दुख तो देखो, कुछ कमी है! तप करने कहां जा रहे हो! डाक्टर चंदूलाल से कह रहे थे, चंदूलाल, यह कोई पुरानी बीमारी है जो आपका सुख-चैन नष्ट कर रही है।
चंदूलाल मुंह पर हाथ रख कर अपनी पत्नी की तरफ इशारा करके डाक्टर से बोले, जरा धीरे डाक्टर साहब! वह इधर ही खड़ी हुई है।
एक पुरुष और एक स्त्री पार्क में बैठे बहुत जोर-जोर से बातें कर रहे थे। अचानक स्त्री उठी और पुरुष को एक चांटा मार कर गुस्से में वहां से चली गई। इतने में पास से गुजरने वाले व्यक्ति ने वहां बैठे पुरुष से पूछा, वह स्त्री क्या आपकी पत्नी थी?
इस पर पुरुष ने बड़े तैश में आकर जवाब देते हुए कहा, और नहीं तो क्या! तुम मुझे इतना बे-गैरत इंसान समझते हो कि मैं किसी ऐरी-गैरी स्त्री से चांटा खा लूंगा?
कई वर्षों के बाद कालेज के दो साथियों की मुलाकात हो गई। और बातचीत का सिलसिला हुआ--
कैसे रहे इतने वर्षों तक?
कोई खास बात नहीं हुई। कालेज छोड़ने के फौरन बाद मैंने शादी कर ली थी।
यह तो बड़ा अच्छा किया।

नहीं। मेरी पत्नी बहुत लड़ाका थी।
ओह! इससे जीवन जहर हो गया होगा?
नहीं, इतना बुरा भी नहीं हुआ। दहेज में पांच हजार रुपए मिले थे!
उससे तो बड़ा फायदा हुआ होगा।
नहीं। उस रकम से मैंने दुकान कर ली, लेकिन बिक्री ही नहीं होती थी।
तब तो बड़ी मुसीबत रही होगी?
नहीं, बुरा भी नहीं हुआ। युद्धकाल में दुकान बड़े भाव में बेच दी। दस हजार का नगद फायदा हो गया।
यह बहुत अच्छा किया तुमने!
नहीं, इतना अच्छा भी नहीं हुआ। उस रकम से मैंने एक मकान खरीद लिया और मकान में आग लग गई!
यह तो बड़ी बदकिस्मती रही!
नहीं, इतनी बदकिस्मती भी नहीं रही। मेरी पत्नी भी उसमें जल गई!
यहां जिंदगी में क्या कमी है!
तप का मेरी दृष्टि में एक ही अर्थ है। जीवन में कांटे भी हैं, फूल भी हैं; फूलों का स्वागत तो कोई भी कर लेता है; कांटों का भी जो स्वागत कर ले, वह तपस्वी है। कुछ तुम्हें कांटे ईजाद करने की आवश्यकता नहीं है। यहां दिन भी हैं और रातें भी हैं। कुछ दीए बुझाने की तुम्हें जरूरत नहीं है। दिन को तो स्वभावतः तुम प्रसन्न हो, रात का अंधेरा भी अंगीकार कर लो। परितोष का नाम तप है। संतोष का नाम तप है। तप आत्म-हिंसा नहीं है, अपने
को सताना नहीं है। सताना तो हर हाल बुरा है, किसी को भी सताओ, तुम भी उसमें सम्मिलित हो। लेकिन जो भी जीवन में आ जाए--सुख हो कि दुख, सफलता हो कि विफलता, हार मिले कि जीत--तुम्हारे भीतर कोई अंतर ही न पड़े; तुम अडिग-अकंप बने रहो; यह तपश्चर्या है।
इसलिए तप के लिए किसी हिमालय की गुफा में बैठने की जरूरत नहीं; वह तो
तप से भागना है। हिमालय की गुफा में क्या खाक तप होगा! जीवन चुनौती है, प्रतिपल। और हर चुनौती छिद जाती है कटार की तरह। उसे फूल की तरह स्वीकार कर लेना तपश्चर्या है।
इसलिए न तो सिर के बल खड़े होओ, न धूनी रमाओ, न भभूत लगाओ, न जटाजूट बढ़ाओ,
न उपवासे मरो। इस सब की कोई जरूरत नहीं है। परमात्मा ने जीवन में सुख और दुख को बिल्कुल समतुल बनाया है। जीवन में हर चीज समतुल है। नहीं तो अस्तित्व बिखर जाए। इसमें समतुलता होनी ही चाहिए। जितना सुख, उतना दुख। जितनी रात, उतने दिन। जितनी सफलताएं, उतनी असफलताएं। तुम दोनों को सम-भाव से ले सको, तो तप।
लेकिन तुम्हारी व्याख्याओं ने बड़ी मुश्किल कर दी है! तुम्हारी व्याख्याओं ने तुम्हें न मालूम क्या-क्या सिखा रखा है।
मेरे हिसाब से तप तो जीवन की सहज साधना है, असहज नहीं। प्रत्येक वस्तु
को जिस दिन तुम आशीष की तरह स्वीकार करने को राजी हो जाओगे, अहोभाव से; जीवन के लिए भी धन्यवाद दोगे परमात्मा को, मृत्यु के लिए भी; बस, उस दिन जानना कि तुम्हारे भीतर तप का आविर्भाव हुआ है। सत्य है अपने स्वयं की शून्यता का, मौन का, निर्विचार का, निर्बीज अवस्था का अनुभव। और तप है, बाहर जो जीवन फैला है, उसे सम-भाव से देखने की दृष्टि।
फिर तीसरा शब्द है, सम्यक ज्ञान। यह शब्द यूं तो हिंदू शास्त्रों में पाया जाता है, मुंडकोपनिषद में है; बौद्ध शास्त्रों में पाया जाता है; जैन शास्त्रों में पाया जाता है; लेकिन जैनों ने इस शब्द पर अपनी आधारशिला रखी है; उन्होंने इसे बहुमूल्य माना है। लेकिन अगर जैन पंडित से पूछोगे, तो सम्यक ज्ञान का अर्थ होता है, जो ज्ञान जैन शास्त्र में है वह सम्यक ज्ञान! जो ज्ञान जैन शास्त्र में नहीं, किसी और शास्त्र में है, वह असम्यक ज्ञान! जैन शास्त्र--शास्त्र; अजैन शास्त्र--कुशास्त्र! जैन गुरु--गुरु; अजैन गुरु--कुगुरु! जैन मंदिर में बैठी प्रतिमा सुदेव; किसी और मंदिर में बैठी प्रतिमा कुदेव!
इतने अदभुत शब्द को, इतने प्यारे शब्द को ऐसा बिगाड़ा, ऐसा गंदा किया! सम्यक ज्ञान का अर्थ होता है, ठीक-ठीक जानना। सम्यक शब्द का अर्थ होता है, ठीक। जैसा है वैसा जानना। एक ही शर्त पूरी करनी जरूरी है। जैन होना

जरूरी नहीं है। हिंदू या मुसलमान होना जरूरी नहीं है। एक शर्त पूरी करनी जरूरी है। और उस शर्त में--तुम बड़े चकित होओगे--तुम्हें जैन होना, बौद्ध होना, हिंदू होना, मुसलमान होना छोड़ना होगा। अगर सम्यक ज्ञान को पाना है, तो तुम्हें वे सारी धारणाएं छोड़ देनी होंगी, जो तुम्हारे ज्ञान को सम्यक नहीं होने देतीं।
जब तुम पहले से ही कोई धारणा लेकर चलते हो, तो तुम उसे कैसे देखोगे जो है! तुम तो वही देखोगे, जो तुम देखना चाहते हो। तुम्हारी आंखों पर तो एक पर्दा है। तुम्हारी आंखों में तो एक चित्र रमा है, एक चित्र बसा है, उसी चित्र के आधार से तुम यथार्थ को देखोगे। ऐसा देखना, असम्यक ज्ञान। अगर कुरान बीच में आ जाए, या गीता, महावीर या बुद्ध, तो तुम जो जानोगे वह असम्यक ज्ञान।
कोई बीच में न आए; तुम सीधा-सीधा जानो। जानने की क्षमता तुम्हारी निर्मल हो, स्वच्छ हो--किसी पूर्वाग्रह से आच्छादित नहीं, किसी पूर्व-धारणा से भरी नहीं--दर्पण की तरह हो; जो सामने आए, उसे झलका दे; जैसा है, वैसा झलका दे। यूं न कहे कि इस शक्ल को मैं न दिखाऊंगा, क्योंकि यह शक्ल सुंदर नहीं!
कहते हैं, बाबा तुलसीदास को कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया, तो उन्होंने झुकने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा, मैं नहीं झुकूंगा। मैं तो धनुर्धारी राम के सामने ही झुकता हूं। कहा उन्होंने कृष्ण से, तुलसी माथ तब नवै--शर्त लगा दी कि यह तुलसीदास का जो माथा है, तब झुकेगा--धनुष-बाण लेउ हाथ। जब हाथ में धनुष-बाण लोगे, तो यह माथा झुकेगा!
इसमें छिपे हुए अहंकार को देखते हैं! यह माथा भी सशर्त झुकेगा। पहले मेरी शर्त पूरी करो। तुम्हारे लिए नहीं झुकूंगा; मेरी शर्त पूरी होगी तो झुकूंगा। और मेरी शर्त है कि धनुष-बाण हाथ लो।
कृष्ण में क्या खराबी थी? बांसुरी में क्या बुराई थी? धनुष-बाण से तो बेहतर है। धनुष-बाण से तो ज्यादा विकसित है। धनुष-बाण से तो बहुत प्यारी है।
मगर नहीं; अपनी धारणा है। और यह कुछ तुलसीदास का ही रोग नहीं है। यह पीलिया सभी की आंखों पर छाया हुआ है।
मैं छोटा था। जैन घर में मैं पैदा हुआ। मेरे संगी-साथी तो हिंदू थे। उनके साथ मैं मंदिर जाता। तो मुझसे उम्र में बड़े जो जैन लड़के थे, वे मुझसे कहते, माथा मत झुकाना! ये अपने भगवान नहीं! यह हिंदू मंदिर है। यह कोई जैन मंदिर नहीं। और जब हिंदू बच्चों के साथ मैं कभी जैन मंदिर पहुंच जाता, तो वे कोई भी सिर न झुकाते! वे कहते, ये नागा बाबा! नंग-धड़ंग बैठे हैं! इनके सामने क्या सिर झुकाना! वे हंसी-मजाक उड़ाते।
यह छोटे बच्चों की ही बात होती, तो क्षम्य थी; बड़े बच्चों में भी कुछ फर्क नहीं है। उम्र ही ज्यादा है; बच्चे वही के वही!
तुम किसी जैन मुनि को ले जाओ कृष्ण के मंदिर में, सिर नहीं झुकाएगा। कुदेव के सामने सिर झुके! तुम ले जाओ किसी हिंदू संन्यासी को, वह महावीर के सामने सिर नहीं झुकाएगा। क्योंकि महावीर तो नास्तिक! बुद्ध के सामने सिर नहीं झुकाएगा। बुद्ध तो भ्रष्ट करने वाले! इन्होंने ही तो देश को बर्बाद कर दिया! इन्होंने ही तो भ्रष्टाचार के बीज बोए!
तुम मस्जिद के सामने से गुजरते हो, तुम्हारे मन में कभी भाव उठता है
कि झुक जाओ, कि जाकर दो क्षण भीतर आराधना कर लो, प्रार्थना कर लो! सवाल ही नहीं उठता। और झाड़ के नीचे किसी ने पत्थर पर लाल रंग पोत दिया है, दो फूल रख दिए हैं, एकदम घुटने टेक कर हनुमानजी का चालीसा शुरू! मुसलमान को कुछ नहीं होता वहां।
तुम्हारी अपनी धारणाएं आंखों पर छाई रहती हैं, उन्हीं से तुम देखते हो। इसलिए कुछ का कुछ देखते हो; जो है वैसा ही नहीं देखते। दर्पण की तरह जो हो जाए, वह सम्यक ज्ञान को उपलब्ध होता है। दर्पण का कोई आग्रह नहीं होता, निराग्रही होता है। दर्पण के सामने सुंदर चेहरे वाला व्यक्ति खड़ा हो तो, असुंदर खड़ा हो तो; धनुष-बाण लिए हुए राम खड़े हों तो, और बांसुरी बजाते कृष्ण खड़े हों तो, और नग्न महावीर खड़े हों तो; कोई भेद न पड़ेगा। दर्पण तीनों को झलकाएगा, सम-भाव से झलकाएगा।

सम्यक ज्ञान का अर्थ होता है, ठीक-ठीक जानना। और ठीक-ठीक जानने के लिए जरूरी है शास्त्रों से मुक्ति, सिद्धांतों से मुक्ति, धारणाओं से मुक्ति, पूर्वाग्रहों से मुक्ति। जब तुम यह सारा कचरा अलग कर दोगे--न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन--तब तुम सम्यक ज्ञान को उपलब्ध हो सकोगे।
लेकिन सारी दुनिया अपने-अपने कचरे को पकड़े हुए है, जोर से पकड़े हुए है। मेरा कचरा सोना; तुम्हारा सोना कचरा! मेरा है, इसलिए सोना होना ही चाहिए!
सम्यक ज्ञान जैसा प्यारा शब्द अपनी सारी गरिमा खो दिया।
और ब्रह्मचर्य से तुम क्या अर्थ लेते हो? जब यह शब्द तुम्हारे कान में पड़ता है तो तुम्हारे भीतर क्या अर्थ उमगते हैं? तो ब्रह्मचर्य से तुम्हारी धारणाएं बड़ी अजीब हैं।
मेरे एक मित्र थे, लाला सुंदरलाल। उनके लिए ब्रह्मचर्य का अर्थ था, लंगोट के पक्के! वही अधिकतर लोगों का अर्थ है, लंगोट के पक्के! कस कर लंगोट बांधा, तो ब्रह्मचर्य!
तुम कितने ही कस कर लंगोट बांध लो, इससे कुछ ब्रह्मचर्य नहीं हो जाएगा! ब्रह्मचर्य सिर्फ कामवासना का दमन नहीं है, कामवासना का रूपांतरण है। और दोनों में जमीन-आसमान का भेद है। जो कामवासना को दबाएगा, वह तो रुग्ण हो जाएगा। ब्रह्मचर्य को तो क्या उपलब्ध होगा, वह तो सामान्य, नैसर्गिक वासना से भी नीचे गिर जाएगा। वह तो और भी विकृत हो जाएगा। उसके जीवन में तो हजार तरह की विकृतियां आ जाएंगी। हां, यह भी हो सकता है कि तुम उन विकृतियों को भी पूजा देने लगो! विकृतियां भी पूजी जा रही हैं!
दबाया अगर तुमने अपनी कामवासना को, तो वह उभर कर निकलेगी। हां, नए-नए ढंग से निकलेगी कि तुम पहचान न सको। नई शक्लें लेगी, नए वस्त्र पहनेगी और निकलेगी।
अभी मोरारजी देसाई ने चार-छह दिन पहले ही एक वक्तव्य में कहा कि जब मैं प्रधान मंत्री था और कैनेडा गया... । तो उनकी उम्र करीब तेरासी वर्ष थी तब। तेरासी वर्ष की उम्र में भी उनको कैनेडा में देखने योग्य चीज क्या अनुभव में आई? वह था नाइट क्लब, जहां कैबरे नृत्य होता है, स्त्रियां अपने वस्त्र उघाड़-उघाड़ कर फेंक देती हैं, धीरे-धीरे नग्न हो जाती हैं।
कारण क्या देते हैं वे? कि मैं जानना चाहता था कि नाइट क्लब में होता क्या है!
मगर जान कर तुम्हें जरूरत क्या? तेरासी वर्ष की उम्र में तुम्हें यह उत्सुकता क्या? कि वहां क्या होता है! होने दो। इतनी बड़ी दुनिया है, इतनी चीजें हो रही हैं! कैनेडा में और कुछ नहीं हो रहा था, सिर्फ नाइट क्लब ही हो रहे थे? कैनेडा में कुछ और देखने योग्य न लगा? नाइट क्लब! और वह भी चोरी से गए! चोरी से भी जाने योग्य लगा! क्योंकि पता चल जाए कि नाइट क्लब में गए हैं, कैबरे नृत्य देखने गए हैं, तो बदनामी होगी। और मोरारजी देसाई तो महात्मा समझो! ऋषि-मुनि हैं!
मगर उन्होंने यह बात अब क्यों कही? अब कही, उसके पीछे और कारण है। गुजरात विद्यापीठ के विद्यार्थियों के सामने वे अपने ब्रह्मचर्य की घोषणा कर रहे थे, उसमें यह बात भी कह गए, कि मेरा ब्रह्मचर्य वहां भी डिगा- मिगा नहीं! तेरासी वर्ष की उम्र में कैबरे नृत्य देखने गए, ब्रह्मचर्य डिगा नहीं उनका! यह तो यूं हुआ कि कब्र में कोई पड़ा हो, और चारों तरफ कैबरे नृत्य होता रहे, और कब्र में पड़ा हुआ महात्मा कहे, अरे नाचते रहो! मैं अपने ब्रह्मचर्य में पक्का, लंगोट का पक्का! ऐसा कस कर लंगोट बांधा है कि क्या तुम मुझे हिलाओगे!
तो उन्होंने बड़ा रस लेकर वर्णन किया है! कि जैसे ही मैं अंदर गया, चार सुंदर स्त्रियां, जो मुझे पहचान गईं, क्योंकि अखबारों में उन्होंने तस्वीर देखी होगी, आकर एकदम मेरे पास नाचने लगीं, हाव-भाव प्रकट करने लगीं। मगर मैं भी बिल्कुल संयम साधे, नियंत्रण किए, अडिग खड़ा रहा!
अब यह संयम साधना, और यह अडिग खड़े होना, और यह नियंत्रण को बनाए रखना--
यह सब किस बात का सबूत है?
अभी भी वही सब रोग भीतर छाए हुए हैं--अभी भी! कहीं कुछ भेद नहीं पड़ा! नहीं तो नियंत्रण की भी क्या जरूरत थी? यह इतना संयम बांधने की भी क्या

जरूरत थी? अरे, नाचती थीं, तो नाचने देना था! बैठते और प्रसन्न होते। अगर नाच अच्छा था, तो प्रशंसा करनी थी। या कम से कम कुछ न बनता तो थोड़ा नाचते! मगर बिल्कुल खड़े रहे अपने को सम्हाले हुए! कि कहीं पैर फिसल न जाए!
पैर फिसलने का डर? ये विकृतियां हैं। फिर आदमी विकृतियों से निकलता है... ।
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने बेटे फजलू से कहा कि देख, गांव में एक गंदी फिल्म लगी हुई है। अश्लील है। कभी देखने मत जाना। ऐसे गंदे स्थान में कभी जाना ही मत। जाएगा तो बहुत पछताएगा!
फिर फजलू मुझसे कह रहा था कि मैं गया और बहुत पछताया। पिताजी ने ठीक कहा था कि बहुत पछताएगा।
मैंने कहा, हुआ क्या?
उसने कहा, हुआ यह कि पिताजी ने जो कहा था, सब ठीक निकला। उन्होंने दो बातें कही थीं। एक तो ऐसी चीजें देखने मिलेंगी, जो नहीं देखनी चाहिए। और दूसरा कि बहुत पछताएगा। दोनों बातें हुईं।
मैंने कहा, फिर भी मैं समझूं कि क्या-क्या हुआ!
उसने कहा, पहली बात तो यह हुई कि पिताजी वहां देखने को मिले! उन्होंने कहा था कि ऐसी चीजें देखने मिलेंगी, जो नहीं देखनी चाहिए! और दूसरा, मुझे देखते ही से उन्होंने पिटाई की कि तू यहां क्यों आया! सो बहुत पछताया भी। हालांकि पिटते हुए मैंने इतना जरूर पिताजी से पूछा कि आप क्यों यहां आए? तो उन्होंने कहा, मैं तुझे देखने आया! कि कहीं फजलू गया तो नहीं है! क्या-क्या मजे दुनिया में चलते हैं! फजलू को देखने गए थे, ये फिल्म में बैठे हुए हैं! लोग फिर बहाने खोजेंगे। फिर क्या-क्या बहाने नहीं खोजते हैं!
जैसे ही व्यक्ति दमन करेगा, वैसे ही उसके भीतर जो दमित वेग हैं, वे पीछे के दरवाजों से रास्ते बनाने लगेंगे। उस व्यक्ति के जीवन में दोहरापन पैदा हो जाएगा; या अनेकता पैदा हो जाएगी। उसके बहुत चेहरे हो जाएंगे। वह खंड-खंड हो जाएगा। कहेगा कुछ, करेगा कुछ, सोचेगा कुछ, सपने कुछ देखेगा। उसके जीवन में विकृति ही हो जाएगी। उसके जीवन की एकता खंडित हो जाएगी। ब्रह्मचर्य का यह अर्थ नहीं है। ब्रह्मचर्य शब्द में ही अर्थ छिपा हुआ हैः ब्रह्म जैसी चर्या; ईश्वरीय आचरण; दिव्य आचरण। दमित व्यक्ति का आचरण दिव्य तो हो ही नहीं सकता। अदिव्य हो जाएगा; पाशविक हो जाएगा। पशु से भी नीचे गिर जाएगा।
दिव्य आचरण तो एक ही ढंग से हो सकता है कि तुम्हारे भीतर जो काम की ऊर्जा है, वह ध्यान से जुड़ जाए। ध्यान और काम तुम्हारे भीतर जब जुड़ते हैं तो ब्रह्मचर्य फलित होता है। ब्रह्मचर्य फूल है ध्यान और काम की ऊर्जा के जुड़ जाने का। ध्यान अगर अकेला हो और उसमें काम की ऊर्जा न हो, तो फूल कुम्हलाया हुआ होगा; उसमें शक्ति न होगी। और अगर काम अकेला हो, उसमें ध्यान न हो, तो वह तुम्हें पतन के गर्त में ले जाएगा।
काश! ये दोनों जुड़ जाएं, ध्यान और काम। काम है शरीर की शक्ति और ध्यान
है आत्मा की शक्ति। और जहां ध्यान और काम जुड़े, वहां आत्मा और शरीर की शक्ति जुड़ गई। फिर तुम इस महान ऊर्जा के आधार पर उस अंतिम यात्रा पर निकल सकते हो, जो ब्रह्म की यात्रा है। तब तुम्हारे जीवन में ब्रह्मचर्य होगा। खंडित व्यक्ति की तो प्रतिभा भी नष्ट हो जाती है। इसलिए तो मोरारजी देसाई जैसे लोगों के पास प्रतिभा नाम-मात्र को नहीं है! हो ही नहीं सकती। बुद्धि से तो इनकी दुश्मनी हो जाती है। तुम्हारे तथाकथित महात्माओं को तुम देखो, इनके भीतर तुम बुद्धि न पाओगे। इनको तुम बिल्कुल बुद्धू पाओगे। मगर ये तुम्हें बुद्धू दिखाई नहीं पड़ते, क्योंकि तुम्हारी धारणा यह है कि देखो, उपवास कर रहे हैं!
अब उपवास से बुद्धि का क्या संबंध? बुद्धिमान आदमी उपवास करेगा ही क्यों? जितनी जरूरत होगी, उतना भोजन करेगा। न ज्यादा भोजन करेगा, न कम भोजन करेगा। बुद्धिमान आदमी तो हमेशा समता से जीएगा। शरीर की जरूरत है, उतना भोजन देगा। ज्यादा नहीं देगा, क्योंकि ज्यादा शरीर पर बोझ होता है। कम भी नहीं देगा, क्योंकि कम शरीर की हत्या करना है। बुद्धिमान व्यक्ति उतना देगा, जितना आवश्यक है। उतना सोएगा, जितना आवश्यक है। उतना श्रम

करेगा, जितना आवश्यक है। ये तो बुद्धुओं के लक्षण हैं। या तो कम खाएंगे, या ज्यादा खाएंगे! या तो कम सोएंगे, या ज्यादा सोएंगे! या तो कम श्रम करेंगे, या ज्यादा श्रम करेंगे! कभी मध्य में न हो पाएंगे।
गांव में एक प्रसिद्ध नेताजी का भाषण होने वाला था। वे सभा-स्थल पर पहुंचे तो देखा, वहां सिर्फ एक ही श्रोता बैठा था! नेताजी ने उससे पूछा, अब क्या करना चाहिए?
जैसा आप ठीक समझें, उसने उत्तर दिया। मैं एक मामूली किसान हूं और यह जानता हूं कि जब मैं बीस गायों को चारा डालने जाता हूं, और यदि वहां सिर्फ एक गाय भी हो, तो मैं उसे बिना चारा दिए लौट नहीं आता!
उसके उत्तर से प्रभावित हो नेताजी ने भाषण दिया। एक घंटे बाद जब उनका धुआंधार भाषण समाप्त हुआ, तो नेताजी ने ग्रामीण से पूछा, कहो भाई, कैसा रहा?
बहुत सुंदर, किसान बोला, लेकिन मैं तो एक मामूली किसान हूं, और सिर्फ
यह जानता हूं कि बीस गायों की जगह मुझे यदि एक गाए मिले, तो मुझे उसको सब का चारा नहीं खिला देना चाहिए! और आपने यही किया कि गाय तो एक, और बीस गायों का चारा मुझ गरीब को खिला दिया! बस, भागी-भागी तबीयत रही कि कब भागूं! मगर अकेला हूं, भाग भी नहीं सकता! अब आपकी आंखें भी मुझी पर गड़ी हुई हैं! कई बहाने खोजे, मगर कोई बहाना हाथ न आए! अच्छा भी न लगे कि अब अकेला ही आदमी। मैं ही भाग जाऊं, तो फिर भाषण कैसे चलेगा! और नेताजी क्या सोचेंगे! बुरा इनके मन को न लग जाए। मगर इतना कहता हूं कि आगे जरा ख्याल रखें। जब गाय एक हो, तो बीस गाय का घास उसके सामने न डालें!
एक साधारण किसान में भी ज्यादा बुद्धि होती है तुम्हारे नेताओं से। फिर चाहे वे नेता धार्मिक हों और चाहे राजनैतिक, कुछ भेद नहीं है उनमें। तुम उनको नेता ही किसलिए कहते हो? तुम्हारे नेता कहने के भी कारण बड़े अजीब होते हैं! कोई चरखा चलाता है, हाथ की बनाई हुई खादी पहनता है, नेता हो गया! कोई उपवास करता है, दो-तीन घंटे शीर्षासन करता है, महात्मा हो गया! इसमें बुद्धिमत्ता का कहीं भी कोई संबंध है? चरखा चलाने में कोई बहुत बुद्धिमत्ता की जरूरत है? थोड़ी-बहुत पहले रही भी हो, तो चरखा चलाते-चलाते नष्ट हो जाएगी। चरखा चलाओगे, चरखा ही हो जाओगे! बस, खोपड़ी में वही चरखा घूमता रहेगा! और कुछ तो और भी पहुंचे हुए हैं, तकली चला रहे हैं! बैठे-बैठे तकली ही घुमाते रहते हैं!
तुम जिनको धार्मिक कहते हो, जिनको तुम महात्मा कहते हो, कभी सोचो भी, इनके भीतर कहीं भी कोई प्रतिभा का लक्षण दिखाई पड़ता है? कोई मेधा दिखाई पड़ती है? और अगर मेधा ही न हो, तो ब्रह्मचर्य नहीं है, यह समझ लेना। क्योंकि ब्रह्मचर्य का और क्या सबूत हो सकता है? सबसे बड़ा सबूत होगा प्रतिभा की अभिव्यक्ति; प्रतिभा के हजार-हजार फूल खिल जाना; प्रतिभा के कमल खुल जाना; प्रतिभा की सुगंध उड़ जाना। उनके कृत्य में भी प्रतिभा होगी, उनके उठने-बैठने में, चलने-फिरने में भी। इसलिए चर्या! चलना-फिरना, उठना- बैठना, उनके जीवन के हर एक कृत्य में तुम एक धार पाओगे, एक चमक पाओगे, एक ओज पाओगे।
लेकिन तुम्हारे धार्मिक नेताओं की जिंदगी में तुम जंग लगी पाओगे। और जितनी ज्यादा जंग चढ़ी हो उन पर, उतने ही तुमको वे जंचेंगे! क्योंकि तुम्हारी धारणाएं, तुम्हारी मान्यताएं... ।
अब कोई आदमी खड़ा है दस साल से। खड़ेश्री बाबा हो गए वे!
अब दस साल से खड़े हो, इससे क्या प्रतिभा का लेना-देना है? दुनिया में कौन सा सौंदर्य बढ़ रहा है तुम्हारे खड़े होने से? कौन सी संपदा बढ़ रही है? कौन सा सुख बढ़ रहा है? कौन सी शांति बढ़ रही है? मगर भक्तगणों की भीड़ लगी हुई है, भजन-कीर्तन चल रहा है, क्योंकि खड़ेश्री बाबा दस साल से खड़े हैं! दस साल से नहीं, दस हजार साल से खड़े हों, इनके खड़े होने से क्या होता है! ये खड़े- खड़े ठूंठ हो गए हों, तो भी क्या होता है!
या कोई मौन हो गया!
मेरे एक मित्र हैं; मेरे साथ एक बार कलकत्ता यात्रा पर गए। रास्ते में यूं बात कर रहे थे। एक मौनी बाबा थे, उनके वे भक्त थे। मैंने उनसे पूछा कि मौनी बाबा में तुम्हें क्या खास बात दिखाई पड़ती है?

अरे, उन्होंने कहा, खास बात! आज बीस साल से मौन हैं!
मैंने कहा, इसमें तो कुछ खास बात नहीं। मौन होने से क्या होना है? मौन होने से उनकी प्रतिभा में क्या निखार आ गया है? मौन होने से उनके जीवन में कौन से दीए जल गए हैं? अगर वे बुद्धू थे बीस साल पहले, तो मौन होने से और बुद्धू हो गए होंगे!
उन्होंने कहा, अरे, आप भी कैसी बात करते हैं! अगर वे बुद्धू होते, तो इतने लोग उनको कैसे पूजते? कोई मैं अकेले ही पूजता हूं। कितने लोग पूजते हैं!
अब, मैंने कहा, यह दूसरी बात तुम उठा रहे हो। उन दूसरों से मैं पूछूंगा
तो वे कहेंगे कि कितने लोग पूजते हैं। उसमें तुम्हारी गिनती करेंगे। तो तुम दूसरों को देख कर पूज रहे हो!
मैंने कहा, तुम एक काम करो। मेरे साथ तुम कलकत्ता चल ही रहे हो, तुम तीन दिन मौन रह जाओ। और मैं देखो तुम्हारी पूजा करवा दूंगा।
उन्होंने कहा, आप क्या कहते हैं! मेरी कौन पूजा करेगा? मुझमें कुछ है
ही नहीं!
मैंने कहा, तुम चुप तो रहो। तीन दिन चुप रहना। और पूरा भी नहीं कहता, रात जब सब चले जाएं, दरवाजा बंद करके, तुम्हें जो भी मुझसे कहना हो, कह लेना। क्योंकि दिन भर रुके रहोगे, घबड़ा जाओगे। दुकानदार आदमी हो, चौबीस घंटे बात करते हो। तो रात एकांत में तुम मुझसे बोलने की स्वतंत्रता रखना। मगर दिन में, लाख कुछ हो जाए, अपने को बिल्कुल बांधे ही रखना। बोलना ही मत। कुछ अगर बोलना ही होगा तुम्हारे लिए, तो मैं बोल दूंगा।
कहा, जैसी आपकी मर्जी। उनको बात जंची, कि करके देख लेने जैसी है।
कलकत्ते में मैं ठहरता था सोहनलाल दूगड़ के घर पर। वे कलकत्ता के एक बड़े करोड़पति थे। जब मैं उनके घर पहुंचा, वे मुझे लेने आए, तो उन्होंने पूछा कि आपके साथ कौन हैं?
मैंने कहा, ये मौनी बाबा हैं।
मौनी बाबा! इनकी क्या खूबी है?
मैंने कहा, ये तीस साल से मौन हैं!
वे एकदम उनके पैरों पर गिरे! वे बेचारे सज्जन, जो दुकानदारी करते थे, कपड़ा बेचते थे; और कपड़ा भी कुछ खास नहीं, कटपीस की एक छोटी सी दुकान थी। सोहनलाल दूगड़ जैसा करोड़पति उनके पैरों पर गिरे! सकुचाए भी। मैंने उनको इशारा किया कि सकुचाना मत। अब जब मौनी बाबा बन गए, तो अब डरना मत। अभी तो बहुत कुछ होगा; यह तो शुरुआत है। जब सोहनलाल दूगड़ तुम्हारे पैर में गिरेंगे, तो अभी तुम कलकत्ते के सब मारवाड़ियों को गिरते देखोगे। तुम घबड़ाते क्या हो; तुम रुको जरा।
वे तो इतने घबड़ा गए कि वे मुझे हाथ से धक्का मारें कि भैया, यह बात ठीक नहीं!
घर पहुंचे। सोहनलाल ने जल्दी से अपनी पत्नी को बुलाया कि मौनी बाबा! मोहल्ले के लोग इकट्ठे हो गए कि मौनी बाबा आए हैं! तीस साल से मौन हैं! और मौनी बाबा पर जो गुजर रही है, वह मैं जानूं! कि वे रात का वक्त देख रहे हैं कि कब रात आए, कि अपने दिल की मुझसे कहें!
जैसे ही रात आई, दरवाजा जल्दी से बंद करके मेरे पैरों पर गिर पड़े और कहा कि मुझे माफ करो। मुझे यह काम करना ही नहीं! मुझे जाने दो! मैं तो अभी भागे जाता हूं; रात को ही चुपचाप निकल जाऊंगा। यह क्या झंझट मेरे पीछे लगा दी! इतने-इतने बड़े लोग, जिनके घर मुझे अगर मिलने भी जाना होता, तो कोई मिलने नहीं देता। चपरासी भीतर नहीं घुसने देता। और वे मेरे पैर पर गिरते हैं तो मुझको बड़ा संकोच लगता है! और स्त्रियां उनकी, सुंदर से सुंदर स्त्रियां मेरे पैर छू रही हैं! यह क्या करवा रहे हो आप?
मैंने कहा, मैं कुछ नहीं करवा रहा हूं। यह मैं तुमको बता रहा हूं कि कैसी-कैसी बेवकूफियां इस देश में हैं। तुम भी उन्हीं बेवकूफों में हो! जिसकी तुम बीस साल से पूजा कर रहे हो... । और तुम तो अभी सिर्फ पांच-छह घंटे ही मौन रहे हो, तो यह चमत्कार! अभी तुम तीन दिन रुको तो! अभी तुम देखना, इलाज शुरू हो जाएंगे, बीमारियां ठीक होने लगेंगी।

अरे, उन्होंने कहा, आप क्या कह रहे हैं! मुझमें कुछ चमत्कार नहीं, कोई शक्ति नहीं!
तुम, मैंने कहा, फिक्र ही मत करो। सब आ जाएगा। मौन भर रहो। और दिन भर रहो मौन। मगर दिन में बोलना मत। और मुझको धक्के वगैरह भी मत मारना। क्योंकि लोगों को शक पैदा हो जाएगा कि बात क्या है! तुम तो अपना आंखें बंद कर लिए। अगर बिल्कुल सहने के बाहर हो जाए, आंख बंद कर लिए। अपने भीतर ही भीतर नमोकार मंत्र पढ़ने लगे कि होने दो जो हो रहा है।
तीन दिन में तो उनकी डुंडी पिट गई! अखबारों में फोटो आ गए! रात को वे मुझे फोटो दिखाएं कि यह क्या करवा रहे हो? अगर मेरे घर पता चल गया; अगर मेरे पत्नी-बच्चों को पता चल गया; तुम तो मेरा घर लौटना तक बंद कर दोगे! ये अखबार अगर वहां पहुंच गए, तो मेरी मुसीबत हो जाएगी। और फिर मेरी दुकान की भी तो सोचो! और इधर मैं कटपीस खरीदने आया हूं; तुम नाहक रास्ते में मिल गए! अब मैं कटपीस कहां खरीदूंगा? यह कलकत्ते का बाजार तो खत्म! क्योंकि जिनके यहां से मैं कटपीस खरीदता था, वे लोग भी मेरे पैर छू रहे हैं! और कई तो मुझे गौर से देखते भी हैं कि यह शक्ल कुछ पहचानी मालूम होती है!
एक-दो आदमियों ने प्रश्न भी किया कि ये तीस साल से मौन हैं? यह शक्ल कुछ पहचानी मालूम होती है!
मैंने कहा, देखा होगा किसी पिछले जनम में! अरे, यह जनम-जनम का नाता है। उन्होंने कहा, यह बात ठीक!
ये कोई साधारण साधक हैं! ये तो जन्मों से साधना कर रहे हैं। कई बार तुम मिले होओगे पिछले जन्मों में, इसलिए शक्ल पहचानी लगती है।
उन्होंने कहा, हां, लगती तो पहचानी सी है शक्ल। मतलब कहीं देखा है। और ऐसा भी नहीं लगता कि पिछले जन्म में देखा है; इसी जनम में देखा है।
मैंने कहा, ये बड़े पहुंचे हुए पुरुष हैं। ये एक ही साथ कई नगरों में एक साथ प्रकट हो जाते हैं!
वे मुझे हुद्दे मारें कि मत ऐसी बातें कहो! मेरी कमीज खींचें कि मत कहो भैया, ऐसी बातें मत कहो! ये बिल्कुल झूठ बातें हैं।
मगर लोग मान रहे हैं! मिठाइयां आने लगीं; फल आने लगे। वे रात मुझको कहें कि क्या करवा रहे हो? इतनी मिठाइयां-फल मैं कहां ले जाऊंगा?
मैंने कहा, तुम ले जाना। घर बाल-बच्चों को, मोहल्ले में बंटवा देना। स्टेशन पर जब उनको लोग छोड़ने आए... कटपीस तो वे खरीद ही नहीं पाए। क्योंकि अब कहां कटपीस खरीदें! और कोई देख ले कटपीस खरीदता, कि मौनी बाबा कटपीस खरीद रहे हैं!
रास्ते भर मुझ पर नाराज रहे कि और सब तो ठीक, मगर कलकत्ते का बाजार खराब करवा दिया! अब मैं कलकत्ता कभी न जा सकूंगा!
मैंने उनसे कहा, तुम घबड़ाओ मत। तुम एक काम करो, दाढ़ी बढ़ा लो। अगली बार
जब कलकत्ता जाओ, दाढ़ी-मूंछ बढ़ा कर चले जाना।
हां, उन्होंने कहा, यह बात जंचती है।
मैंने कहा, फिर वे लोग कहेंगे कि देखा है कहीं! तो कहना, अरे देखना वगैरह तो चलता रहता है। कई लोगों की शक्लें एक जैसी होती हैं। और न हो, तो मैं साथ आ जाऊं।
उन्होंने कहा, नहीं, आपके तो साथ आने की कोई जरूरत ही नहीं। आपके साथ
तो मैं अब कभी कहीं जाऊंगा नहीं! अगर ट्रेन में मुझे पता भी चल गया कि आप सफर कर रहे हो, तो उस ट्रेन से उतर जाऊंगा।
और मेरे पैर पकड़ कर कहने लगे, इतनी कृपा करो कि ट्रेन में किसी को खबर
न हो! मतलब ये ट्रेन के लोग तो जबलपुर भी जाएंगे मेरे साथ ही। अगर वहां तक खबर पहुंच गई, तो सब चौपट समझो! मेरी पत्नी मुझे मुश्किल में डाल देगी कि तुमसे किसने कहा था कि तुम मौनी बाबा बनो? और तुम कहां से तीस साल मौनी बाबा रहे? तीन दिन के लिए घर से गए, और तीस साल मौनी बाबा हो गए!
फिर दुबारा जब मैं कलकत्ता जाता था, तो लोग उनकी जरूर पूछते थे कि मौनी बाबा नहीं आए? कब आएंगे? मैंने कहा, आएंगे! जरूर आएंगे! उनको स्वागत-सत्कार ज्यादा पसंद नहीं। वे बहुत नाराज हो गए हैं कलकत्ते से! इतना धूम-धड़ाका उनको बिल्कुल पसंद नहीं। वे बहुत सीधे-सादे आदमी हैं; मौन, एकांतवास करते हैं।

तुम जिनकी पूजा करते हो, जिनको महात्मा कहते हो, उसमें तुम्हारी धारणाएं ही भर काम कर रही हैं। तुम आंख खोल कर देखते भी नहीं।
ब्रह्मचर्य घटित होगा, तो अपूर्व ज्योति प्रकट होगी। वही इस सूत्र का अर्थ हैः
"सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।"
यह आत्मा अभी मिल जाए, मिली ही हुई है। बस, इतना ही चाहिए कि तुम सत्य
को जान लो शून्य में। जीवन के सुख-दुख में सम-भाव रखो। तप को पहचान लो। कूड़ा-करकट, उधार ज्ञान हटा दो, ताकि जो जैसा है, उसे वैसा ही देख सको। सम्यक ज्ञान फलित हो। और तुम्हारे भीतर जो शरीर की ऊर्जा है, काम-ऊर्जा, और जो तुम्हारी आत्मा की ऊर्जा है, ध्यान-ऊर्जा--काम और ध्यान का मिलन हो जाए। काम और राम का तुम्हारे भीतर मिलन हो जाए, तो बस, यह आत्मा अभी मिली, इस क्षण मिली।
"अंतःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो।"
तत्क्षण तुम जान सकोगे कि इसी शरीर में, इसी शरीर के भीतर वह ज्योति छिपी है, जो परम शुभ्र है।
"यं पश्यंति यतयः क्षीणदोषाः।"
ऐसा उन्होंने देखा है, जिन्होंने सारे दोषों से अपने को मुक्त कर लिया है।
और ये ही वे दोष हैं। विचार दोष है; इसके कारण तुम शून्य नहीं हो पाते। चुनाव दोष है; उसके कारण तुम सम नहीं हो पाते। उधार ज्ञान दोष है; उसके कारण तुम्हारी दृष्टि ठीक-ठीक निर्मल नहीं हो पाती। और दमन दोष है; उसके कारण तुम शरीर में छिपी हुई ऊर्जा को आत्मा का वाहन नहीं बना पाते।
नहीं तो शरीर की ऊर्जा अश्व की भांति है। तुम उस पर सवार हो जाओ, उसके मालिक हो जाओ। और तुम जान लोगे अपने भीतर छिपे हुए उस परम आलोक को, जिसका न कोई प्रारंभ है और न कोई अंत; जो शाश्वत है। उसे जिसने जाना, सब जाना। उसे जिसने जीता, उसने सब जीता।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आपने तो कहा कि आचार्य तुलसी एंड कंपनी की चोरी- चपाटी को क्षमा कर दें। लेकिन चोरी क्षमा भी कर दें, सीनाजोरी नहीं सही जाती। आपके ही विचार चुराते हैं और फिर आपका ही विरोध भी क्यों करते हैं?

विनय तीर्थ!
मेरे विचार चुराएंगे तो मेरा विरोध करना ही होगा। इसमें विरोध नहीं
है दोनों बातों में। ये दोनों बातें एक ही तर्क का अंग हैं। अगर मेरे विचार चुराते हैं तो उन्हें मेरा विरोध करना ही होगा, ताकि यह पता न चल सके कि मेरे विचार चुराते हैं। अगर मेरा विरोध न करें, तब तो तत्क्षण पता चल जाएगा कि मेरे विचार चुराए गए हैं। अगर मेरा समर्थन करें, तब तो तत्क्षण ही जाहिर हो जाएगी बात कि सब उधार पूंजी है।
मैं माना तुम्हारी तकलीफ कि कैसे क्षमा कर दें! लेकिन कोई और उपाय भी
तो नहीं। विचार की चोरी को रोका नहीं जा सकता। और ये चोर नए नहीं हैं; यह सदियों से चल रही चोरी है। जो वे सदा से करते रहे हैं, वही वे मेरे साथ करेंगे, वही वे सबके साथ कर रहे हैं।
और इस देश के तो तुम शास्त्रों को उठा कर देखो, तुम बड़े चकित हो जाओगे।
वे ही सूत्र एक शास्त्र में मिलेंगे, वे ही सूत्र सैकड़ों शास्त्रों में मिल जाएंगे। तो जरूर चोरी चलती रही है, सदियों से चलती रही है। यह हमारे जीवन का अंग हो गई है।

बस में अपनी जेब कटती देख
यात्री ने शोर मचाया
जेबकतरा उसे पकड़ कर थाने लाया
और थानेदार से बोला--
हुजूर!
यह आदमी शहर में

अव्यवस्था फैलाता है
हमें शांतिपूर्वक जेब नहीं काटने देता गंवारों की तरह चिल्लाता है!

थानेदार यात्री से बोला--
क्यों जी!
दिल्ली में नए आए हो क्या?
नए नहीं आए तो फिर
भांग खाए हो क्या?
इस शहर में कायदे-कानून नहीं जानते? जेबकतरों से अकड़ते हो?
अपनी औकात नहीं पहचानते?
यह संभ्रांत जेबकतरा
बिना तुम्हारे शरीर को आघात पहुंचाए अपना काम कर रहा था
इसे धन्यवाद देने की बजाय चिल्लाते हो? गांधी के देश में
शांति और अहिंसा का मजाक उड़ाते हो? अगर यह तुम्हें छुरा भोंक देता,
घोंट देता तुम्हारा गला,
कर लेता अपहरण,
तब क्या कर लेते तुम?
और क्या कर लेते हम?
खुद अपने ऊपर चाकू चलवाते
और दोष पुलिस को लगाते!
फिर ये पढ़े-लिखे जेबकतरे
जेब न काटें तो कहां जाएं? क्या करें, भूखे मरें?
कुएं में पड़ें? इलेक्शन लड़ें? डिग्रियों को चबाएं?
सब के सब तो नेता नहीं बन सकते। भाईजान!
चिल्लाने से आपदाएं नहीं टलतीं उन्हें आराम से सहना सीखो
शहर में आए हो तो
शहरियों की तरह रहना सीखो
मेरा मुंह क्या देख रहे हो
चलो बगल के कमरे में जाओ
और जेबकतरे जी से
चुपचाप अपनी जेब कटवाओ।

करो भी क्या, विनय तीर्थ! चुपचाप जेब कटवाओ।
और ये उल्लू तो हर जगह मिलेंगे। हर शाख पे उल्लू बैठे हैं! इनसे बचा भी
तो नहीं जा सकता, कोई उपाय नहीं है। इनकी जय-जयकार करो!

तेरी जय हो उल्लू भैया!
तेरी जय हो उल्लू भैया!
तुम्हीं हो अपने पूज्य पिताजी,
तुम्हीं हो मेरी मैया!
तेरी जय हो उल्लू भैया!
तुम निर्धन के हो दुश्मन, पूंजीपतियों के चाचा,
जिसने भी आंख दिखाई,
झट उसको पड़ा तमाचा!

सब तेरे आगे-पीछे करते हैं ता-ता थैया!
जय हो उल्लू भैया! तेरी जय हो उल्लू भैया! जितने भी चोर-जुआरी, सब तुम पर हैं बलिहारी कभी-कभी तो मुझको तुम लगते हो सरकारी,
हो जाए तुम जैसा, तर जाए उसकी नैया!
तेरी जय हो उल्लू भैया!
हम कवियों से लक्ष्मी जी रहती हैं रूठी-रूठी, जब से आए धरती पर तब से ही किस्मत फूटी! भिजवा दो दीवाली पर केवल दो लाख रुपैया!
तेरी जय हो उल्लू भैया!
हे लक्ष्मी के वाहन, तुम बहुत-बहुत गुणकारी
तेरे पट्ठों के दम से चलती है दुनिया सारी
हर शाख पे बैठे-बैठे तुम उड़ा रहे कनकैया!
तेरी जय हो उल्लू भैया!
और करो भी क्या, विनय तीर्थ! इसलिए मैंने कहा, क्षमा करो। आज इतना ही।

अनहद में बिसराम
चौथा प्रवचन

वर्तमान क्षण की धन्यता

पहला प्रश्नः ओशो,
भविष्यं नानुसंधत्ते नातीतं चिन्तयत्यसौ।
वर्तमान निमेषं तु हसन्नेवानुवर्तते।।
भविष्य का अनुसंधान नहीं, न अतीत की चिंता। हंसते हुए वर्तमान में जीना।
लगता है, योगवासिष्ठ का यह श्लोक आपकी देशना का संस्कृत अनुवाद है।
इसे हमें फिर एक बार समझाने की कृपा करें।

सहजानंद!
मन या तो अतीत होता है या भविष्य। वर्तमान में मन की कोई सत्ता नहीं।
और मन ही संसार है; इसलिए वर्तमान में संसार की भी कोई सत्ता नहीं। और मन ही समय है; इसलिए वर्तमान में समय की भी कोई सत्ता नहीं।
अतीत का वस्तुतः कोई अस्तित्व तो नहीं है, सिर्फ स्मृतियां हैं। जैसे रेत पर छूटे हुए पगचिह्न। सांप तो जा चुका, धूल पर पड़ी लकीर रह गई। ऐसे ही चित्त पर, जो बीत गया है, व्यतीत हो गया है, उसकी छाप रह जाती है। उसी छाप में अधिकतर लोग जीते हैं।
जो नहीं है उसमें जीएंगे, तो आनंद कैसे पाएंगे? प्यास तो है वास्तविक
और पानी पीएंगे स्मृतियों का! बुझेगी प्यास? धूप तो है वास्तविक और छाता लगाएंगे कल्पनाओं का! रुकेगी धूप उससे?
अतीत का कोई अस्तित्व नहीं। अतीत जा चुका, मिट चुका। मगर हम जीते हैं अतीत में। और इसलिए हमारा जीवन व्यर्थ, अर्थहीन, थोथा। इसलिए जीते तो हैं, मगर जी नहीं पाते। जीते तो हैं, लेकिन घिसटते हैं। नृत्य नहीं, संगीत नहीं, उत्सव नहीं।
और अतीत रोज बड़ा होता चला जाता है। चौबीस घंटे फिर बीत गए, अतीत और बड़ा
हो गया। चौबीस घंटे और बीत गए, अतीत और बड़ा हो गया। जैसे-जैसे अतीत बड़ा होता है, वैसे-वैसे हमारे सिर पर बोझ बड़ा होता है। इसलिए छोटे बच्चों की आंखों में जो निर्दोषता दिखाई पड़ती है, जो संतत्व दिखाई पड़ता है, वह फिर बूढ़ों की आंखों में खोजना मुश्किल हो जाता है। हजार तरह के झूठ इकट्ठे हो जाते हैं! सारा अतीत ही झूठ है!
जीसस एक सुबह-सुबह झील पर रुके। सूरज अभी ऊगा नहीं। बस, ऊगने को है। और
एक मछुए ने जाल फेंका है। जीसस ने उस मछुए के कंधे पर हाथ रखा; मछुए ने लौट कर देखा। सूरज की पहली फूटती हुई किरणें पूरब से जीसस के चेहरे पर पड़ीं, उस मछुए की आंख जीसस की आंख से मिली, और बात हो गई! बिना बात किए बात हो गई। आंख से आंख की मुलाकात हो गई। क्षण भर सन्नाटा रहा और जीसस ने कहा, छोड़ यह जाल! पकड़ लीं तूने मछलियां बहुत! करेगा भी क्या मछलियां पकड़-पकड़ कर? जीवन में कुछ और पकड़ना है या बस मछलियां ही पकड़ना है? इनकी दुर्गंध से अभी ऊबा नहीं? छोड़ जाल! मेरे पीछे आ! मैं तुझे परम धन खोजने का सूत्र दूं। ऐसा जाल फेंकना सिखाऊं कि परमात्मा ही फंसे उस जाल में। उससे कम को क्या फांसना!
मछुआ हिम्मतवर रहा होगा। पंडित होता, चालबाज होता, होशियार होता, ब्राह्मण होता, हजार बातें निकालता--कि अभी कैसे चलूं! अभी तो अड़चनें हैं। पहले मां से तो जाकर आज्ञा ले आऊं! पहले पिता से तो पूछ लूं! पत्नी क्या कहेगी! बच्चों का क्या होगा?
मगर जीसस की आंखों का जादू! जैसे सब भूल गया! छोड़ दिया जाल उसने पानी में ही। खींचा भी नहीं पानी के बाहर! जीसस के पीछे हो लिया।
वे दोनों गांव के बाहर निकलते ही थे कि एक आदमी भागा आया और उस मछुए को कहा, पागल! तू कहां जा रहा है? और इस पागल आदमी के साथ कहां जा रहा है? तेरे पिता की मृत्यु हो गई! मैं तुझे खोजने झील पर गया, वहां इस घटना का पता चला कि एक पागल, जो आस-पास गांव के कई बार देखा गया है, उसने तेरे कंधे पर हाथ

रखा और तू उसके पीछे चल पड़ा है। वापस चल! तेरे पिता का अंतिम संस्कार करना है या नहीं?
उस युवक ने जीसस से कहा, मुझे क्षमा करें। मैं जाकर अंतिम संस्कार कर आऊं। तीन दिन बाद लौट आऊंगा।
जीसस ने उससे कुछ बातें कहीं, जो सोचना। पहली तो बात जीसस ने यह कही कि
एक पल का तो भरोसा नहीं है, कल का भरोसा कहां! और तू तीन दिन का वायदा करता है! आ सकेगा? तेरे पिता को पक्का था कि आज मर जाएंगे? तुझे ही पक्का होता, तो आज तू झील पर मछली पकड़ने न गया होता। तू कल भी जिंदा होगा? तीन दिन बाद भी तू आ सकेगा? यह भी मान लें कि तू जिंदा होगा, तो तीन दिन बाद यह साहस रह जाएगा जो आज तुझमें जगा है? यह जो किरण तुझमें आज फूटी है? और फिर तीन दिन बाद तू आ भी जाए, यह भाव भी रह जाए, तो मैं बचूंगा? मैं भी बच जाऊं, यह भाव भी रह जाए, तीन दिन बाद तू आ भी जाए, तो हमारा फिर मिलन होगा? अनंत-अनंत काल में पहली बार हम मिले हैं, दुबारा का क्या भरोसा!
उस युवक ने कहा, बात तो आपकी ठीक है। जवाब तो मेरे पास नहीं। मगर मेरे पिता का अंतिम संस्कार भी तो करना है!
जीसस ने कहा, इसकी फिक्र छोड़। क्योंकि गांव में बहुत मुरदे हैं, वे मुरदे को दफना देंगे! गांव में कुछ मुरदों की कमी है? अब यही आदमी आया है, यह खुद ही मुरदा है। यह ही दफना देगा। मुरदे मुरदे को दफना देंगे। मुरदों को दफना लेने दे मुरदों को। फिर जो मर ही चुका, अब दफनाओ न दफनाओ, ऐसा दफनाओ वैसा दफनाओ, जमीन में गड़ाओ कि आग लगाओ, क्या फर्क पड़ता है! पंछी तो उड़ चुका। पिंजड़ा पड़ा रहा गया है। तू मेरे पीछे आ! यह अवसर खोने का नहीं है। पीछे की तरफ लौट कर मत देख, क्योंकि वही आदमी की बुनियादी भूल है।
और हम सब पीछे लौट कर देखते हैं! हम पीछे से ही जीते हैं। हम हिसाब ही लगाते रहते हैंः यह हुआ, वह हुआ। काश ऐसा हो जाता! काश वैसा हो जाता!
फिर इस अतीत के उपद्रव से भविष्य का उपद्रव पैदा होता है। उपद्रव निःसंतान नहीं होते! उपद्रव संतति-नियमन में नहीं मानते! उपद्रव भारतीय होते हैं। एक उपद्रव दस-पंद्रह बच्चे पैदा करता है; इससे कम नहीं।
मैंने सुना, जनगणना करने वाले अधिकारी ने एक द्वार पर दस्तक दी। और थोड़ा चौंका, और थोड़ा हैरान हुआ। आंख पर भरोसा भी न आया, गौर से पुनः देखा। लेकिन बात सच थी, भरोसा आए या न आए। जिस स्त्री ने दरवाजा खोला था, बिल्कुल नग्न थी! चौंक गया। पूछा, आप नग्न क्यों हैं?
उस स्त्री ने कहा, चौंको मत। मैं न्यूडिस्ट हूं! मैं दिगंबरत्व में विश्वास करती हूं!
वह आदमी समझदार था। सोचा, अपने को क्या लेना-देना! इसकी यह जाने। जिस काम के लिए आया हूं, वह मैं करूं और अपने रास्ते पर लगूं। उसे तो कुछ जानकारियां लेनी थीं जनगणना के लिए, सो उसने जरूरी प्रश्न पूछ कर अपनी बही में लिखे। उन्हीं प्रश्नों में एक प्रश्न था, आपके कितने बच्चे हैं। सो उसने पूछा। उस स्त्री ने कहा, बाईस!
फिर वह आदमी चौंका। उसने कहा, बाई, क्या आप वाकई न्यूडिस्ट हैं या आपको कपड़े पहनने की फुर्सत नहीं मिलती?
ये जो उपद्रव हैं, इनकी बड़ी संतानें होती हैं। कहावत है कि एक मुसीबत अकेली नहीं आती; साथ में भीड़-भड़क्का लाती है! मुसीबत तो यूं समझो कि कुंभ का मेला है! एक क्या आई, और आती होंगी। एक आई, तो तुम यूं समझो कि बस खबर आई। कहते हैं, एक फूल खिल जाए, तो समझो कि वसंत आ गया। फूलों के संबंध में सच हो या न हो, मगर एक मुसीबत आ गई, तो समझ लो कि अब मुसीबतों ही मुसीबतों के जाल फैल जाने वाले हैं।
सबसे बड़ी मुसीबत जो अतीत लाता है, वह है भविष्य। भविष्य तुम्हारे अतीत की ही छाया है। वह तुमने जो जीया है, उसमें से कुछ काट-छांट कर तुम भविष्य की कल्पना करते हो। जो प्रीतिकर नहीं था, उसे छांटते हो। जो प्रीतिकर था, उसे फैलाते हो, बढ़ाते हो, विस्तीर्ण करते हो। भविष्य है क्या? भविष्य का तुम्हें पता तो नहीं। जिसका पता हो, वह भविष्य नहीं। भविष्य तो अज्ञात है। लेकिन अतीत ज्ञात है। ज्ञात से हम अज्ञात के संबंध में अनुमान लगाते हैं। और ज्ञात में से ही चुनाव करते हैं। सुखद को चुनते

हैं, दुखद को छोड़ते हैं। ऐसे हम भविष्य के रंगीन सपने संजोते हैं। कांटे- कांटे अलग कर देते हैं, गुलाब-गुलाब बचा लेते हैं।
हालांकि यह हमारी भ्रांति है, क्योंकि कांटे और गुलाब साथ-साथ होते हैं। यह असंभव है कि तुम जो-जो गलत था उसे छोड़ दो और जो-जो ठीक था उसे बचा लो। गलत और ठीक संयुक्त था, जुड़ा था। आएगा, तो साथ आएगा। जाएगा, तो साथ जाएगा। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम एक पहलू को बचा न सकोगे।
तो एक तो अतीत का बोझ; उसकी चट्टानें हमारी छाती पर रखी हैं। और फिर भविष्य का बोझ। अतीत का रोना, कि ऐसा क्यों न हुआ। और फिर जल्दी ही भविष्य के लिए रोओगे, क्योंकि वह भी नहीं होने वाला है। न अतीत तुम्हारे मन के अनुकूल हुआ, न भविष्य तुम्हारे मन के अनुकूल होगा। इन दो पाटों के बीच में आदमी पिसता है। और दोनों ही का कोई अस्तित्व नहीं है।
अतीत वह, जो जा चुका--अब नहीं। और भविष्य वह, जो आया नहीं--अभी नहीं।
दोनों के मध्य में छोटा सा बिंदु है अस्तित्व का। बस, बूंद की भांति है।
अगर होश न रहा, तो चूक जाओगे।
यह सूत्र प्यारा है। यह संन्यास की परिभाषा है।
"भविष्यं नानुसंधत्ते।"
भविष्य का अनुसंधान न करो। जो नहीं है, उसके पीछे न दौड़ो।
मगर साधारण आदमियों की तो बात छोड़ दो, जिनको तुम असाधारण कहते हो, जिनको तुम पूजते हो, वे भी जो नहीं है उसके पीछे दौड़ते हैं। राम भी स्वर्णमृगों के पीछे दौड़ते हैं! औरों की तो बात छोड़ दो। हाथ की सीता को गंवा बैठते हैं! इसमें कसूर रावण का कम है। रावण को नाहक दोष दिए जाते हो। अगर कहानी को गौर से देखो, तो रावण का कसूर न के बराबर है। अगर कसूर है किसी का, तो राम का। स्वर्णमृग के पीछे जा रहे हैं!
बुद्धू से बुद्धू आदमी को भी पता है कि मृग स्वर्ण के नहीं होते। साधारण से साधारण आदमी कहता है कि सारा जग मृग-मरीचिका है। देखते हो मजा! साधारण आदमी भी कहता है, जग मृग-मरीचिका है। और राम सोने के मृग के पीछे चल पड़े! और क्या मृग-मरीचिका होगी? इससे बड़ा और क्या भ्रमजाल होगा? सीता को गंवा बैठे!
जब भी मैं राम, लक्ष्मण और सीता की तस्वीर देखता हूं, तो मुझे लगता है
कि यह भविष्य, वर्तमान और अतीत की तस्वीर है। राम हैं आगे, लक्ष्मण हैं पीछे, मध्य में सीता है। राम हैं अतीत; जो बीत गया, जो जा चुका, उसके पूजक। इसलिए तो दशरथ की मान कर चल पड़े। न सोच किया, न विचार किया। न पूछा, न प्रश्न उठाया।
दशरथ की बात मानने योग्य थी ही नहीं। दशरथ की बात विद्रोह के योग्य थी। और काश, राम ने विद्रोह किया होता, तो भारत की कथा और होती। तो भारत के जीवन का अर्थ और होता, इतिहास और होता। काश, राम ने विद्रोह किया होता, तो भारत इस तरह गुलामी में न जीता, इस तरह की पीड़ा में न जीता। लेकिन राम ने एक ऐसी बात को स्वीकृति दे दी, जो कि बुनियादी रूप से गलत थी। जिसमें कहीं भी कोई न्याय नहीं था। चौदह साल का वनवास! अकारण!
दशरथ बूढ़े थे। बुढ़ापे में जो विवाह किया था, जो चौथी पत्नी थी, वह जवान! अक्सर बूढ़े पति जवान पत्नियों के चक्कर में होते हैं! बूढ़े हैं, चक्कर में होना ही पड़ता है। अरे, जवानों को होना पड़ता है, तो बूढ़ों की तो बात ही क्या! इस बुढ़ापे में जवान स्त्री ने जो कहा, वह मान लिया! यह भी अत्यंत मूर्च्छा की बात थी।
और राम हैं परंपरा के पूजक। रघुकुल रीति सदा चलि आई। वे तो रघुकुल की रीति--रीति और रिवाज, परंपरा--उसके पोषक हैं। तो अन्याय हो तो भी चलेगा। अन्याय के संबंध में भी बगावत नहीं है, विद्रोह नहीं है। और जहां अन्याय को पूजने वालों को पूजा जाता हो, फिर स्वभावतः उस देश का दुर्भाग्य सुनिश्चित है। वे अतीत के प्रतीक हैं राम।
लक्ष्मण भविष्य के लिए आतुर हैं। तुम्हें याद होगा, स्वयंवर जब सीता
का रचा गया, तो लक्ष्मण उचक-उचक पड़ते हैं! उनको रोकना पड़ता है बार-बार। वे धनुष तोड़ने को एकदम आतुर हो रहे हैं। वे इसकी फिक्र नहीं करते कि बड़े भैया मौजूद हैं, इनका भी कुछ ख्याल करें! ऋषि-मुनि उनको रोकते हैं, कि रुको। यह ऋषि-मुनियों का भी काम खूब है! अरे, तोड़ लेने दो बेचारे को तोड़ना है तो! मगर

वे उनको रोकते हैं कि नहीं, तू मत तोड़ना! वे एकदम आगे के लिए आतुर हैं; भविष्योन्मुख हैं, जल्दबाजी में हैं। राम हैं अतीत-उन्मुख। और सीता है दोनों के मध्य में। और वह कोमल सी सीता, वही है वर्तमान।
इस सूत्र में वर्तमान के लिए जो शब्द उपयोग हुआ हैः वर्तमान निमेषं! निमिष-मात्र!
निमिष शब्द को समझना उपयोगी है। निमिष उस हिस्से को कहते हैं समय के, जिसको तौला न जा सके, मापा न जा सके। सेकेंड नहीं, मिनट नहीं। निमिष का अर्थ होता है, जो तुलना के बाहर है, इतना छोटा है! जैसे कि भौतिकशास्त्री कहते हैं कि परमाणु का जब विस्फोट करते हैं और इलेक्ट्रान हमारे हाथ लगते हैं, तो उनमें कोई वजन नहीं; वे तौले नहीं जा सकते। जो तौला नहीं जा सकता उसको तो पदार्थ ही नहीं कहना चाहिए।
अंग्रेजी में शब्द है पदार्थ के लिए मैटर। मैटर बड़ा महत्वपूर्ण शब्द है। पदार्थ से ज्यादा महत्वपूर्ण शब्द है। क्योंकि पदार्थ का तो अर्थ होता है, जिस पद में अर्थ हो। मैटर बनता है मीटर से। मीटर यानी जिससे तौला जाए, जो तुल जाए। मैटर का अर्थ होता है, जो तौला जा सकता है।
लेकिन इलेक्ट्रान तो तौला नहीं जा सकता, मापा नहीं जा सकता--न तराजू पर, न इंच-फिटों में; कोई उपाय नहीं। इतना छोटा है कि हमारे तौलने के साधन सब मोटे हो जाते हैं, सब स्थूल रह जाते हैं। वह हमारी तुलना के बाहर हो जाता है।
ऐसे ही समय के उस अंतिम हिस्से को निमिष कहते हैं, जो तुलना के बाहर है, जो तौल के बाहर है; जिसकी कोई मात्रा नहीं होती; जो आया और गया! जो आया नहीं कि गया नहीं!
दो शिकारी नए-नए शिकार खेलने गए थे। दोनों बड़े तत्पर थे, बिल्कुल बंदूक लिए हुए। और तभी एक खरगोश छलांग लगाया; एक झाड़ी से दूसरी झाड़ी में चला गया। दोनों बिल्कुल तत्पर थे, लेकिन फिर भी चूक गए। एक ने दूसरे से पूछा कि मामला क्या हुआ? मैं भी तैयार, तुम भी तैयार; बंदूकों के घोड़ों पर हाथ रखे थे; हुआ क्या? बात क्या हुई?
उस दूसरे शिकारी ने कहा, मैं कहूं क्या! जब खरगोश निकल गया, तब मुझे दिखाई पड़ा! इतनी तेजी से निकला कि जब निकल रहा था तब तो मैं चूक ही गया। जब निकल गया, तब मुझे याद आई कि अरे! मगर तब तक तो देर हो चुकी थी। तब तो गोली चलाने का कोई अर्थ न था।
ऐसा निमिष है। तुम्हें जब दिखाई पड़ता है, तब तक जा ही चुका होता है। जैसे ही तुम्हें याद आती है, यह वर्तमान! गया। अतीत हो गया। पहचाना, कि अतीत हो गया। सिर्फ जीया जा सकता है, जाना नहीं जा सकता। या कि यूं कहो कि जीना ही जानने का एकमात्र उपाय है। क्योंकि तुमने अगर जानने की कोशिश की, तो अतीत हो जाएगा। या अगर जल्दबाजी की, तो भविष्य रहेगा। अगर जरा सी देर की, तो अतीत हो जाएगा। और देर करनी ही पड़ेगी, क्योंकि मन में इतनी गति नहीं है। यूं तो तुमने सुना है बहुत कि मन की बहुत गति है, मगर वह जो वर्तमान का क्षण है, मन से भी बहुत तीव्र गति से जाता है। मन उसके सामने कुछ भी नहीं। बहुत पिछड़ जाता है।
यह सूत्र संन्यास की आधारशिला हैः "भविष्यं नानुसंधत्ते।"
न तो भविष्य का अनुसंधान करना; दौड़ना मत भविष्य के पीछे। यह भविष्य बस स्वर्णमृग है।
मगर हम सब दौड़ रहे हैं भविष्य के पीछे। अलग-अलग स्वर्णमृग हैं--कोई धन
के पीछे, कोई पद के पीछे, कोई मोक्ष के पीछे, कोई परमात्मा के पीछे--मगर भागे हुए हैं लोग! कोई यहां नहीं; सब की आंखें वहां टिकी हैं। और होना है यहां और आंखें हैं वहां! इसलिए तुम्हारे और तुम्हारी आंख में ही तालमेल नहीं हो पाता; उन दोनों में ही टूट हो जाती है। चलते हो कहीं, देखते हो कहीं!
यूनान की बड़ी प्रसिद्ध कथा है। एक बहुत बड़ा ज्योतिषी रात तारों का अध्ययन करता हुआ एक कुएं में गिर पड़ा। कुएं पर कोई घाट न था, कोई पाट न था। और उसकी आंखें अटकी थीं दूर आकाश के तारों पर। तो गिर पड़ा कुएं में। जब गिर पड़ा, तब होश आया। चिल्लाया। रात थी अंधेरी, रास्ता निर्जन, गांव पीछे छूट गया। वह तो खेत में एक झोपड़े में रात, और तो कोई न था, एक बूढ़ी औरत सोई थी।

वह भी रखवाली के लिए थी। आवाज सुनी तो आई। बामुश्किल उस वृद्धा ने रस्सी डाल कर इस ज्योतिषी को बाहर निकाला।
ज्योतिषी ने उसे बहुत-बहुत धन्यवाद दिया, बहुत अनुग्रह किया। और कहा
कि सुन, तुझे शायद पता भी न हो कि मैं यूनान का सबसे बड़ा ज्योतिषी हूं। तारों के संबंध में और तारों के माध्यम से मनुष्य के भविष्य के संबंध में मेरी घोषणाएं कभी गलत नहीं हुईं। बड़े-बड़े सम्राट दूर-दूर से अपना भविष्य पूछने मेरे पास आते हैं। हजारों रुपए मेरी फीस है। लेकिन तेरा भविष्य मैं मुफ्त बता दूंगा, क्योंकि तूने मेरा जीवन बचाया।
वह बूढ़ी स्त्री हंसने लगी। उसने कहा, बेटा, तू फिक्र न कर। मैं तुझे कष्ट न दूंगी। उसने कहा, नहीं-नहीं। कष्ट की कोई बात नहीं। तू कल आ जाना। यह मेरा पता रहा। यूं तो तू किसी से भी पूछ लेगी एथेंस में, तो कोई भी मेरे घर का पता बता देगा। बच्चा-बच्चा जानता है।
पर, उस बुढ़िया ने कहा, मुझे आना नहीं बेटा। तुझसे क्या अपना भविष्य पूछूंगी! तुझे एक कदम आगे का कुआं तो दिखाई पड़ता नहीं। तू मेरे संबंध में क्या बताएगा! तुझे अपना भविष्य पता नहीं कि आज कुएं में गिरना है; कि आज जरा सम्हल कर चलूं; कि आज चलूं ही नहीं, घर में ही रहूं। तू मुझे क्या भविष्य बताएगा!
कहानी अदभुत है, क्योंकि उस ज्योतिषी को इससे इतनी चोट लगी और बात इतनी साफ हो गई कि उसने ज्योतिषी का धंधा छोड़ दिया। बात तो सच थी।
ऐसा हुआ, जयपुर में मेरे पास एक ज्योतिषी को लोग ले आए। एक हजार एक रुपया उनकी फीस थी। उससे कम में वे हाथ भी नहीं देखते थे। मुझसे बोले कि आपको मेरी फीस पता है? मैंने कहा, जो भी फीस होगी... ।
उन्होंने कहा, नहीं। मैं आपको बता दूं। एक हजार एक।
मैंने कहा, तुम फिक्र छोड़ो। मैं एक हजार दो दूंगा! अब तुम आ ही गए हो, इतना कष्ट किए, तो खाली हाथ जाना उचित नहीं। तुम मजे से मेरे हाथ का अध्ययन करो।
कुछ बातें यहां-वहां की उन्होंने कहीं, जो कि बंधी हुई बातें हैं, जो
कि ज्योतिषी सभी को कहते हैं, जो कि सभी के संबंध में सही होती हैं। थोड़ा- बहुत हेर-फेर करना पड़ता है। और बातें इस ढंग से कहनी होती हैं कि उनमें हेर-फेर करने की सुविधा होती है; गोल-मोल करनी होती हैं। फिर चलने का वक्त आया, तो वे राह देखें कि उनकी फीस मिले!
मैंने कहा, अब आप जाइए भी। अब मैं कुछ और काम करूं!
उन्होंने कहा, मैं तो जाऊं, लेकिन फीस!
मैंने कहा, यह तो आपको पहले ही सोच लेना था! अपना हाथ देख कर घर से निकलना चाहिए!
उन्होंने कहा, आपका मतलब?
मैंने कहा, मेरा मतलब यह कि मैं तो फीस देने वाला नहीं हूं। तुम्हें मेरा हाथ देखते से समझ लेना था कि इस आदमी से फीस नहीं मिलने वाली! सच तो यह है, तुमने मेरा इतना समय खराब किया, इसकी फीस तुम मुझे दो। और तुम निपट बुद्धू हो, क्योंकि तुमको यह भी पता नहीं कि आज किसका हाथ देखने जा रहे हो; उससे फीस मिलने वाली नहीं!
लेकिन यह ज्योतिषी एथेंस के उस ज्योतिषी जैसा बुद्धिमान नहीं था। मैंने सुना, वे अभी भी वही धंधा कर रहे हैं! उस एथेंस के ज्योतिषी ने तो धंधा छोड़ दिया। बात तो साफ हो गई कि मेरी आंखें तारों पर अटकी हैं; मुझे एक कदम आगे का तो पता नहीं चलता; कुएं में गिर जाता हूं; क्या जानूंगा भविष्य! भविष्य वह है, जो जाना ही नहीं जाता। और अतीत वह है, जो जाना गया। तो तुम भविष्य के संबंध में जो दौड़-धूप करते हो, आपा-धापी करते हो, वह अतीत के ही आधार पर करते हो। अतीत से ही सीढ़ियां बनाते हो। और इन दोनों के बीच में वह निमिष-मात्र छोटा सा पल है, जो भागा जा रहा है, इतनी तेजी से कि अगर तुम अतीत और भविष्य में उलझे रहे, तो उससे चूकते ही जाओगे, चूकते ही जाओगे। और वही है सत्य।
"भविष्यं नानुसंधत्ते नातीतं चिन्तयत्यसौ।"
और न अतीत की चिंता। जो बीत गया, बीत गया। अब उधेड़बुन क्या! अब उसको अन्यथा तो किया नहीं जा सकता। अब तुम लाख उपाय करो, तो भी रत्ती भर उसे

बदला नहीं जा सकता। जिसे बदला ही नहीं जा सकता, उसके संबंध में चिंता कैसी! क्यों समय खराब कर रहे हो उसके संबंध में? और जो आया नहीं है अभी, अभी कुछ किया नहीं जा सकता। और हम दोनों में ही उलझे हैं। इन दोनों का नाम संसार है।
संसार बाजार नहीं है, न दुकान है, न परिवार है। अतीत और भविष्य, इनका
जो विस्तार है... । अतीत अर्थात स्मृति; भविष्य अर्थात कल्पना। इन दोनों के बीच में तुम मरे जा रहे हो। यही तुम्हारा संसार है।
मैं भी अपने संन्यासी को कहता हूं कि संसार छोड़ो। लेकिन उस संसार को छोड़ने को नहीं कहता, जिसको पुराने संन्यासी छोड़ कर भागते रहे हैं। वे तो भगोड़े हैं। वे तो पलायनवादी हैं। वे तो कायर हैं। उन्होंने तो पीठ दिखा दी। उन्होंने तो जीवन का अवसर खो दिया। मैं कहता हूं, इस संसार को छोड़ो। मन संसार है। अतीत-भविष्य संसार है। इसको छोड़ दो; और वर्तमान में जीओ--अभी! यहीं!
थोड़ा सोचो इस सौंदर्य को, इस अपूर्व प्रसाद को--यहीं और अभी होने के!
सब जैसे ठहर जाए। अतीत नहीं, भविष्य नहीं। तो वह जो ठहराव है, वह जो थिरता है, वही ध्यान है, वही संन्यास है। उस थिरता में निर्मलता है, निर्दोषता है। उस थिरता में अहोभाव है, आश्चर्य है, रहस्य है। उस थिरता में परमात्मा का दर्शन है, मुक्ति है, निर्वाण है।
और योगवासिष्ठ का यह सूत्र इसलिए और भी महत्वपूर्ण है, इससे तुम्हें जाहिर होगा कि यह मेरे संन्यास की परिभाषा ही हो सकता है, पुराने संन्यास की परिभाषा नहीं। क्योंकि पुराना संन्यासी तो न केवल भविष्य की सोच रहा है, साधारण संसारी से तुम्हारा संन्यासी तो और भी बड़े भविष्य की सोच रहा है--मृत्यु के बाद क्या होगा? स्वर्ग में क्या होगा? कितने स्वर्ग हैं? मोक्ष मिलेगा कि नहीं मिलेगा? किन पुण्यों के करने से स्वर्ग में प्रवेश मिलेगा? परमात्मा की उपलब्धि कब होगी?
धन की दौड़ तो यहीं है; उसकी तो सीमा है मौत। मगर यह जो मोक्ष की और परमात्मा की और ब्रह्म-अनुभव की खोज में दौड़ रहा है, इसकी तो कोई सीमा ही नहीं। इसका भविष्य तो बड़ा असीम है! यह तो और भी बड़ा संसारी है, मेरे हिसाब से, क्योंकि इसका तो मन और भी बड़ा है। और तुम्हें तो इसी जन्म की फिक्र है। मगर यह तुम्हारा जो संन्यासी है, इसको पिछले-पिछले जन्मों की भी फिक्र पड़ी है। कि पिछले जन्मों में जो पाप किए थे, कर्म किए थे, उनका भी निपटारा करना है, उनका भी हिसाब करना है।
तुम्हारा भविष्य भी सीमित है और अतीत भी। अतीत तुम्हारा जन्म से अब तक; और भविष्य तुम्हारा अब से मृत्यु तक। कोई बहुत ज्यादा नहीं! सत्तर साल जीओगे, तो समझ लो कि आधा भविष्य, आधा अतीत--अगर पैंतीस साल की उम्र है अभी, अगर अभी बीच में खड़े हो तो। मगर तुम्हारा जो संन्यासी है, जिसको तुम धार्मिक कहते हो, उसकी मुसीबत तो सोचो! वह तो कह रहा है, चौरासी करोड़ योनियों में होकर आया हूं! चौरासी करोड़ योनियों में उन्होंने क्या-क्या काम नहीं किए होंगे! उन सब का हिसाब, उन सब का निपटारा करना है। एक-एक रत्ती-रत्ती कृत्य का चुकतारा करना होगा। इसका अतीत तो बहुत बड़ा है! यह तो कभी सुलझ पाएगा, इसकी संभावना न समझो। इतने उलझाव को कैसे सुलझाएगा? और उलझाव आदमी का ही नहीं है; सब तरह के जानवरों का है। यह मछली भी रहा; यह केंचुआ भी रहा। अब इसने क्या-क्या उपद्रव न किए होंगे!
मैंने सुना, एक केंचुए ने एक दूसरे केंचुए को देख कर कहा, अहा! पहली नजर का प्रेम इसको कहते हैं! मुझे तो तुझसे प्रेम हो गया!
उस दूसरे केंचुए ने कहा, अरे मूरख, मैं तेरा ही दूसरा हिस्सा हूं! नाहक
की बकवास न कर! क्योंकि केंचुए के दो मुंह होते हैं, वह उन्हीं का दूसरा हिस्सा था। उसने कहा, मूरख, व्यर्थ की बकवास न कर!
केंचुए भी रहे होओगे। न मालूम कैसी-कैसी नजरों के प्रेम हुए होंगे। कभी-कभी खुद से भी प्रेम हुआ होगा। खुद ही से प्रेम के वार्तालाप हो गए होंगे। जंगली जानवर भी रहे होओगे। क्या-क्या नहीं रहे होओगे! चौरासी करोड़ योनियों में सब तो आ गया होगा। पत्थर से लेकर आदमी तक की लंबी यात्रा, इस सब का हिसाब-किताब करना है!

इसलिए तो तुम्हारा साधु इतना उदास हो जाता है; इतना चिंतित हो जाता है; इतना व्यथित हो जाता है। न दिन चैन, न रात चैन। कहां विश्राम उसे! और मैं बात कर रहा हूं अनहद में बिसराम की। उसको कहां विश्राम? उसको तो उधेड़बुन ही उधेड़बुन है। और फिर उसका भविष्य यहीं खत्म नहीं होता; मौत पर कोई समाप्ति नहीं होती। फिर आगे चलते ही जाना है।
इन दोनों अनंत यात्राओं के बीच में उसका निमिष पल-मात्र का जो वर्तमान है, वह तो यूं दब कर पिस जाएगा कि जैसे दो चट्टानों के बीच में किसी ने जुही के फूल को दबा दिया हो! पता भी न चलेगा। कभी खबर भी न मिलेगी। नहीं। यह सूत्र मेरे संन्यास की ही बात कर रहा है। छोड़ो अतीत को; छोड़ो भविष्य को। और दूसरी बात भी मेरे संन्यासी पर ही लागू हो सकती हैः "वर्तमान निमेषं तु हसन्नेवानुवर्तते।"
हंसो, आनंदित होओ। प्रफुल्लित होओ। मग्नचित्त होकर जीओ।
यह तो पुराने संन्यासी पर लागू नहीं हो सकता। हंसते हुए वर्तमान में जीना! पुराना संन्यासी तो कहेगा कि यह योगवासिष्ठ भी भ्रष्ट है। मैं तो भ्रष्ट हूं ही।
योगवासिष्ठ को लोग पढ़ते रहते हैं, लेकिन इसके अर्थ को नहीं समझते। न मालूम कितने शास्त्रों को पढ़ते रहते हैं, जिनके अर्थ नहीं समझते। अगर उनको अर्थ समझ में आ जाएं, तो बहुत चौंकें, बहुत हैरानी उन्हें हो। क्योंकि उनकी जीवन-धारणाओं में और उन शास्त्रों के मौलिक अर्थों में भेद होगा। होना ही चाहिए। क्योंकि शास्त्र तो उनसे जन्मे हैं, जिन्होंने जाना।
अब जिसने जाना है, उसने यह बात कही होगी। अज्ञानी तो नहीं कह सकता। वर्तमान के क्षण में मस्त होकर जो जी रहा है, अलमस्त, प्रमुदित, प्रफुल्लित; जिसका रोआं-रोआं नृत्य में लीन है, और जिसके कण-कण में गीत उठ रहा है, वैसा व्यक्ति ही संन्यासी है।
लेकिन तुम्हारे तथाकथित संन्यासियों को तुम देखो। उनकी शक्लों पर बारह बज रहे हैं! हमेशा मातमी! हंसना तो जैसे सदियों से भूल गए हैं। और हंसें भी तो कैसे हंसें? चौरासी करोड़ योनियों का बोझ! कितना हिसाब-किताब निपटाना है! कर्मों के कितने जाल इकट्ठे हो गए हैं, और रोज होते जा रहे हैं। और रोज भूल पर भूल होती जा रही हैं। और अभी आगे भी बहुत यात्रा पड़ी है। धूल यूं ही बहुत जम गई है और अभी यात्रा बहुत शेष है, और धूल जमेगी। उनका संकट तो देखो! उनके प्राण कैसी विडंबना में पड़े न होंगे! कहां हंसें? कैसे हंसें? हंस तो वही सकता है, जिसका कोई अतीत नहीं, कोई भविष्य नहीं; वर्तमान ही जिसके लिए सब कुछ है। उसके लिए क्या चिंता? क्या बोझ? क्या पीड़ा? क्या मातम? उसके लिए जीवन उत्सव है।
निश्चित ही, सहजानंद, योगवासिष्ठ का यह श्लोक, मैं जो कहता हूं, उसकी तरफ ही इशारा है; और बहुत स्पष्ट इशारा है। जिसने भी कहा होगा, वह जानने वाला रहा होगा, वह बुद्धपुरुष रहा होगा।
शास्त्रों के संबंध में एक बात ख्याल रखना, क्योंकि पुराने शास्त्र
एक व्यक्ति के द्वारा लिखे हुए नहीं हैं, अनेक व्यक्तियों के द्वारा लिखे हुए हैं। उनमें चीजें जुड़ती चली गईं। वे सब संहिताएं हैं। नए-नए लोग होते गए, नई-नई बातें जोड़ते चले गए। तो उनमें कभी-कभी अज्ञानियों ने भी जोड़ दिया है बहुत कुछ। ज्ञानियों के साथ-साथ अज्ञानियों के शब्द भी उनमें मिल गए हैं।
इसलिए तुम्हें मेरी बातों में कई बार विरोधाभास मिलेगा। योगवासिष्ठ
के इस सूत्र का मैं समर्थन करूंगा और किसी दूसरे सूत्र का विरोध करूंगा। और तब तुम्हें अड़चन होती है, क्योंकि तुम्हें हैरानी यह होती है कि जब योगवासिष्ठ का एक सूत्र मैंने ठीक कहा, तो सब सूत्र ठीक होने चाहिए!
सब सूत्र ठीक नहीं हो सकते, क्योंकि सब सूत्र एक ही ऊर्जा से पैदा नहीं हुए हैं।
वेद के एक सूत्र का मैं समर्थन कर दूंगा और दूसरे सूत्र का विरोध करूंगा। और उतने ही बलपूर्वक विरोध करूंगा, जितने बलपूर्वक मैंने पहले का समर्थन किया था। और तुम विरोधाभास देखते हो, तो तुम्हारी भूल है। कहीं कोई विरोधाभास नहीं है। संहिताएं हैं ये।

बुद्ध के नाम से इतने शास्त्र हैं कि असंभव है कि एक व्यक्ति ने उतने शास्त्र लिखे हों या कहे हों। व्यास के नाम से इतने शास्त्र हैं कि असंभव है यह कि एक व्यक्ति ने इतने शास्त्र लिखे हों या कहे हों। व्यास का नाम स्वीकृत नाम हो गया; साख हो गई नाम की। तो जिसको भी अपनी किताब चलानी हो, वह व्यास का नाम उस पर लिख देता था!
छपती तो थीं नहीं किताबें; लिखी जाती थीं हाथ से। कोई कापीराइट तो थे नहीं उन दिनों, कोई सरकारी नियंत्रण था नहीं। तुम भी किताब लिख कर अगर उसको लिख दो व्यास-रचित, तो कोई कुछ कर नहीं सकता था। तुमने चला दी व्यास की एक और किताब! लेकिन व्यास के नाम की साख थी; साख का फायदा उठा लेना अच्छा था। तुम अपने नाम से लिखोगे, कौन पढ़ेगा? कौन सुनेगा? कौन मानेगा?
लेकिन व्यास की है, तो फिर तो माननी ही होगी; गलत भी हो, तो भी माननी होगी।
कितनी रामायणें हैं! वाल्मीकि से लेकर तुलसीदास तक कितने लोगों ने रामायणें लिखीं! इनमें बहुत भेद हैं। एक-दूसरे से बहुत ज्यादा अलग-अलग बातें हैं। मगर राम की कथा है; राम की कथा की साख है; तो कोई भी लिख दे राम की कथा, चल पड़ेगी! लोग उसे सिर पर रख लेंगे। लोगों को फिक्र ही नहीं कि उसके भीतर क्या है!
इसलिए मैं जब किसी सूत्र का समर्थन करूं, तो ख्याल रखना, उस सूत्र का समर्थन कर रहा हूं, कोई योगवासिष्ठ के पूरे जीवन-दर्शन का समर्थन नहीं कर रहा हूं। बहुत से सूत्र हैं जिनसे मेरा इतना ही विरोध है, जितना मेरा समर्थन इस सूत्र के लिए है। क्योंकि मेरे पास अपनी कसौटी है। मुझे किसी शास्त्र से न कुछ लेना है, न देना है। मेरी कसौटी पर जो ठीक उतरेगा, वह ठीक। जो ठीक नहीं उतरेगा, वह नहीं ठीक। सोने को सोना कहूंगा; मिट्टी को मिट्टी कहूंगा। फिर वह चाहे योगवासिष्ठ में ही रखी हुई मिट्टी क्यों न हो! और सोना अगर कचरे में भी पड़ा हो, तो भी उसे सोना कहूंगा।
इसलिए तुम्हें मेरी बातों में बहुत बार विरोधाभास दिखाई पड़ें, तो जल्दी मत कर लेना, सोचना, कारण होगा कुछ।
जैसे इस सूत्र में तो मैं कोई शर्त न लगाऊंगा, बेशर्त स्वीकार करूंगा। यह तो मेरी ही बात है; यही तो मैं रोज कह रहा हूं तुमसे, कि क्षण में जीना सीखो, पल में जीना सीखो। अगर चाहते हो कि तुम्हारे जीवन में आनंद के फूल खिलें, सुवास उड़े महोत्सव की, और परमात्मा तुम्हें घेर कर तुम्हारे साथ मदमस्त हो उठे, तो इतना ही करना जरूरी है। यही ध्यान की पूरी प्रक्रिया है। अतीत से अपने को छुड़ा लो। और अतीत ने तुमको नहीं पकड़ा है; तुमने ही अतीत को पकड़ा है। इसलिए जब चाहो तब छोड़ दे सकते हो। और वर्तमान मौजूद है, कहीं खोजने जाना नहीं है। और भविष्य है ही नहीं; छोड़ने में क्या अड़चन है!
लेकिन बड़े अजीब लोग हैं। जो नहीं है, उसको भी छोड़ने में मुश्किल होती है! मुट्ठी खाली है, मगर उसको खोलने में डर लगता है कि कहीं खाली दिखाई न पड़ जाए! बांधे रहो, तो कम से कम भरोसा तो बना रहता है कि कुछ होगा, तभी तो बांधे हुए हैं! लोग अपनी मुट्ठी भी खोलने में डरते हैं कि कहीं खाली दिखाई न पड़ जाए! मगर तुम्हारी मुट्ठी है, तुम्हें पता ही है कि खाली है; खोलो या न खोलो।
भविष्य है नहीं; छोड़ने का सवाल नहीं। अतीत जा चुका है; छोड़ने का सवाल नहीं, छूट ही चुका है। जो है, उसे तुम छोड़ना भी चाहो तो छोड़ नहीं सकते हो। मगर कैसा उपद्रव है कि नहीं के साथ उलझे हो और है से चूक रहे हो। और जो है, वह परमात्मा का ही दूसरा नाम है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, शतपथ ब्राह्मण में यह सूत्र आता हैः सत्यं वै च्रुः सत्यं हि प्रजापतिः। अर्थात च्रु सत्य है और सत्य ही प्रजापति है।
हमें इस सूत्र का अभिप्रेत समझाने की कृपा करें।

आनंद!

सत्यं वै च्रुः। सत्य कोई वस्तु नहीं है; सत्य दृष्टि है; देखने का एक ढंग है--एक निर्मल ढंग, निर्दोष ढंग। एक ऐसी आंख जिस पर कोई पर्दा न हो; एक ऐसी आंख जिस पर कोई धुआं न हो; एक ऐसी आंख जो निर्विचार हो।
कोई हिंदू है, तो फिर उसकी आंख सत्य नहीं हो सकती। कोई मुसलमान है, तो उसकी आंख सत्य नहीं हो सकती। कोई ईसाई है, तो उसकी आंख सत्य नहीं हो सकती। अगर आंख को सत्य करना हो, तो ईसाई होना, हिंदू होना, मुसलमान होना हटा कर रख देना होगा। आंख निर्मल होनी चाहिए, पक्षपातशून्य होनी चाहिए, पूर्वाग्रहों से मुक्त होनी चाहिए।
लेकिन लोग अपने विश्वासों से भरे हैं। और उन्हीं विश्वासों के माध्यम
से देखने की कोशिश करते हैं। और जब तुम अपने विश्वास के माध्यम से देखने की कोशिश करते हो, तभी सब असत्य हो जाता है। तब तुम वही देख लेते हो, जो तुम देखना चाहते हो; वह नहीं, जो है। और देखना है उसे, जो है। सबसे बड़ी कठिनाई जीवन की, सबसे बड़ी मुसीबत, कि हम पैदा होने के साथ ही विकृत होने की प्रक्रिया में सम्मिलित कर दिए जाते हैं। हमारी आंखों पर पर्दे पर पर्दे, पर्तों पर पर्तें चढ़ा दी जाती हैं।
अब अगर जैन कृष्ण के मंदिर में जाता है, तो झुकने का सवाल ही नहीं उठता, प्रश्न ही नहीं उठता। कृष्ण में उसे कोई भी महिमा दिखाई नहीं पड़ती। उसकी अपनी धारणाएं इतनी मजबूत हैं कि कृष्ण में तो उसको निपट भोगी दिखाई पड़ता है।
कृष्ण खड़े हैं, बांसुरी बजा रहे हैं। मोर-मुकुट बांधे हुए हैं। पीतांबर वस्त्र पहने हुए हैं। आभूषण पहने हुए हैं। रुक्मिणी की प्रतिमा भी साथ में है, कि राधा की। यह देख कर ही जैन के मन में तत्क्षण सवाल उठता है, ये कैसे भगवान? भगवान तो वीतराग होना चाहिए! वह उसकी धारणा है, वीतराग। उसे तो राग के बाहर, पार होना चाहिए। यह तो रागी का रूप हुआ। यह बांसुरी, यह मोर-मुकुट, ये सुंदर वस्त्र, यह स्त्री का पास खड़े होना, यह तो राग का लक्षण है!
हां, महावीर को देखता है, तो वह गदगद हो जाता है। नग्न खड़े हैं। न कोई स्त्री पास है; न वस्त्र पास हैं। मोर-मुकुट तो दूर, बांसुरी तो दूर, भिक्षापात्र भी साथ में नहीं है। महावीर तो करपात्री थे; हाथ से ही भोजन लेते थे। हाथ की अंजुली बना कर जो बन जाता हाथ में, बस वही उनका भोजन था, वही भोजन-पात्र था! भिक्षापात्र भी नहीं है। ऐसे वीतरागी को नमस्कार उठता है।
लेकिन किसी और को, हिंदू को महावीर को देख कर थोड़ी हैरानी होती है कि
ये कैसे भगवान? ये कैसे ईश्वर? ईश्वर शब्द का अर्थ ही होता है, ऐश्वर्यवान। ईश्वर शब्द बनता ही ऐश्वर्य से है। सारा ऐश्वर्य जिसका है, वही तो ईश्वर! ये नंग-धड़ंग खड़े हैं, ये कैसे ईश्वर? इनके पास कुछ भी नहीं है। और यह नंगा खड़ा होना उसे अशोभन लगता है। उसे वीतरागता नहीं दिखाई पड़ती। उसे दिखाई पड़ता है, यह क्या मामला है! अरे, कम से कम लोक-लाज तो रखो! स्त्री-बच्चे भी आते हैं। नंग-धड़ंग खड़े हो! एक लंगोटी तो कम से कम लगा लेते! लंगोटी लगा लेते तो क्या बिगड़ जाता!
दिगंबर जैन मुनि बैठता इस ढंग से... । तुमने दिगंबर जैन मुनियों के चित्र देखे? चित्र भी इस ढंग के बनाए जाते हैं। महावीर तक के चित्र जैनियों के घर में ऐसे होते हैं।
मैं एक जैन घर में मेहमान था। बड़ा सुंदर चित्र महावीर का लगा था। मैंने उनसे कहा, चित्र तो सुंदर है, मगर चालबाजी से भरा है!
उन्होंने कहा, क्या चालबाजी? इस चित्र को जो भी कहता है, वही सुंदर कहता है! आप पहले आदमी हैं कि सुंदर भी कह रहे हैं और चालबाजी से भरा भी! मैंने कहा, चालबाजी इसलिए कि महावीर को तो सुंदर बनाया है, मगर एक झाड़
की आड़ में खड़ा किया है। और झाड़ की शाखा इस तरह से उनके पास से गुजारी है कि उनका नग्नपन न दिखाई पड़े। तो, मैंने कहा, लंगोटी ही लगा देते! इतना बड़ा झाड़ लिए फिरो! तो लंगोटी में क्या बुरा है? और हमेशा ऐसे झाड़ की आड़ में ही खड़े रहो, यह भी एक झंझट है! और कहीं झाड़ मिले न मिले! और इसके पहले कि झाड़ मिले, कोई दूसरा मिल जाए! और ऐसा झाड़ लेकर चलना हो, तो फिर तो ट्रक पर समझो कि एक

झाड़ खड़ा किए हुए हैं, जैसे ट्रक पर झांकियां निकलती हैं, ऐसे महावीर स्वामी खड़े हैं और झाड़ की आड़ में! मगर इतना उपद्रव!
उन्होंने कहा, यह बात मुझे कभी ख्याल न आई। बात तो सच है कि झाड़ इस ढंग
से बनाया है कि बस उनका नग्नपन भर छिप गया है!
जैन मुनि को इस तरह से बिठालते हैं, फोटो लेते वक्त, पालथी मार कर! और शास्त्र रख देते हैं उसकी पालथी में! वे शास्त्र पढ़ रहे हैं! जैसे ये चौबीस घंटे कोई और दूसरा काम करते हैं कि नहीं, पता नहीं! नहाते-धोते भी हैं कि शास्त्र ही पढ़ते रहते हैं! मगर जब भी तस्वीर देखो, तो शास्त्र ही पढ़ रहे हैं! वह शास्त्र पढ़वाना पड़ता है। और शास्त्र भी छोटा नहीं, काफी बड़ा शास्त्र पढ़वाना पड़ता है, जिसमें उनका सब ढंक जाए!
अब इतना ही ढांकना है, तो लंगोटी में क्या बुराई है?
जैन मुनि चलता भी है रास्ते पर--दिगंबर जैन मुनि--तो उनके भक्त चारों तरफ से उनको घेर कर चलते हैं। अंग्रेजों के जमाने में तो कुछ नगरों में उनके चलने पर निषेध था, पहले पुलिस से स्वीकृति लेनी पड़ती थी। और जब वे चलते भी, तो उनके आस-पास जैनियों को मंडल बना कर चलना पड़ता था कि उनकी नग्नता किसी को दिखाई न पड़े। और जैन मुनि भी जब चलता है, तो वह पिच्छी रखता है। वह पिच्छी इस ढंग से रखता है... ।
क्या मतलब? क्या प्रयोजन? छोटी सी बात के लिए इतनी बड़ी पिच्छी! जो काम तिग्गी से हो जाए, उसके लिए पिच्छी की क्या जरूरत? मगर खुद के पास भी तो वही बुद्धि है और चारों तरफ औरों के पास भी वही बुद्धि है। वह नजर उनकी वहीं अटकती है कि अरे, यह नंगा घूम रहा है आदमी! यह बात ठीक नहीं! किसी को यह भाव पैदा नहीं होता कि ये वीतराग हैं, इनको सम्मान दो! इनके चरणों में गिरो!
तुम्हारी धारणा तुम्हारी आंख को आरोपित कर लेती है, आच्छादित कर लेती है।
पत्नी चंदूलाल से कह रही थी, तुम मर्द लोग कितने लाचार होते हो जी! हम औरतें न रहें, तो तुम्हारे बटन कौन टांकेगा?
चंदूलाल बोले, बंटन टांकने की फिर जरूरत ही कहां रह जाएगी! देवियो, तुम्हारे ही कारण तो ये बटनों को टंकवाना पड़ रहा है, नहीं तो बिना ही बटन टांके हुए घूमेंगे न!
मोटर की कतार का तथा सिपाही के खड़े हाथ की ओर ध्यान न देकर एक व्यक्ति
ने बड़ी शांति से चौराहा पार करना आरंभ किया था। ब्रेकों की आवाज गूंज उठी। ट्रैफिक पुलिस का व्यक्ति क्रोध से भरा हुआ उस व्यक्ति के पास आया और बोला, क्या आपको मेरा खड़ा हाथ दिखाई नहीं देता था?
खड़े हाथ का मतलब मैं नहीं जानूंगा? वह व्यक्ति चिल्ला कर बोला। पचास साल से ज्यादा हो गए मुझे बच्चों को पढ़ाते हुए। अरे, लघुशंका करने जाना है, जाओ!
अपनी-अपनी दृष्टि है! अब वह बेचारा पचास साल से स्कूल में पढ़ा रहा है; बच्चे हाथ खड़ा करते हैं; मतलब लघुशंका! अब पुलिस वाला हाथ खड़ा किए हुए है। तुमको करना है लघुशंका, करो! इसमें मुझे क्या लेना-देना है!
उस बेचारे ने ठीक कहा, कि पचास साल स्कूल में पढ़ाने के बाद मुझे पता नहीं होगा कि खड़े हाथ का क्या मतलब होता है! जरूरत क्या है खड़ा हाथ करने की? तुमको लघुशंका करनी है, करो! मैं कोई रोक रहा हूं!
एक दृष्टि तय हो जाती है, फिर वही दिखाई पड़ती है।
लड़की का बाप अपने होने वाले दामाद को अपने परिवार का अलबम दिखा रहा था। उस खानदान के पचासों चित्र देखने के बाद एक मजबूत काठी के बूढ़े का चित्र सामने आया। लड़की के बाप ने बड़े गर्व से कहा, ये हमारे हैं आदिपुरुष, इन्होंने ही हमारे खानदान की स्थापना की।
ये क्या थे?
बताया न! इन्होंने ही हमारे खानदान की बुनियाद डाली!
दामाद ने पूछा, जी, वह तो मैं समझा। मेरा मतलब है कि दिन के वक्त में ये क्या करते थे? खानदान की स्थापना तो रात में करते होंगे, मगर दिन में? सिर्फ खानदान की स्थापना ही करते थे! कोई धंधा वगैरह नहीं करते थे!
लोगों के प्रश्न भी उनकी दृष्टियों से उठते हैं!

ढब्बूजी पहली बार दिल्ली जा रहे थे। उनके मित्र चंदूलाल ने उन्हें कहा कि मित्र ख्याल रखना कि दिल्ली के लोग बड़े चालबाज होते हैं। वहां के दुकानदार ग्राहकों की आंखों में धूल झोंकने में बड़े माहिर होते हैं। हर चीज की कीमत दोगुनी बताते हैं। तो कोई भी चीज खरीदने के पहले मोल-भाव करना न भूलना।
ढब्बूजी एक छाते की दुकान पर छाता खरीदने के लिए पहुंचे। छाते के दाम पूछे, तो दुकानदार ने कहा कि बीस रुपए होंगे श्रीमानजी।
ढब्बूजी को फौरन चंदूलाल की सीख याद आई। वे बोले कि मैं तो अधिक से अधिक बस दस रुपए इस छाते के दे सकता हूं। इससे एक पाई ज्यादा नहीं।
दुकानदार बोला, अच्छा ऐसा करिए, आप पंद्रह रुपए दे दीजिए।
ढब्बूजी बोले, अब तो मैं साढ़े सात रुपए ही दूंगा!
दुकानदार बोला, देखो, अभी तुमने दस रुपए कहा था। चलो, दस रुपए ही निकालो।
ढब्बूजी को लगा कि दुकानदार तो बड़ा चालबाज है! वे बोले, अब तो मैं पांच रुपए में ही खरीदूंगा। इससे एक पैसा भी ज्यादा नहीं!
दुकानदार इस मोल-भाव से झल्ला गया और बोला कि ऐसा करो कि मुफ्त में ही
ले जाओ!
ढब्बूजी बोले, अगर मुफ्त में दे रहे हो, तो मैं दो छाते लूंगा, एक नहीं! तुमने मुझे समझा क्या है! अरे, मैं भी तैयार होकर आया हूं। बिल्कुल आंखों में धूल झोंक रहे हो! एक छाता मुफ्त में पकड़ा रहे हो! दो लूंगा, दो। इससे एक कम नहीं लूंगा।
यह शतपथ ब्राह्मण का सूत्रः "सत्यं वै च्रुः।"
तुम्हारे देखने के ढंग में सत्य है--या असत्य। सब तुम्हारे देखने के ढंग पर निर्भर है। अगर आंखें पक्षपात से भरी हैं, तो तुम जो देखोगे वह असत्य।
फिर तुम्हें याद दिला दूं, सत्य या असत्य कोई बाहर निर्णीत नहीं होते हैं; तुम्हारे भीतर निर्णय होता है। बाहर तो वही है जो है। लेकिन तुम्हें सत्य मालूम होगा, अगर आंख निर्मल है। और अगर आंख दूषित है, जैसे पीलिया के मरीज को सब पीला दिखाई पड़ने लगे, ऐसे ही अगर तुम्हारी आंख ने कुछ पहले ही तय कर रखा है... । और जिस आंख ने कुछ तय कर रखा है, वह अंधी है।
अंधा मैं उस आदमी को कहता हूं, जिसकी आंख पक्षपातों से भरी है। और आंख वाला उस आदमी को, जिसकी आंख पक्षपातमुक्त है।
"सत्यं वै च्रुः।"
च्रु सत्य है। असली बात आंख की है, दृष्टि की है--सृष्टि की नहीं। सृष्टि तो जैसी है वैसी है। मगर देखने वाले अलग-अलग ढंग से देखते हैं। और जब तक तुम्हारा कोई भी देखने का ढंग है, तब तक तुम जो भी देखोगे वह सत्य नहीं हो सकता। तुम्हारा ढंग आरोपित हो जाएगा।
ध्यान का अर्थ होता है, आंख को सब ढंगों से मुक्त कर लेना; आंख को निर्विचार, निर्विकल्प, निर्बीज कर लेना। आंख के पास अपनी कोई भावना न रह जाए। आंख के पास अपनी कोई छिपी हुई आकांक्षा भी न रह जाए। फिर तुम जो देखोगे, वह सत्य है।
"और सत्य ही प्रजापति है।"
सत्य ही परमात्मा है। सत्य से ही सारे जगत का आविर्भाव हुआ है, सत्य में ही सारा जगत जी रहा है, और सत्य में ही सारा जगत लीन होता है; उठता है, जीता है, लीन होता है।
और यह सत्य अभी तुम देख सकते हो। योगवासिष्ठ के सूत्र को और शतपथ ब्राह्मण के इस सूत्र को तुम जोड़ दो, तो तुम्हारा ध्यान का पूरा शास्त्र निर्मित हो जाएगा।
"सत्यं वै च्रुः।"
सत्य है आंख में। आंख ही सत्य है। आंख होनी चाहिए।
"सत्यं हि प्रजापतिः।"
और जिसने सत्य को जान लिया, उसने परमात्मा को जान लिया।
और यह आंख कैसे निर्मल होगी?
"भविष्यं नानुसंधत्ते।"

भविष्य का अनुसंधान न करो।
"नातीतं चिन्तयत्यसौ।"
और न अतीत की चिंता करो।
"वर्तमान निमेषं तु।"
यह जो वर्तमान का निमिष मात्र है, पल मात्र है, बस इसमें ठहर जाओ, अडिग
हो जाओ।
"हसन्नेवानुवर्तते।"
प्रमुदित हो जाओ, आह्लादित हो जाओ। नाचो! गाओ! इस वर्तमान के क्षण को मधुशाला बना लो। यह वर्तमान का क्षण तुम्हारे लिए शराब हो जाए। पीओ, बेझिझक, बिना किसी शर्त के। और तब तुम जीवन का एक नया ही रूप अनुभव करोगे। वैसा रूप जैसा कि ऋषियों ने जाना; वैसा रूप जैसा कि बुद्धों ने पहचाना; वैसा रूप जैसा कि जिनों ने जीया। क्राइस्ट और जरथुस्त्र और बुद्ध और लाओत्सु और महावीर और कृष्ण, सब एक साथ तुम्हारे लिए सही हो जाएंगे। योगवासिष्ठ और शतपथ ब्राह्मण और ईशावास्य और धम्मपद और कुरान और बाइबिल और जेन्दावेस्ता, सब एक साथ तुम्हारे भीतर लयबद्ध हो जाएंगे। तब तुम ऐसा न देखोगे कि ये अलग-अलग हैं; तब तुम्हारे लिए धर्म नहीं होंगे, सिर्फ धार्मिकता रह जाएगी।
सत्य एक है, तो धार्मिकता भी एक ही हो सकती है।
मैं संन्यास के इस प्रयोग से इन्हीं दो बातों को पूरा कर लेना चाह रहा हूंः तुम्हारी आंख निर्मल हो और तुम वर्तमान में ठहर जाओ। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू समझो। आंख निर्मल होगी, तो ही वर्तमान में ठहरोगे। वर्तमान में ठहरोगे, तो ही आंख निर्मल होगी। ये एक-दूसरे पर निर्भर हैं, परस्पर-निर्भर हैं।
जब तक यह न हो जाए, जब तक जीवन में दुख होगा, तब तक जीवन नर्क है। जैसे
ही यह हुआ कि जीवन स्वर्ग है, मोक्ष है। तब परमात्मा कहीं बाहर नहीं, तुम्हारी श्वास-श्वास में है, तुम्हारे हृदय की धड़कन-धड़कन में है।

अंतिम प्रश्नः ओशो, आपसे संन्यास लेने के बाद मेरे अंग-अंग से नृत्य फूट रहा है। किसी अज्ञात कवि का यह गीत आपको देख कर रोम-रोम में गूंजने लगता है--
मोहे आई न जग से लाज
मैं इतने जोर से नाची आज
कि घुंघरू टूट गए।
कुछ मुझमें नया जोबन भी है
कुछ प्यार का पागलपन भी है
जब लिया तुम्हारा नाम
कुछ ऐसा लचका पांव
कि घुंघरू टूट गए।
कहती है मेरी हर अंगड़ाई
मैं पिया की नींद चुरा लाई
मुझे अंग मिले परवानों के
मुझे पंख मिले अरमानों के
मैं बन के गई थी चोर
कि मेरी पायल थी कमजोर
कि घुंघरू टूट गए।
यह नृत्य सदा-सदा बना रहे, ऐसा आशीष चाहती हूं ओशो!

चंद्रकांता भारती!
यह घटना शुरू हो जाए, तो फिर मिटता नहीं। यह बीज फूटना शुरू हो जाए, तो फिर रुकता नहीं। असली कठिनाई बीज के टूटने की है। एक दफा बीज टूटा कि फिर विराट वृक्ष होगा।
इसी घटना की तो चर्चा शतपथ ब्राह्मण का सूत्र, योगवासिष्ठ का श्लोक,
इस नृत्य के लिए ही तो इशारे हैं।
"मोहे आई न जग से लाज

मैं इतने जोर से नाची आज
कि घुंघरू टूट गए।"
टूट ही जाएंगे घुंघरू, क्योंकि यह नाच सीमा नहीं जानता, अवरोध नहीं जानता। यह कोई कंजूस का नृत्य नहीं है। यह कोई सम्हल-सम्हल कर नाचने की बात नहीं है। यह न आंगन देखे कि टेढ़ा है, कि तिरछा है; न यह ढंग देखे; न यह कोई नृत्य के शास्त्र का हिसाब रखे कि भरतनाट्यम है, कि कथकली है। यहां सब शास्त्र टूट जाते हैं। यहां सब नियम टूट जाते हैं।
"मोहे आई न जग से लाज
मैं इतने जोर से नाची आज
कि घुंघरू टूट गए।"
टूट ही जाने चाहिए घुंघरू। घुंघरुओं को बचा-बचा कर जो नाचेगा, वह क्या खाक नाचेगा! वह तो घुंघरुओं को बचाने में ही लगा रहेगा। जो जग की लाज का हिसाब रखेगा, वह क्या खाक नाचेगा! उसके नाच में तो अहंकार बना ही रहेगा। और नाच भी क्या कोई छोटी-मोटी घटना है! बाढ़ है। जब आती है, तो सब बहा ले जाती है।
"मोहे आई न जग से लाज
मैं इतने जोर से नाची आज
कि घुंघरू टूट गए।
कुछ मुझमें नया जोबन भी है... "
होना ही चाहिए। आंख नई होती है, तो सब नया हो जाता है।
"कुछ मुझमें नया जोबन भी है
कुछ प्यार का पागलपन भी है... "
होना ही चाहिए। प्रेम हो और पागलपन न हो, असंभव! हां, पागलपन हो सकता
है और प्रेम न हो, यह बात बनती है। लेकिन प्रेम हो और पागलपन न हो, यह बात नहीं बनती। बहुत हैं पागल, जिनके जीवन में प्रेम नहीं। लेकिन ऐसा एक भी प्रेमी नहीं हुआ, जिसके जीवन में पागलपन न हो।
"कुछ मुझमें नया जोबन भी है
कुछ प्यार का पागलपन भी है
जब लिया तुम्हारा नाम
कुछ ऐसा लचका पांव
कि घुंघरू टूट गए।"
टूट ही जाने चाहिए। चंद्रकांता, बिल्कुल ठीक हो रहा है। रास्ते पर आ गई! यूं तो लोग कहेंगे, भटक गई; पांव लचक गया! मगर मैं कहूंगा कि पांव क्या लचका, पंख लग गए।
"कहती है मेरी हर अंगड़ाई
मैं पिया की नींद चुरा लाई
मुझे अंग मिले परवानों के
मुझे पंख मिले अरमानों के
मैं बन के गई थी चोर
कि मेरी पायल थी कमजोर... "
यह काम ही चोरी का है! इसलिए तो हमने भगवान को एक नाम दिया, हरि! भगवान
के बहुत से नाम हमने दिए। इस देश में जितने नाम हमने भगवान के दिए, दुनिया के किसी देश ने नहीं दिए। पूरा एक शास्त्र ही है, विष्णुसहस्रनाम। उसमें सिर्फ नामों का ही उल्लेख है। भगवान के हजार नाम। और हजार तो केवल प्रतीक है। हजार प्रतीक है अनंत का। इसलिए तो कहते हैं, जब समाधि लगती है, तो सहस्रदल कमल, हजार पंखुड़ियों वाला कमल खिलता है। हजार प्रतीक है अनंत का। उसमें सभी नाम प्यारे हैं।
एक नाम तो बहुत अदभुत है। नाम हैः ओम संन्यासकृते नमः। भगवान का एक नाम, वह जिसने संन्यास को पैदा किया। क्या गजब का नाम है! तुमने सुना, संसार को पैदा किया। मगर उसने संन्यास को भी पैदा किया।
उससे भी गजब का नाम है, हरि! हरि का अर्थ होता है चोर, हरण कर ले जो। चोर
है भगवान! माखनचोर ही नहीं; कैसे आहिस्ते से हृदय को चुरा ले जाता है, पता ही नहीं चलता!

अभी कुछ दिन पहले एक जर्मन सुंदर युवती ने संन्यास लिया। उसे मैंने नाम दिया, हरिदासी। उसको नाम समझा रहा था। बहुत भोली-भाली लड़की थी। उसे मैं नाम समझा रहा था, और जब मैंने उसे कहा कि भगवान चुपचाप हृदय चुरा लेता है, यह मतलब है हरि का। सो उसने कहा, हाय! और अपने हृदय पर हाथ रखा। मैंने कहा, अब बेकार रख रही है तू, गया! अब कहां! वहां कभी था।
उससे मैंने पूछा, अब कितने दिन रहेगी?
उसने कहा, अब क्या कहूं! अब मुझे खुद ही पता नहीं। अब सवाल यह है कि जाऊंगी कैसे! अगर हृदय गया, तो सब गया।
तू ठीक ही आई चंद्रकांता! यही आने का ढंग है।
"मैं बन के गई थी चोर
कि मेरी पायल थी कमजोर
कि घुंघरू टूट गए।"
चोर तो बन कर जाना पड़ता है। परमात्मा को भी तुम्हारे भीतर चोर बन कर जाना पड़ता है और तुमको भी परमात्मा के भीतर चोर बन कर जाना पड़ता है। मगर कितने ही सम्हल कर जाओ, घुंघरू बज जाते हैं; बज ही नहीं जाते, टूट भी जाते हैं! शोरगुल हो जाता है। बात जग-जाहिर हो जाती है। कितने ही आहिस्ता जाओ, कितने ही चुपचाप जाओ, कितना ही छुपाओ, छुपाए भी यह बात छुपती नहीं। चंद्रकांता! ठीक हो रहा है। पैर लचक गया, घुंघरू टूट गए, पंख लग गए अरमानों को--तू चल पड़ी मार्ग पर। आंख निर्मल होती जाएगी। अतीत खो जाएगा, भविष्य खो जाएगा, यह वर्तमान का अपूर्व क्षण ही रह जाएगा। और उसी क्षण-- अतीत जहां नहीं, भविष्य जहां नहीं--तू भी गई! अभी पायल के घुंघरू टूटे हैं, जल्दी ही तू भी टूट जाएगी। यह मैं-भाव भी टूट जाएगा। और जहां मैं गया, वहां परमात्मा है।
जब तक मैं है, तब तक परमात्मा नहीं; और जब मैं नहीं है, तब परमात्मा है।
आज इतना ही।

अनहद में बिसराम
पांचवां प्रवचन

अंतःकरण का अतिक्रमण

पहला प्रश्नः ओशो,
यं यं लोकं मनसा संविभाति
विशुद्धसत्वः कामयते यांश्च कामान्।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामां--
स्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चवेद भूतिकामः।।
जिसका अंतःकरण शुद्ध है, ऐसा आत्मवेत्ता, मन से जिस-जिस लोक की भावना करता है और जिन-जिन कामनाओं की कामना करता है, वह उस-उस लोक को और उन-उन कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। इसलिए जो अपना कल्याण चाहता है, उसे आत्मवेत्ता की अर्चना करनी चाहिए।
ओशो, मुंडकोपनिषद के इस सूत्र का अभिप्राय समझाने की अनुकंपा करें।

सहजानंद!
इसके पहले कि हम सूत्र के विश्लेषण में उतरें, कुछ आधारभूत बातें समझ लेनी उपयोगी हैं।
पहलीः जब तक कामना है, तब तक आत्मा शुद्ध नहीं। आत्मा की अशुद्धि का
और अर्थ ही क्या होता है? कामना की कीचड़! फिर कामना धन की हो, पद की हो, प्रतिष्ठा की हो; मोक्ष की हो, निर्वाण की हो, ब्रह्मज्ञान की हो; इससे भेद नहीं पड़ता। कीचड़ कीचड़ है। जब तक कामना है, तब तक कैसी शुद्धि? जहां कामना है, वहीं संसार है। संसार कामना का विस्तार है। कामना शून्य हुई, संसार समाप्त हुआ। कामना संसार है, तो कामना का शून्य हो जाना संन्यास है। और जहां कामना के बीज तक दग्ध हो गए हों, वहीं सत्वशुद्धि है।
इसलिए यह सूत्र बुनियादी रूप से गलत है।
दूसरी बातः जब आत्मा शुद्ध हो गई, तो फिर मन कहां! यह तो बात बड़ी विक्षिप्तता की हो गई। यह तो यूं हुआ कि एक तरफ तो कहा कि झील शांत है और दूसरी तरफ झील में उठते तूफानों, झंझावातों और लहरों की चर्चा छेड़ दी! झील शांत है, मौन है, दर्पण की तरह है; न कोई लहरें हैं, न कोई तरंग। तो फिर कैसा तूफान? कैसी आंधी? कैसे झंझावात?
जहां आत्मा शुद्ध है, वहां मन असंभव है।
मन का अर्थ क्या होता है? आत्मा का अथिर होना; आत्मा का डांवाडोल होना; आत्मा का कंपित होना; आत्मा का लहरों से भरा होना। विचार की लहरें; स्मृतियों की लहरें; कल्पना की लहरें--जहां लहरों पर लहरें आ रही हैं, उसका नाम मन है। आत्मा का नाम ही मन है। आत्मा जब रुग्ण है, तो उसका नाम मन है। और जहां रोग गया, वहां मन गया। आत्मा जब स्वस्थ है, तब सत्वशुद्धि होती है। इसलिए एक तरफ तो कहना कि जिसकी आत्मा परम शुद्धि को उपलब्ध हो गई है,
वह मन से जो भी चाहेगा उसे पा लेगा, निपट मूढ़तापूर्ण है।
यह सूत्र किसी विक्षिप्त व्यक्ति ने लिखा होगा। उपनिषद में हो, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। मैं शास्त्रों को देख कर नहीं चलता हूं। मेरी कसौटी पर उतरनी चाहिए बात। मेरी कसौटी मेरे अनुभव पर निर्भर है, किसी शास्त्र पर नहीं। तो मुंडकोपनिषद हो या कोई और उपनिषद हो, वेद हो, कि कुरान हो, कि बाइबिल हो, इन बड़े-बड़े नामों से मुझे रत्ती भर भी अंतर नहीं पड़ता। मैं वही कहूंगा, जो मेरी अंतः-अनुभूति की कसौटी पर सही उतरता है।
लेकिन सदियों से हमारी आदत गलत हो गई है। मुंडकोपनिषद में है, इसलिए ठीक होना ही चाहिए! उपनिषद में कहीं गलत बात हो सकती है?
गलत बात कहीं भी हो सकती है, क्योंकि सब बातें आदमी लिखते हैं। और उपनिषद या वेद तो बहुत लोगों ने लिखे हैं। एक-एक उपनिषद में बहुत से व्यक्तियों के वक्तव्य हैं।
फिर अगर एक उपनिषद में एक ही व्यक्ति के वक्तव्य हों, तो भी ध्यान रखना, यह भी हो सकता है, उसके कुछ सूत्र उस समय के हों जब उसने जाना न था और

कुछ सूत्र उस समय के हों जब उसने जाना। और स्वयं उसने लिखा न हो; किसी शिष्य ने, जो-जो सुना है, वह संगृहीत कर लिया हो।
लेकिन मुझे इससे अंतर नहीं पड़ता। लोगों को तकलीफ होती है! कल ही किसी व्यक्ति ने पूछा है कि कभी आप किसी शास्त्र के पक्ष में बोल देते हैं और कभी उसी शास्त्र के विपक्ष में बोल देते हैं!
मैं भी क्या करूं; तुम्हारे शास्त्रों का कसूर है। तुम्हारे शास्त्र विरोधाभासों से भरे हैं। उनके विरोधाभासों पर लीपापोती करने के लिए मैंने कुछ ठेका नहीं लिया। मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं है। मैं तो जैसा मुझे दिखाई पड़ता है, वही कहूंगा। तुम्हारे शास्त्र का मेल पड़ जाए, यह तुम्हारे शास्त्र का सौभाग्य। मेल न पड़े, यह तुम्हारे शास्त्र का दुर्भाग्य। इसमें मेरा कुछ लेना-देना नहीं।
यह सूत्र तो बिल्कुल ही विक्षिप्त है। गलत ही नहीं, गलत से भी गया- बीता है!
"यं यं लोकं मनसा संविभाति
विशुद्धसत्वः कामयते यांश्च कामान्।"
"जिसका अंतःकरण शुद्ध है, ऐसा आत्मवेत्ता मन से जिस-जिस लोक की कामना करता है और जिन-जिन कामनाओं की कामना करता है, वह उस-उस लोक को और उन-उन कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।"
जिसने स्वयं को जाना, उसे क्या कुछ पाने को शेष रह जाता है? जिसने स्वयं को पा लिया, अब क्या इसके ऊपर भी कोई संपदा है? कोई साम्राज्य है? क्या इसके ऊपर भी कोई और गति है? अब क्या चाहेगा वह? अब तो जो चाहेगा, वही पतन होगा। जैसे कोई गौरीशंकर पर विराजमान हो गया, अब और कहां जाएगा? अब तो हर गति पतन होगी; अब तो हर कदम नीचे की तरफ होगा। अब तो हर यात्रा ढलान की होगी।
आत्मवेत्ता तो वह है, जिसने चेतना के परम शिखर को उपलब्ध कर लिया है।
और ख्याल रखना, जो मूल शब्द है, विशुद्धसत्वः, वह बड़ा बहुमूल्य है। उसका इतना ही अर्थ नहीं होता कि जिसका अंतःकरण शुद्ध है। अंतःकरण तो दो कौड़ी की चीज है। अंतःकरण को बहुत कीमत मत देना।
अंतःकरण आत्मा नहीं है, इस भेद को खूब ख्याल रखना। हालांकि समाज की सारी शिक्षा इस भेद को मिटाने की चेष्टा करती है। अंतःकरण यानी आत्मा, ऐसा शब्दकोश कहेंगे, भाषाकार कहेंगे, व्याख्याता कहेंगे, पंडित-पुरोहित कहेंगे। लेकिन यह बात बुनियादी रूप से झूठ है। अंतःकरण सच पूछो तो अंतःकरण भी नहीं होता, आत्मा होनी तो बहुत दूर। क्योंकि अंतःकरण बाहर से पैदा किया जाता है, भीतर तो होता ही नहीं। अंतःकरण तो समाज पैदा करता है। यह तो समाज की व्यवस्था है, व्यक्ति को गुलाम बनाए रखने के लिए।
जैसे समाज बाहर इंतजाम करता है पुलिस वाले का, और मजिस्ट्रेट का, अदालत का, कानून का, विधान का, ताकि तुम्हें बाहर से बांध ले, तुम बाहर के डर से कुछ भूल-चूक न कर सको। लेकिन आदमी होशियार है। तुम लाख कानून बनाओ, तुम लाख व्यवस्था बनाओ, हर व्यवस्था में से छिद्र निकाल लेगा। आखिर आदमी ही तो बनाएगा न कानून! तो आदमी कानून से तरकीबें भी निकाल लेगा।
आखिर सारे वकील करते ही क्या हैं! उनका काम ही क्या है! उनका काम ही यही है कि कानून से कानून के विपरीत जाने की व्यवस्था खोजना। इसलिए तुम कोई भी मुकदमा लेकर वकील के पास जाओ, वह कहेगा, बेफिक्र रहो; जीत निश्चित है। खर्च तो बहुत होगा, मगर जीत निश्चित है।
मुल्ला नसरुद्दीन वकील के पास गया था। सारा मामला अपना सुनाया। वकील
ने कहा, बिल्कुल मत घबड़ाओ। मामला तो कठिन है, पैसा तो खर्च होगा, मगर जीत निश्चित है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि आपको पक्का भरोसा है जीत निश्चित है?
उस वकील ने कहा, छाती पर हाथ रख कर कहता हूं, परमात्मा को गवाह रख कर कहता हूं कि जीत निश्चित है। जीवन भर हो गया वकालत करते, इतना अनुभव नहीं मुझे? ऐसे कई मुकदमे जिता चुका हूं!
मुल्ला तो उठ खड़ा हुआ, चलने लगा। तो वकील ने कहा, कहां जा रहे हो?
मुल्ला ने कहा, तो फिर बात खतम हो गई।
उसने कहा, तो मुकदमा नहीं लड़ना है?

मुल्ला ने कहा, मैंने तुम्हें अपने विरोधी के तरफ का मामला बताया था। तुम कह रहे हो कि जीत बिल्कुल निश्चित है, तो अब मामला क्या करना है? फिर झगड़े में सार ही क्या है? तो हम आपस में ही समझौता किए लेते हैं। जब जीत निश्चित ही है उसकी... !
तब वकील को पता चला कि यह पहला मौका है, जिसमें वह धोखा खा गया। यह आदमी अपने विरोधी का मामला बता रहा था उसको!
वकील की सारी व्यवस्था यही है कि कानून से तरकीबें खोजे। जिन लोगों
ने कानून बनाया है, वे वे ही लोग हैं जिनके हाथ में लाठी है। जिसके हाथ में लाठी उसकी भैंस! जिनके न्यस्त स्वार्थ हैं, वे कानून बनाते हैं।
लेकिन उन्हें यह बात जाहिर है कि बाहर के कानून आदमी की पूरी आत्मा पर जंजीरें नहीं डाल सकते। हो सकता है उसके हाथों में जंजीरें पड़ जाएं और पैरों में बेड़ियां पड़ जाएं, मगर आदमी भीतर तो स्वतंत्र रहेगा। भीतर भी जंजीरें पहनानी जरूरी हैं, तभी आदमी पूरा गुलाम होगा। और समाज के न्यस्त स्वार्थ चाहते हैं कि आदमी पूरा गुलाम हो, शत प्रतिशत गुलाम हो, ताकि बगावत की कोई संभावना ही न रह जाए, ताकि वह इनकार न करे, ताकि वह कभी आज्ञा का उल्लंघन न करे। इस व्यवस्था को जुटाने के लिए उन्होंने अंतःकरण पैदा किया है।
अंतःकरण सामाजिक आविष्कार है। बच्चे के पास कोई अंतःकरण नहीं होता। अंतःकरण हम धीरे-धीरे उसमें पैदा करते हैं। और हरेक धर्म का, हरेक जाति का, हरेक देश का अलग-अलग अंतःकरण होता है।
जैसे एक जैन को अगर तुम मांस परोस दो, तो उसका अंतःकरण क्या कहेगा?
असंभव है कि वह मांस का आहार कर सके, क्योंकि बचपन से ही मांसाहार गलत है, महापाप है, इस भांति की धारणा उसके भीतर डाली गई है, संस्कारित की गई है। यह संस्कार है। यह गहरे पहुंचा दिया गया है। इसकी इतनी पुनरुक्ति की गई है! पुनरुक्ति ही व्यवस्था है अंतःकरण को पैदा करने की। बचपन से ही दोहराया गया है, हजार तरह से दोहराया गया है, और डर भी दिखाए गए हैं। अगर मांसाहार किया, तो नर्क में सड़ोगे। अगर मांसाहार न किया, तो स्वर्ग के आनंद भोगोगे। कैसे-कैसे भोग स्वर्ग के! कैसे-कैसे प्रलोभन! और कैसे-कैसे भय नर्क के! भय और लोभ, दोनों के बीच बच्चे को कसा गया है। और रोज दोहराया गया है। कहानियां दोहराई गई हैं; पुराण दोहराए गए हैं; मंदिरों में ले जाया गया है। पंडित-पुजारियों, साधु-संतों के पास बिठाया गया है।
बहुत बार दोहराने से संस्कारित हो गया है। आज सामने उसके मांस रख दो,
बस मुश्किल में पड़ जाएगा। वमन हो जाएगा। मांसाहार करना तो असंभव है। उसका सारा अंतःकरण कहेगा, पाप है! महापाप है! वह देख भी न सकेगा। छू भी न सकेगा। लेकिन सारी दुनिया तो मांसाहारी है। निन्यानबे प्रतिशत लोग तो दुनिया के मांसाहारी हैं। और ऐसा ही नहीं है कि भारत के बाहर ही मांसाहारी हैं, भारत में भी अधिकतम लोग तो मांसाहारी हैं। थोड़े से जैनों को छोड़ दो; थोड़े से ब्राह्मणों को छोड़ दो। सारे ब्राह्मणों को भी मत छोड़ देना। क्योंकि कश्मीरी ब्राह्मण तो मांसाहार करता है। इसलिए पंडित जवाहरलाल नेहरू को मांसाहार करने में कोई अंतःकरण की बाधा नहीं पड़ती थी। कश्मीरी ब्राह्मण! बंगाली ब्राह्मण तो मछली खाता है। तो रामकृष्ण को मछली खाने में कोई बाधा नहीं थी, कोई अंतःकरण बाधा नहीं डालता था। तो सारे ब्राह्मण भी मत गिन लेना गैर-मांसाहारियों में। और जैनियों की संख्या कितनी है? यही कोई पैंतीस लाख। और थोड़े से ब्राह्मण उत्तर भारत के। इनको छोड़ कर सारी दुनिया मांसाहारी है। न तो किसी के अंतःकरण में कोई अड़चन आती; न किसी के भीतर कोई सवाल उठता।
अगर यह बात सच में ही अंतःकरण की होती, तो हरेक के भीतर आवाज आनी चाहिए थी! अगर यह परमात्मा की आवाज होती, आत्मा की वाणी होती, तो प्रत्येक के भीतर उठनी चाहिए थी! और मजा तो यूं है कि ऐसी-ऐसी बातों में भी अंतःकरण उठ आएगा, जिनके संबंध में तुमने कभी कल्पना भी न की हो! सोचा भी न हो!
मेरे परिवार में एक बार एक क्वेकर ईसाई फकीर मेहमान हुआ। तो मैंने उससे पूछा सुबह कि चाय लोगे, काफी लोगे, दूध लोगे, क्या लोगे? उसने कहा, दूध! आप और दूध पीते हैं?

उसने मुझसे ऐसे पूछा, जैसे कि कोई महापाप करने के लिए मैंने उसे निमंत्रण दिया है! तब तक मुझे पता ही न था कि क्वेकर दूध को पीना पाप समझते हैं। उनके अंतःकरण के खिलाफ है। यहां तो दूध सबसे सात्विक आहार है इस देश में, ऋषि-मुनियों का आहार! यहां तो जो आदमी दूध ही दूध पीता है, उसको तो लोग महात्मा कहते हैं। मैं रायपुर में कोई छह-आठ महीने रहा, तो वहां तो एक पूरा का पूरा आश्रम, दूधाधारी आश्रम! वहां सिर्फ दूध ही पीने वाले साधु-संत हैं। और उनकी महत्ता यही है कि वे सिर्फ दूध पीते हैं!
तो मैंने कहा कि दूध पीने में कोई अड़चन? आपको तकलीफ है?
उन्होंने कहा, तकलीफ की बात कर रहे हो! अरे, दूध और खून में भेद ही क्या? जैसे खून शरीर से आता है, वैसे ही दूध भी शरीर से ही आता है।
इसीलिए तो दूध पीने से खून बढ़ता है, चेहरे पर सुर्खी आ जाती है। दूध रक्त जैसा ही है। बात में तो बल है। शरीर से ही निकलता है; शरीर का ही अंग है। तो शरीर के अंग को--चाहे वह मांस हो, चाहे दूध हो, चाहे रक्त हो--एक ही कोटि में गिना जाएगा।
उन्होंने कहा, दूध तो बहुत असात्विक आहार है!
इस देश में लोग दूध को सात्विक आहार मानते रहे। उनका अंतःकरण कहता है, बिल्कुल सात्विक आहार है। क्वेकर ईसाई मानते हैं, बिल्कुल असात्विक आहार है। उनका अंतःकरण उन्हें दूध नहीं पीने देता। दूध देख कर ही उनको बेचैनी हो जाएगी।
कौन सी चीज अंतःकरण है? अगर अंतःकरण जैसी कोई बात होती, तो सभी के भीतर समान होनी चाहिए थी। लेकिन सभी के भीतर समान नहीं है। औरों की तो बात छोड़ दो, दिगंबर और श्वेतांबर जैन, एक ही संप्रदाय, कोई खास भेद नहीं। एक ही मत, एक ही जीवन-दर्शन। कुछ छोटी सी टुच्ची बातों के फासले हैं। मगर उनमें भी फर्क है।
जब पर्युषण के दिन आते हैं, जैनों के धार्मिक उत्सव के दिन, तो दिगंबर जैन हरी सब्जियां नहीं खाते। मैं तो दिगंबर परिवार में पैदा हुआ, तो बचपन से मैंने यही जाना कि हरी सब्जी पर्युषण के समय में खाना पाप है। कोई बीस वर्ष की उम्र में पहली दफा एक श्वेतांबर जैन परिवार में मैं ठहरा। तो मैं चकित हुआ यह देख कर कि पर्युषण के दिन हैं, लेकिन केले मजे से खाए जा रहे हैं! तो मैंने पूछा, यह मामला क्या है? हरी चीज खाने का तो विरोध है! उन्होंने कहा, यह हरा है ही कहां? यह केला तो पीला होता है।
हरे का मतलब देखा! जैन शास्त्र कहते हैं, हरी चीज। हरी चीज से उनका मतलब है ताजी, अभी तोड़ी गई। मगर यहां हरे का मतलब ही और है। केला तो पीला! कच्चा केला मत खाओ, जो हरा दिखाई पड़ता है। पका हुआ केला खाने में तो कोई अड़चन नहीं है। वह तो पीला है। इससे कोई अड़चन नहीं पैदा हो रही है। अंतःकरण बाहर से पैदा किया जाता है।
ईसाई शराब पीने में कोई अड़चन नहीं पाते। खुद जीसस शराब पीते थे। शराब पीने में कोई अड़चन न थी, कोई बुराई न थी। किसी ईसाई को कोई बुराई नहीं है। लेकिन भारतीय मानस को बड़ी पीड़ा होती है शराब की बात ही सुन कर। यहां मोरारजी देसाई स्वमूत्र पी लें, मगर शराब नहीं पी सकते! उनके अंतःकरण को कोई अड़चन नहीं आती स्वमूत्र पीने में। आनी भी नहीं चाहिए। क्योंकि भारतीय मानस गौ-मूत्र तो जमानों से पीता रहा है। अरे, जब गौ-मूत्र पीते रहे, तो यह तो स्वावलंबन है!
गौ-मूत्र ही नहीं पीते रहे भारतीय, हिंदू तो पंचामृत का सेवन करते हैं। पंचामृत का अर्थ होता है गोबर, गौ-मूत्र, दूध, दही, घी, ये पांचों चीजों को मिला कर, घोंट कर पी गए, तो पंचामृत! पंचामृत पीने वाले देश में, अभी मोरारजी देसाई ने तो एक ही अमृत खोजा है। अभी तुम देखना, कोई आएगा और बड़ा महात्मा, जो आदमी में से पंचामृत निकालेगा। और वह भी हमें स्वीकार हो जाएगा। उसमें भी हमें कोई अड़चन न होगी।
अंतःकरण तो आत्मा नहीं है। अंतःकरण तो बाहर का आरोपण है। जिसे आत्मा
को पाना हो, उसे अंतःकरण से मुक्त होना पड़ता है। उसे न तो चाहिए ईसाई का अंतःकरण, न हिंदू का, न मुसलमान का, न जैन का, न बौद्ध का। उसे अंतःकरण चाहिए ही नहीं। बाहर से जो भी उसके ऊपर थोप दिया गया है, आच्छादित कर दिया गया है, उस सब को उसे त्याग देना होता है।

इसको ही मैं तपश्चर्या कहता हूं, अंतःकरण के त्याग को। तब तुम्हारे भीतर तुम्हारे स्वभाव की जो वाणी है, स्वस्फूर्त, किसी की सिखाई हुई नहीं, तुम्हारे जीवन का ही जो स्वर है, जो संगीत है, वह सुनाई पड़ता है।
तो इस सूत्र का अनुवाद, सहजानंद, ऐसा न करो कि जिसका अंतःकरण शुद्ध है। क्योंकि तब तो बड़ी गड़बड़ होगी। एक हिसाब से किसी का अंतःकरण शुद्ध होगा और दूसरे हिसाब से उसी का अंतःकरण शुद्ध नहीं होगा। जीसस का अंतःकरण शुद्ध है या नहीं? हालांकि वे शराब भी पीते हैं और मांसाहार भी करते हैं! छोड़ो जीसस को; रामकृष्ण का अंतःकरण तो शुद्ध मानोगे कि नहीं? रामकृष्ण तो परमहंस हैं! मगर मछली तो खाते हैं।
अंतःकरण किसका शुद्ध है? अंतःकरण है, तब तक शुद्धि हो ही नहीं सकती। अंतःकरण अर्थात अशुद्धि; विजातीय; बाहर से कुछ डाल दिया गया। उसी से तो तुम्हारे भीतर कीचड़ मची है। जब तुम्हारे भीतर सिर्फ वही रह जाए, जो भीतर का है, तो आत्मशुद्धि।
इसलिए जो सूत्र का शब्द है वह ज्यादा उचित है, विशुद्धसत्वः। जिसके भीतर सत्वशुद्धि है, जिसका स्वभाव, जिसका स्वरूप शुद्ध हो गया है। और उसका एक ही अर्थ होता है, जिसके भीतर से, जो भी विजातीय है, वह बाहर फेंक दिया गया।
जिसका विशुद्ध सत्व हुआ है, वह न तो हिंदू होगा, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध, न पारसी, न सिक्ख। वह तो सिर्फ चैतन्य मात्र होगा। और ऐसी अवस्था में ही व्यक्ति स्वयं को जानता है, आत्मवेत्ता बनता है।
अभी तो तुम अगर किन्हीं धारणाओं को मान कर ध्यान भी करोगे, तो वही जान लोगे, जो तुम्हारी धारणा है। जैसे ईसाई ध्यान करने बैठेगा, तो उसको ईसा दिखाई पड़ने लगेंगे। और जैन बैठेगा, तो महावीर दिखाई पड़ने लगेंगे। और बौद्ध बैठेगा, तो बौद्ध की धारणाएं हैं, तो उसे बुद्ध का दर्शन होगा। और कृष्ण का भक्त कृष्ण को देखेगा। और राम का भक्त राम को देखेगा। यह तो तुम्हारी धारणा का ही प्रक्षेपण है। यह कोई आत्मबोध नहीं है।
जहां सारी धारणाएं गिर जाती हैं; जहां प्रक्षेपण करने को ही कुछ नहीं
रह जाता; जहां भीतर शून्य रह जाता है--निर्विकार, निर्विचार, निर्विकल्प-- उस चैतन्य की अवस्था में स्वयं की जीत है; व्यक्ति जिन बनता है, बुद्ध बनता है। जीतता है, जागता है। पहली बार जीतता है, पहली बार जागता है।
"और ऐसे आत्मवेत्ता के मन से"--यह सूत्र कहता है--"जिस-जिस लोक की भावना हो... ।"
अब किस लोक की भावना होगी? क्या इसके ऊपर भी कोई लोक है? आत्मबोध के ऊपर भी कोई बोध है? बुद्धत्व के ऊपर भी कोई और संभावना है? कोई और शिखर है? इस परम समाधि के पार अब क्या बचा? क्या ऐसा व्यक्ति स्वर्ग चाहेगा? स्वर्ग तो बहुत पीछे छूट गए; वे तो सपने हो गए। क्या ऐसा व्यक्ति चाहेगा कि इंद्र का आसन मिल जाए? आसन की बात ही अब मूर्खतापूर्ण हो गई। अब तो परम आसन मिल गया, पद्मासन मिल गया। वह कमल मिल गया, जो शाश्वत है, जो कालातीत है। वह सुगंध मिल गई, जो अब छूटेगी नहीं। अब तो जीवन उत्सव हुआ। अब तो रंगों की बहार आ गई। अब तो वसंत आया। अब तो फूल खिले। अब तो गीत है, संगीत है, महोत्सव है; अब तो दीए पर दीए जले।
कबीर ने कहा है, जैसे हजारों सूर्य एक साथ भीतर उग आए हों, ऐसा आत्मवेत्ता की स्थिति होती है।
अब क्या चाहेगा? किस लोक की कल्पना करेगा? उर्वशी को चाहेगा? मेनका
को चाहेगा? इंद्रासन की फिक्र करेगा? देवता बनना चाहेगा? कल्पवृक्ष मांगेगा? यह बात ही मूढ़तापूर्ण हो जाएगी। फिर तो यूं हुआ कि आत्मज्ञान के पार भी कुछ बच रहा; आत्मज्ञान भी फिर अंत न हुआ, लक्ष्य न हुआ, साधन ही रह गया। और आत्मज्ञान साध्य है, साधन नहीं।
"तो आत्मवेत्ता के मन से जिस-जिस लोक की भावना होगी"--इस सूत्र का कहना है--"और जिन-जिन कामनाओं की कामना होगी, वह उन-उन कामनाओं को, उन-उन लोकों को प्राप्त कर लेता है।"
पहले तो कामना ही नहीं होगी, कामना के बीज ही दग्ध हो गए। इसीलिए तो पतंजलि ने ऐसे व्यक्ति को दग्ध-बीज कहा है। निर्बीज समाधि कहा है ऐसी

अवस्था को। यहां तो बीज ही न बचे कामना के, अब अंकुरण क्या होंगे? जल गए बीज, राख हो गए।
और यह सूत्र कहता हैः "इसलिए जो अपना कल्याण चाहता है उसे आत्मवेत्ता
की अर्चना करनी चाहिए।"
पहली बात भी लोभ से भरी है और दूसरी बात भी लोभ से भरी है। आत्मवेत्ता
की इतनी क्षमता बता दी कि वह जो चाहे हो जाएगा; जो मांगे, मिलेगा; तत्क्षण मिलेगा, देर नहीं अबेर नहीं। कहावत तुमने सुनी है कि परमात्मा के घर देर हो, मगर अंधेर नहीं है। यह अज्ञानियों के लिए है। ज्ञानियों के लिए न तो देर है, न अंधेर है। उन्होंने तो इधर मांगा, उधर मिला। मांग भी नहीं पाए कि मिला। वे तो कल्पवृक्ष के नीचे ही बैठे हुए हैं। यह भी लोभ की बात रही, लोभ का ही विस्तार रहा। और आगे भी लोभ की ही बात हैः
"इसलिए जो अपना कल्याण चाहता है उसे आत्मवेत्ता की अर्चना करनी चाहिए।"
इसलिए जाओ आत्मवेत्ताओं के पास, उनकी अर्चना करो, पूजा करो। वह भी किसलिए? अपना कल्याण चाहने के लिए। उसके पीछे भी चाह है, वहां भी वासना है।
यहां लोग मंदिरों में जा रहे हैं, मस्जिदों में जा रहे हैं, गुरुद्वारों-गिरजों में जा रहे हैं। पूछो, किसलिए जा रहे हैं? वहां भी चाह है, वहां भी वासना है। और जहां वासना है, वहां प्रार्थना नहीं। और जहां वासना है, वहां अर्चना कैसी! वासना की दुर्गंध में अर्चना की सुगंध कैसे पैदा होगी? लाख जलाओ धूप और लाख जलाओ दीए, न होगी रोशनी, न होगी सुगंध। दुर्गंध को बहुत से बहुत छिपा लोगे, अंधेरे को बहुत से बहुत ढांक लोगे। मगर मिटेगा नहीं, फिर-फिर उभर आएगा। ये जलाए दीए, देर नहीं है, बुझ जाएंगे। और ये जलाई धूप, जल्दी हवा उड़ा ले जाएगी। फिर दुर्गंध अपनी जगह होगी। यह धोखा है, यह प्रवंचना है।
आत्मवेत्ता व्यक्ति की भी अर्चना करना इस कामना से कि मेरा भी कल्याण
हो जाए। और मेरा भी कल्याण, इसका अर्थ क्या होगा? इसका अर्थ यह होगा कि मैं भी उस जगह पहुंच जाऊं जहां हर चीज मांगने से मिल जाती है। जहां हर चीज चाहने से मिल जाती है। जहां कोई भी लोक चाहो, देर नहीं लगती, तत्क्षण वहां पहुंच जाते हैं। इसलिए आत्मवेत्ता व्यक्ति की भी अर्चना करनी चाहिए। यह भी लोभ का ही संबंध हुआ।
शिष्य और गुरु का संबंध लोभ का नहीं हो सकता। और अगर वह भी लोभ का संबंध है, तो फिर वह भी सांसारिक संबंध है। फिर पत्नी का और पति का संबंध, बाप का और बेटे का संबंध, भाई और बहन का संबंध, इन सारे संबंधों में ही गुरु और शिष्य का संबंध भी एक संबंध हुआ। फिर उसमें कुछ गुणात्मक भेद न रहा। गुणात्मक भेद तब होता है, जब बाकी सब संबंध तो लोभ के होते हैं, लाभ के होते हैं; लेकिन गुरु और शिष्य का संबंध सिर्फ प्रेम का होता है--न लोभ का, न लाभ का। प्रेम के संबंध का अर्थ यह होता है कि संबंध ही अपने आप में इतना बहुमूल्य है, अब और क्या चाहना है! शिष्य की अंतरतम भावना यह होती है कि गुरु मिल गया तो सब मिल गया; अब कुछ पाने को नहीं, अब कहीं जाने को नहीं। और मजा यह है कि जिसके भीतर ऐसा सदभाव पैदा होता है, उसके ऊपर वर्षा हो जाती है फूलों की। सारा आकाश फूलों की वर्षा करने लगता है। न तो उसने कुछ मांगा, न उसने कुछ चाहा, लेकिन सब बरस उठता है!
मंजुश्री की प्यारी कथा है। वह बुद्ध का पहला शिष्य है जो निर्वाण को उपलब्ध हुआ। जिस दिन उसको बुद्धत्व प्राप्त हुआ, जिस दिन उसने स्वयं को जाना, बैठा था वृक्ष के नीचे शांत, निर्विचार, जाग कर अपने को देखता था। देखते-देखते बात बन गई। बनते-बनते बन जाती है। सध गई। सब ठहर गया। मन ठहर गया, समय ठहर गया, विचार पता नहीं कहां विलुप्त हो गए! जैसे अचानक आकाश से बदलियां विदा हो गईं और सूरज निकल आया! गहन मौन! सन्नाटा! और तत्क्षण उसने देखा, आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। ऐसे फूल, जो उसने न कभी देखे, न कभी सुने! ऐसी गंध, जो उसने कभी जानी नहीं। चौंका! यह तो वसंत का मौसम भी नहीं! जिस वृक्ष के नीचे बैठा था, उसमें तो एक फूल भी न था। इतने फूल! इतने फूल कि जिनकी गणना असंभव! बरसे ही चले जाते हैं, बरसे ही चले जाते हैं। उसने आंख उठा कर आकाश की तरफ देखा। तो देखा कि देवता फूल बरसा रहे हैं।

यह तो कथा है, प्रतीक-कथा है। इतिहास मत समझ लेना। इसके भीतर अर्थ तो गहरा है, लेकिन तथ्य मत मान लेना। सत्य तो बहुत है, मगर तथ्य जरा भी नहीं। सत्य को कहना हो तो यूं ही कहा जा सकता है, घूम-फिर कर ही कहना होता है; सीधा कहने का उपाय नहीं।
तो मंजुश्री ने पूछा उन देवताओं से जो फूल बरसा रहे थे कि तुम्हें क्या हो गया है? यह किसलिए फूल गिराए जाते हो? तुम शायद कुछ भूल-चूक में हो। बुद्ध तो वहां दूर दूसरे वृक्ष के नीचे बैठे हैं; वहां गिराओ फूल! मैं तो मंजुश्री हूं। उनका एक छोटा सा शिष्य हूं। उनके प्रेम में लग गया हूं। मुझे कुछ चाहिए भी नहीं और। जो फूल चाहिए थे, मुझे मिल चुके हैं। और तुम्हें अर्चना करनी हो तो उनकी करो। वे रहे मेरे गुरु! मुझ पर क्यों फूल गिराते हो? मैंने तो कुछ किया ही नहीं। मेरी तो कोई पात्रता भी नहीं, कोई योग्यता भी नहीं।
उन देवताओं ने कहा, मंजुश्री! हम फूल गिरा रहे हैं उस महत अवसर के स्वागत के समय में, जब तुमने शून्य पर अदभुत प्रवचन दिया है!
मंजुश्री ने कहा, शून्य पर प्रवचन? मैं एक शब्द बोला नहीं!
देवता हंसे और उन्होंने कहा, न तुम एक शब्द बोले और न एक शब्द हमने सुना। न तुमने कुछ कहा, न हमने कुछ सुना। इसी को तो कहते हैं शून्य पर महा- प्रवचन! उसी खुशी में हम फूल गिरा रहे हैं। तुमने कहा नहीं, हमने सुना नहीं, और बात हो गई! बिन कहे बात हो गई! इसलिए फूल गिर रहे हैं। अब ये फूल तुम पर गिरते ही रहेंगे। ये फूल गिरना शुरू होते हैं, फिर बंद नहीं होते। समझना। यह तो बोध-कथा है, प्रतीक-कथा है। ऐसे झाड़ के नीचे बैठ कर और बार-बार आंखें उठा कर ऊपर मत देखना, कि देवता वगैरह आए कि नहीं पुष्पक विमान पर बैठे हुए? फूल वगैरह लाए कि नहीं? नहीं तो उसी में सब गड़बड़ हो जाएगा!
तुम तो इतना ही जानना कि शून्य प्रवचन क्या है। वह हो जाए, तो कुछ आकाश
से फूल बरसाने की जरूरत नहीं होती, तुम्हारे भीतर ही फूल उमग आते हैं; अंतस-लोक में ही वसंत आ जाता है। फिर कैसी कामनाएं? फिर कैसी वासनाएं?
और शिष्य को तो सवाल ही नहीं उठता कि आत्मवेत्ता पुरुष की अर्चना इसलिए करे, क्योंकि उसकी बड़ी शक्ति है आत्मवेत्ता पुरुष की! महान उपलब्धि है! नहीं; शिष्य तो अकारण प्रीति में पड़ता है। प्रीति तो सदा अकारण होती है। जहां कारण है, वहां व्यवसाय है। जहां कोई कारण नहीं... ।
अब कोई मेरे संन्यासियों से पूछे कि मुझसे क्या उन्हें मिल रहा है? कुछ भी तो नहीं। कोई मेरे संन्यासियों से पूछे कि मुझसे क्यों बंधे हो? मेरे पास क्यों बैठे हो? वर्ष आते हैं, वर्ष जाते हैं और तुम मेरे पास रुके हो, क्यों? तो मेरे संन्यासी उत्तर न दे सकेंगे। जो उत्तर दे सकें, वे मेरे संन्यासी नहीं। कोई उत्तर न दे सकेंगे। उत्तर का कोई सवाल नहीं है। बेबूझ है बात।
सहजानंद! मुंडकोपनिषद के इस सूत्र का मैं तुम्हें क्या अभिप्राय कहूं! यह सूत्र एकदम गलत है, आधारभूत रूप से गलत है। सूत्र बिल्कुल विक्षिप्ततापूर्ण है। किसी पागल ने कहा होगा। किस तरह मुंडकोपनिषद में प्रवेश कर गया, पता नहीं!
लेकिन पंडित जो न कर जाएं थोड़ा है। पंडित तो एक उपद्रव हैं। न उन्हें पता है। लेकिन दुर्भाग्य तो यही है कि वे ही संकलन करते हैं।
महावीर बोले, लेकिन संकलन किया पंडितों ने। यह सांयोगिक बात नहीं है
कि महावीर के ग्यारह गणधर, उनके जो ग्यारह प्रमुख शिष्य थे, ग्यारह के ग्यारह ब्राह्मण थे। महावीर तो क्षत्रिय थे। जैनों के चौबीस तीर्थंकर ही क्षत्रिय हैं। असल में वह क्षत्रियों की बगावत थी ब्राह्मणवाद के खिलाफ, पांडित्यवाद के खिलाफ। लेकिन दुर्भाग्य तो यह है कि महावीर के वचन भी संकलन तो किए ब्राह्मणों ने ही। वे ग्यारह गणधर ही ब्राह्मण थे! और वहीं बात विकृत हो गई, वहीं उन्होंने सब गड़बड़ कर दिया। वहीं स्रोत पर ही जहर मिल गया।
बुद्ध तो क्षत्रिय थे। सच तो यह है, जिन्हें स्वयं को जानना हो, उन्हें किसी अर्थ में क्षत्रिय ही होना पड़ता है। क्षत्रिय का अर्थ है, वह भी एक विजय-यात्रा है, एक घनघोर घमासान युद्ध है स्वयं के अंधकार से।

उन्हें भी तलवार उठानी पड़ती है। किसी और के खिलाफ नहीं, अपने ही तमस के खिलाफ; अपनी ही तंद्रा के खिलाफ; अपनी ही निद्रा के खिलाफ। लेकिन बुद्ध को भी जो संकलन करने वाले लोग मिले, वे तो पंडित ही थे, वे तो ब्राह्मण ही थे। बस, वहीं विकृति हो जाती है। पंडित भाषा का ज्ञाता होता है, व्याकरण
का ज्ञाता होता है, शब्दों का धनी होता है; लेकिन अनुभव उसके पास कुछ भी नहीं होता। और यह सारा मामला अनुभव का है। पंडित तो तोते की भांति होता है; रट लेता है, दोहरा देता है। लिख देता है, यंत्रवत। उसकी अपनी अनुभूति तो नहीं होती।
मगर मैं मजबूरी भी समझता हूं। मुंडकोपनिषद जिसने कहा होगा, वह तो परम ज्ञानी रहा होगा, क्योंकि इसमें ऐसे सूत्र हैं, जो अपूर्व हैं, जो कि बिना अनुभव के नहीं कहे जा सकते। लेकिन कठिनाई यह है कि जिसने कहे हैं वह तो बुद्ध रहा होगा, मगर दूसरे बुद्ध को तुम कहां से पाओगे जो तुम्हारे सूत्रों को लिखे? कोई बुद्धू ही लिखेगा। कोई बुद्ध क्यों लिखेगा? किसलिए लिखेगा?
बुद्ध के जीवन में ऐसी कथा है, जो प्रीतिकर है। बुद्ध की मृत्यु हुई।
जब तक जीवित थे, किसी ने फिक्र ही न की थी कि उन्होंने जो कहा है, वह संकलित कर लिया जाए। ऐसे आनंद में थे, ऐसे अहोभाव में थे, कि किसको चिंता पड़ी थी! रोज दीए जल रहे थे। रोज दीवाली थी। रोज रंग बिखर रहे थे। रोज फाग थी। किसको फुर्सत थी कि अभी लिखे। लेकिन बुद्ध की मृत्यु के बाद जो पहला सवाल उठा शिष्यों के सामने, वह यही था कि अब उनके वचनों को संकलित कर लिया जाए।
और तुम चकित होओगे जान कर कि जो लोग संकलित कर सकते थे, वे तो भूल ही भाल चुके थे। मंजुश्री, जो पहला बुद्ध था बुद्ध के शिष्यों में, उससे कहा। उसने कहा, मुझे तो कुछ याद नहीं। मुझे तो अपनी याद नहीं! कैसे रस में भीगे वे दिन बीते! कौन शब्दों की फिक्र करता! मुझे पक्का-पक्का नहीं कि उन्होंने क्या कहा और मैंने क्या सुना; उन्होंने क्या कहा और मैंने क्या समझा। और जब से मैं जागा, तब से तो बात शब्दों की रही न थी, एक मौन संवाद था। उस मौन संवाद को लिखूं भी तो कैसे लिखूं! उसके लिए तो कोरा कागज ही काफी है।
सारिपुत्र से पूछा। सारिपुत्र ने कहा, मुश्किल है बात। जब तक मैं जागा नहीं था, तुमने अगर कहा होता तो लिख देता, क्योंकि तब तक शब्दों पर ही पकड़ थी। जब मैं जागा, तो निःशब्द में उतर गया। अब तो पक्का नहीं है; मैं लिखूं भी तो यह तय करना मुश्किल होगा कि यह मेरी बात लिख रहा हूं कि बुद्ध की बात लिख रहा हूं। अब तो सब गोल-मोल हो गया। अब तो सब तालमेल टूट गया, भेद टूट गए। अब तो मेरी सरिता भी उनके सागर में मिल गई। तो मेरी बात का तुम भरोसा न करना। बात तो मेरी सच्ची होगी, खरी होगी। मगर मेरी है कि उनकी, यह तय करना नहीं हो सकता। अपनी बात लिख सकता हूं, मगर यह दावा मैं नहीं कर सकता कि ऐसा उन्होंने कहा था। जरूर कहा होगा, मगर निश्चयात्मक रूप से मैं कोई दावा नहीं कर सकता।
मौग्गलान से पूछा। उसने कंधे बिचका दिए। उसने कहा, कौन इस झंझट में पड़े!
जितने शिष्य बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए थे, वे कोई राजी न थे। सिर्फ आनंद, जो बुद्धत्व को उपलब्ध नहीं हुआ था, वह राजी था। उसे सब याद था। उस बेचारे के पास और तो कोई संपदा न थी, शब्दों को ही संजोता रहा था, इकट्ठा करता रहा था। जो-जो बुद्ध बोलते थे, उसको इकट्ठा करता रहता था। उसके पास कोई प्रज्ञा तो नहीं थी, मगर स्मृति थी। प्रज्ञा हो, तो स्मृति की क्या चिंता! और प्रज्ञा न हो, तो स्मृति ही एकमात्र धन है।
बड़ी बिगूचन, बड़ी विडंबना खड़ी हो गई। सारे शिष्य इकट्ठे हुए थे, उन्होंने कहा, यह बड़ी मुश्किल की बात है। जिनकी बात का भरोसा हो सकता है, वे लिखने को राजी नहीं। और जिसकी बात का कुछ भरोसा नहीं, वह लिखने को राजी है! आनंद से लिखवाना है क्या? हालांकि जो भी वह कहेगा, वही कहेगा जो बुद्ध ने कहा था। लेकिन अज्ञानी ने सुना है, जैसे किसी ने नींद में सुना हो।
मैं यहां बोल रहा हूं। तुम में से कई यहां सोए होंगे। वे भी सुन रहे होंगे, मगर नींद में सुन रहे होंगे। कुछ सुना जाएगा, कुछ नहीं सुना जाएगा,

कुछ का कुछ सुना जाएगा; स्वाभाविक है। और फिर अगर तुमसे कहा जाए लिखो, तो तुम जो लिखोगे उसकी क्या प्रामाणिकता होगी?
आनंद ने कहा, मैं लिख तो सकता हूं, लेकिन प्रामाणिकता का दावा मैं नहीं कर सकता।
अब तुम देखते हो विडंबना! जो प्रामाणिक हो सकते हैं, वे लिखने को राजी नहीं थे। जो लिखने को राजी था, उसने कहा, मैं प्रामाणिक नहीं हो सकता!
तो फिर बुद्ध के शिष्यों ने एक उपाय ही खोजा, उन्होंने आनंद से कहा, तू
एक काम कर। तू किसी तरह सारा श्रम लगा कर बुद्धत्व को उपलब्ध हो जा। क्योंकि हम तेरी बातों का तब तक भरोसा न करेंगे, जब तक तू बुद्धत्व को उपलब्ध न हो जाए। और तुझे सब बातें याद हैं। और तू सबसे ज्यादा बुद्ध के साथ रहा है। बयालीस साल सतत, एक क्षण को भी बुद्ध को तूने नहीं छोड़ा। इतना साथ कोई उनके रहा नहीं। दिन भी तू साथ रहा, रात भी तू साथ रहा। रात भी उसी कमरे में सोता था जिसमें बुद्ध सोते थे। उनकी सेवा में ही सब कुछ समर्पित कर दिया था उसने। तो हमें भरोसा है। मगर तेरे भीतर जागरण तो हो!
और जब आनंद जाग्रत हुआ, तब उन्होंने उसके वचनों को स्वीकार किया। लेकिन झगड़ा तत्क्षण शुरू हो गया। आनंद ने तो वचन लिख दिए, लेकिन छत्तीस संप्रदाय पैदा हो गए। क्योंकि बौद्धों के अलग-अलग लोगों ने कहा कि ये आनंद के शब्द हम स्वीकार नहीं कर सकते। किसी ने कहा, हम ये स्वीकार नहीं कर सकते। किसी ने कहा कि ये हमें स्वीकार हैं, मगर और बातें स्वीकार नहीं। अज्ञानियों के छत्तीस खंड हो गए! ज्ञानी तो चुप रहे, अज्ञानियों ने संप्रदाय बना लिए। बुद्ध को मरे दिन भी न हुए थे कि वह महाज्योति टुकड़ों- टुकड़ों में टूट गई। और सत्य जब टुकड़ों में टूटता है, तो असत्य से भी बदतर हो जाता है।
सहजानंद! जिसने भी मुंडकोपनिषद के मूल सूत्र कहे होंगे, वह जरूर बुद्धत्व को उपलब्ध रहा होगा। लेकिन जिन्होंने लिखे होंगे, उन्होंने बहुत कुछ अपनी तरफ से जोड़ दिया होगा।
और ऐसा भी नहीं कि जान कर लोग जोड़ते हैं। मैं उनकी सदभावना पर संदेह नहीं करता हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं, उनकी भावना गलत रही होगी। मगर मजबूरी है बेहोश आदमी की; बेहोशी में वह जो भी करेगा, कितनी ही सदभावना से करे, सद-इच्छा से करे, गलत तो हो ही जाएगा।
अब तुम देखते हो, यह सूत्र है--
"यं यं लोकं मनसा संविभाति
विशुद्धसत्वः कामयते यांश्च कामान्।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामां--
स्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चवेद भूतिकामः।।"
लेकिन जिसने अनुवाद किया, उसने भी भूल-चूक कर दीः "जिसका अंतःकरण शुद्ध है।" विशुद्धसत्वः! उसका अनुवाद हो गया, जिसका अंतःकरण शुद्ध है। भारी चूक हो गई। अंतःकरण से मुक्त होता है कोई, तभी विशुद्धसत्व होता है। और यहां तो बात ही उलटी हो गई।
"जिसका अंतःकरण शुद्ध है, ऐसा आत्मवेत्ता मन से जिस-जिस लोक की भावना करता है... ।"
आत्मवेत्ता का मन रह जाता है? मन की जरूरत क्या है?
यह तो यूं हुआ, कहानी है कि जीसस ने एक अंधे आदमी की आंखों को छुआ; आंखें ठीक हो गईं। स्वभावतः, अंधा आदमी था, तो लकड़ी टेक-टेक कर चलता था। आंखें तो ठीक हो गईं, जीसस को धन्यवाद देकर वह जाने लगा, मगर अपनी लकड़ी भी साथ ले चला! जीसस ने कहा, मेरे भाई, कम से कम धन्यवाद में लकड़ी तो मुझे दे जा! लकड़ी तो छोड़ दे!
वह अंधा आदमी क्या बोला! उसने कहा, बिना लकड़ी के मेरा कैसे चलेगा?
आंखें आ गईं! मगर पुरानी आदत, जिंदगी भर की आदत! लकड़ी से टटोल-टटोल कर चलता था। लकड़ी ही उसकी अब तक की आंख थी। आज आंख भी आ गई, तो वह घटना इतनी नई थी कि अभी तक उस घटना का संप्रेषण भीतर तक नहीं हुआ।
उसने कहा, लकड़ी मैं कैसे छोड़ सकता हूं? बिना लकड़ी के मेरा कैसे चलेगा मालिक? बिना लकड़ी के तो मैं एक कदम न चल सकूंगा। इसी से टटोल-टटोल कर, टेक-टेक कर तो चलता हूं।

जीसस ने कहा, पागल! अब तेरी आंखें ठीक हो गईं, अब लकड़ी से क्यों टटोलेगा?
अंतःकरण तो अंधे आदमी की लकड़ी है। विशुद्धसत्वः! वह तो अंधे आदमी की आंख का ठीक हो जाना है। अब वहां अंतःकरण की क्या जरूरत है?
अंतःकरण तो समाज थोपता है इसलिए ताकि किसी तरह तुम आचरण की सीमा में चलते रहो। लेकिन जिसकी आत्मा जग गई, अब उसके ऊपर कोई आचरण की सीमा नहीं रह जाती। वह आचरण-मुक्त होता है। अब तो वह जो करेगा, वही ठीक है। अज्ञानी को बताना पड़ता है कि तुम ठीक करो और गैर-ठीक न करो। ज्ञानी जो करता है वही ठीक है, जो नहीं करता वही ठीक नहीं है।
क्रांतिकारी अंतर हो गया। लेकिन जरा से अनुवाद में, एक शब्द के अनुवाद में सारा अर्थ बदल गया।
और आत्मवेत्ता अभी भी मन... ! मन का अर्थ होता है, मनन करने की क्षमता। मनन से ही तो मन बना। मन से ही तो मनुष्य शब्द बना। वह जो मनन करता है, मनुष्य है। वह जो मनन की भीतर हमारे प्रक्रिया है, उसका नाम मन है। लेकिन जिसको आंख मिल गई, वह मनन थोड़े ही करता है।
अंधा आदमी सोचता है कि दीवाल कहां? दरवाजा कहां? पूछता है कि बाएं जाऊं कि दाएं जाऊं? आंख वाला आदमी तो उठता है और दरवाजे से निकल जाता है। उसे दिखाई पड़ता है। मनन करना ही नहीं पड़ता।
ठीक ऐसा ही, जिसका विशुद्ध सत्व हुआ, जिसके भीतर समाधि का फूल खिला, जिसके भीतर समाधि की आंख खुली, अब मनन करेगा? अब मनन किसलिए करेगा?
अंधा आदमी सोचता है कि प्रकाश कैसा होता है? आंख वाला आदमी तो कभी नहीं सोचता कि प्रकाश कैसा होता है। वह तो जानता ही है। बहरा आदमी शायद सोचता हो कि ध्वनि कैसी होती है? कान वाला आदमी तो जानता है कि ध्वनि कैसी होती है।
जिसकी आत्मा शुद्ध हो गई, उसको मनन की जरूरत नहीं रह जाती। वह सोचता
ही नहीं; वह देखता है, वह द्रष्टा है। वह मनुष्य के पार हो गया। उसने मनुष्य का अतिक्रमण कर लिया। मन का अतिक्रमण हुआ कि मनुष्य का भी अतिक्रमण हो जाता है। अब कहां मन! कहां के लोक! सब स्वप्न हैं तुम्हारे लोक। नर्क भी तुम्हारा स्वप्न है, स्वर्ग भी तुम्हारा स्वप्न है। ये कोई स्थान नहीं। ये कोई भौगोलिक जगह नहीं। नर्क भी तुमने निर्मित किया है अपने भय से और स्वर्ग भी तुमने निर्मित किया है अपने लोभ से।
इसलिए तुमने स्वर्ग में वह सब व्यवस्था कर ली, जो तुम्हारा लोभ चाहता है। और नर्क में तुमने वह सब व्यवस्था कर दी, जो तुम उनके लिए दंड देना चाहोगे जो तुम्हारे साथ चलने को राजी नहीं हैं। दुश्मनों के लिए नर्क, दोस्तों के लिए स्वर्ग। अपने वालों के लिए स्वर्ग, परायों के लिए नर्क। लेकिन नर्क कहीं है थोड़े ही; न स्वर्ग कहीं है।
जिस दिन तुम भय और लोभ से मुक्त हो गए, उसी दिन तुम देख लोगे, न तो कोई स्वर्ग है, न कोई नर्क है। हां, जब तक तुम भय से भरे कंप रहे हो, नर्क में ही हो। और जब तक तुम स्वर्ग से लालायित, डांवाडोल हो रहे हो, तब तक दोनों चीजें सत्य मालूम पड़ती हैं। मगर वे प्रतीतियां हैं, भ्रांतियां हैं। जहां मन थिर हुआ, शांत हुआ, मौन हुआ, दोनों ही खो जाते हैं। और उन दोनों के खो जाने पर क्या मांगोगे लोक? कौन सी कामनाएं करोगे?
सुना है मैंने, एक आदमी भूला-भटका स्वर्ग पहुंच गया। थका-मांदा था, एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने को लेट गया। उसे पता न था कि यह कल्पवृक्ष है; इसके नीचे लेटो और बैठो और जो भी कामना करो, पूरी हो जाती है! कहानी मधुर है। भूखा था। मन में ख्याल उठा कि काश, इस वक्त कहीं से भोजन मिल जाता, बड़ी भूख लगी है!
ऐसा उठना था विचार का कि तत्क्षण सुस्वादु भोजनों से भरे हुए स्वर्ण-थाल प्रकट हो गए। वह इतना भूखा था, इतना थका था, कि उसने सोचा भी नहीं कि ये कहां से आए! कौन लाया! भूखा आदमी क्या सोचे? ये सब भरे पेट की बातें हैं। उसने तो जल्दी से भोजन किया।
पेट भर गया, तो सोचा कि कहीं से कुछ पीने को मिल जाए, कोकाकोला! फेंटा! नहीं तो लिमका ही सही! और देख कर हैरान हुआ कि कोकाकोला, फेंटा, लिमका, सब चले आ रहे हैं! थोड़ा चौंका भी कि कोकाकोला तो बंद हो गया था! मगर तस्करों

की कृपा से सभी कुछ उपलब्ध होता है। तस्करी जो न कर दे थोड़ा! असंभव को संभव बना देती है। फिर किसको फिक्र पड़ी थी! अभी तो बहुत थका था; कोकाकोला पीकर लेटने लगा। लेटने लगा तो सोचा कि पेट तो भर गया, मगर कंकड़-पत्थर हैं, जमीन साफ-सुथरी नहीं। ऐसे समय में तो कोई गद्दी होनी थी। सुंदर सेज होती, तो आज जैसी गहरी नींद आती, जैसा घोड़े बेच कर आज सोता, ऐसा कभी नहीं सोया था। अचानक देख कर हैरान हुआ कि एक पलंग चला आ रहा है! थोड़ा सकुचाया भी कि क्या-क्या हो रहा है! मगर नींद इतनी गहरी आ रही थी कि उसने अभी कहा कि बाद में देखेंगे। यह विचार वगैरह सब बाद में कर लेंगे। सो गया पलंग पर। बड़ा चकित हुआ कि डनलप की गद्दियां! मगर उसने कहा कि पीछे जग कर देखेंगे।
जब जगा, तब थोड़ा सा चिंतित हुआ, कि इस निर्जन स्थान में, इस वृक्ष के नीचे, वृक्ष के आस-पास न तो कहीं कोई रेफ्रिजरेटर दिखाई पड़ता है; न कोई आदम जात दिखाई पड़ता है। कोकाकोला प्रकट हुए! भोजन आया! यही नहीं, बिस्तर भी प्रकट हुआ! टटोल कर बिस्तर ठीक से देखा कि है भी कि मैं कोई कल्पना कर रहा हूं? लेकिन है। थोड़ा डरा कि कहीं कोई भूत-प्रेत तो नहीं हैं इस वृक्ष में! बस, जैसे ही उसने सोचा कि कहीं कोई भूत-प्रेत तो नहीं! कहीं कोई भूत-प्रेत तो नहीं छिपे हैं! मैं किन्हीं भूत-प्रेतों के चक्कर में तो नहीं पड़ गया हूं! कि तत्क्षण चारों तरफ भूत-प्रेत एकदम, जैसे आनंदमार्गी तांडव नृत्य करते हैं, ऐसा आदमियों की खोपड़ियां लेकर एकदम नृत्य करने लगे। उसने कहा, मारे गए! और मारा गया।
क्योंकि कल्पवृक्ष के नीचे तो जो कहोगे, वही हो जाएगा। वह कोकाकोला बहुत मंहगा पड़ा! मगर अब तो बहुत देर हो चुकी थी। जब कह ही चुका कि मारे गए, तो वे सब आनंदमार्गी पटक कर खोपड़ियां वगैरह, उसकी गर्दन तोड़ दी उन्होंने। इसी तरह तो खोपड़ियां इकट्ठी करते हैं, नहीं तो फिर खोपड़ियां इकट्ठी कहां से करो? यही जो कल्पवृक्षों के नीचे फंस जाते हैं, इन्हीं की खोपड़ियां फिर तांडव नृत्य के काम में आती हैं!
न तो कहीं कोई स्वर्ग है, न कहीं कोई नर्क है। न तो डरो नर्क की अग्नि से, न कामना करो स्वर्ग के सुखों की। सब तुम्हारे मन के जाल हैं।
यहां चूंकि जीवन में दुख है, इसलिए तुम उसके विपरीत स्वर्ग की कल्पना
कर रहे हो। और चूंकि दूसरे यहां मजा लूटते दिखाई पड़ रहे हैं, उनके लिए तुम नर्क का इंतजाम कर रहे हो। तुम अपने को सांत्वना दे रहे हो कि कोई फिक्र नहीं; अरे, चार दिन की जिंदगी है! और यूं ही कटी जा रही है। अभी झेल लो दुख, कोई फिक्र नहीं। थोड़ा सा दुख है, फिर स्वर्ग के सुख ही सुख हैं। और ये जो दुष्ट मजा कर रहे हैं, गुलछर्रे उड़ा रहे हैं, उड़ा लो। अरे, दो दिन की बात है, फिर सड़ोगे; फिर नर्कों में पड़ोगे; तब याद करोगे। तब चुल्लू-चुल्लू पानी को तरसोगे। ये सांत्वनाएं हैं। यह अपने को समझाना है।
कार्ल मार्क्स एकदम गलत नहीं है, जब वह कहता है कि धर्म अफीम का नशा है। इसमें थोड़ी दूर तक सचाई है। निन्यानबे प्रतिशत लोग जिसको धर्म समझते हैं, वह निश्चित ही अफीम का नशा है।
हां, बुद्ध का, और कृष्ण का, और महावीर का, और जीसस का धर्म जरूर अफीम
का नशा नहीं है। मगर उस धर्म से कितने लोगों का संबंध है? पंडितों-पुरोहितों का यह जो विराट जाल फैला हुआ है, ये तो सिर्फ अफीम
ही बेच रहे हैं। ये तो तुम्हें सिर्फ किसी तरह बेहोश रखने की कोशिश कर रहे हैं। जिंदगी में दुख है, थोड़ी बेहोशी चाहिए, ताकि दुख झेल लो। और जिंदगी में दुख है, इसलिए थोड़ी कल्पना का जाल चाहिए, ताकि उसकी आशा में बंधे हुए कुछ तो सांत्वना रहे।
मगर ये सारी बातें अज्ञानी के लिए हैं, आत्मवेत्ता के लिए नहीं। इसलिए सहजानंद! अगर मेरे हाथ में बात हो, तो इस तरह के सूत्रों को उपनिषदों से निकाल कर बाहर कर दूं। इस तरह के सूत्र ही उपनिषदों की महिमा को खंडित कर रहे हैं, नष्ट कर रहे हैं।
मगर जो जाल खड़ा है उपनिषदों के पीछे, गीता के पीछे, धर्मशास्त्रों के पीछे, जो न्यस्त स्वार्थ लाभ उठा रहे हैं, वे तो इन्हीं सूत्रों पर जी रहे हैं। मैं जिन सूत्रों को अलग कर देना चाहूंगा, वही सूत्र उनके लिए प्राण हैं। और जिन सूत्रों को मैं बचा लेना चाहूंगा, वही उनके लिए जहर हो जाएंगे।

इस संबंध में यह दूसरा प्रश्न तुम सुनो। सत्य वेदांत ने पूछा हैः
ओशो, हाल ही में अपने एक वक्तव्य में श्री डोंगरे महाराज ने कहा कि जो मनुष्य देवता की पूजा किए बिना अन्न खाता है, वह अन्न नहीं पाप खाता है। उन्होंने कहा कि ब्रह्म-दर्शन पहले मूर्ति में होता है। श्री डोंगरे महाराज ने बताया कि गणपति की पूजा करने के बाद ही पानी पीना चाहिए। और गणपति ही एक ऐसे देवता हैं जो हाथ में लड्डू लिए बैठे हैं! इस लड्डू में मीठापन है, क्योंकि ज्ञान ही लड्डू है। उन्होंने बताया कि माता जी, शक्ति की पूजा भी आवश्यक है। बिना शक्ति के जीवन बेकार है। शक्ति से ही भक्ति होती है, और भक्ति से ध्यान में थिरता आती है! गणपति का ध्यान करने से विघ्न नहीं आता। और माता जी के ध्यान से शक्ति आती है। श्री डोंगरे महाराज ने शिव को संयम की मूर्ति बताया और कहा कि संयम से ही शक्ति बढ़ती है, इसलिए शिव की पूजा करनी चाहिए!
ओशो, आप इन वक्तव्यों पर कुछ कहने की अनुकंपा करें।

सत्य वेदांत!
डोंगरे का बालामृत पीओ, उससे सब समझ में आ जाएगा। बालकों के लिए डोंगरे का बालामृत! उससे शक्ति भी आएगी, भक्ति भी आएगी। और गजब की चीजें होंगी! और डोंगरे का बालामृत मीठा भी होता है। क्या लड्डू!
इस तरह के लोग हैं! क्या-क्या लोगों को समझा रहे हैं! सीधे-सीधे डोंगरे का बालामृत ही बेचें, तो ठीक। मगर क्या-क्या व्यर्थ की बकवास और कचरा! एक-एक बात को थोड़ा सोचो।
पहली बातः "कि जो मनुष्य देवता की पूजा किए बिना अन्न खाता है, वह अन्न नहीं पाप खाता है।"
तो बाकी कामों के संबंध में क्या कहोगे? जो आदमी देवता की पूजा किए बिना सोता है, वह पाप सोता है? जो आदमी देवता की पूजा किए बिना चलता है, वह पाप चलता है?
तो चौबीस घंटे देवता की पूजा करो! और देवता भी कोई एक-दो हैं! हिंदुस्तान में तो तैंतीस करोड़ देवता हैं। यह साठ-सत्तर साल की जिंदगी तो यूं चली जाएगी, पूरे तैंतीस करोड़ देवताओं की पूजा भी न हो पाएगी।
और उन्होंने भी कितनी पूजाएं बता दीं! इस छोटे से प्रश्न में ही कितनी
ही पूजाएं आ गईं। शक्ति की पूजा करो! गणपति की पूजा करो! शिव की पूजा करो! और सबका सार बताते गए वे कि किस-किस से क्या-क्या मिलेगा।
देवता की पूजा किए बिना अन्न खाने से या सोने से या उठने से पाप का कोई संबंध नहीं। देवता किसे कहते हो? सूर्य भी देवता है, और चांद भी देवता है, और हनुमान जी भी देवता हैं, और गणेश जी भी देवता हैं। और देवता ही देवता भरे हुए हैं!
हां, पूजा का भाव जीवन में होना चाहिए। और पूजा के भाव का देवताओं से कोई संबंध नहीं, तुमसे संबंध है। नहीं तो कोई मुसलमान गणपति की तो पूजा करता नहीं, न कोई ईसाई करता है, न कोई पारसी करता है। तो ये बेचारे लड्डू से वंचित रह जाएंगे! इस लोक में भी लड्डू मिल नहीं रहे, परलोक में भी वंचित किए दे रहे हो!
और तुम्हें पक्का पता है--पूछना डोंगरे महाराज से--कि वह जो गणपति हाथ में लिए बैठे हैं, वह लड्डू है? क्योंकि एक बहुत बड़े पंडित, महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन जीवन भर यह सिद्ध करते रहे कि वह लड्डू नहीं है, अंडा है! वे भी महापंडित थे। उन्होंने बड़ा समय लगाया इसको सिद्ध करने में कि अंडा है। वे अंडे के भक्त थे। वे असल में खुद अंडा खाते थे, तो अपने अंडे के लिए समर्थन तो खोजना पड़ेगा! और अब कैसे सिद्ध करोगे कि अंडा है कि लड्डू है? गणेश जी हैं, इनका भरोसा भी क्या! इनकी शक्ल-सूरत तो देखो! ये अंडा भी खाते रहे हों तो कुछ आश्चर्य नहीं!
ये जो इस तरह की व्यर्थ की बातें हैं, ये लोगों को प्रीतिकर लग जाती हैं, क्योंकि लोग टटोल रहे हैं कि कोई भी सहारा मिल जाए, कोई भी बैसाखी मिल जाए।

मैं पूजा का तो पक्षपाती हूं, लेकिन पूजा का कोई संबंध देवताओं से नहीं है। पूजा तो भीतर की भाव-दशा है। पूजा तो कृतज्ञता का बोध है; धन्यवाद है।
यह जो अस्तित्व है, इसने इतना दिया है! जीवन दिया है। आनंद की क्षमता
दी है। ज्ञान की संभावना दी है। बुद्धत्व के बीज दिए हैं। क्या चाहिए और! इसने इतना दिया है, और तुम धन्यवाद भी न दोगे! और किन्हीं क्षणों में क्या तुम्हारा मन नहीं होता कि घुटने के बल टिक जाओ! झुक जाओ! किसके प्रति, यह सवाल नहीं है। झुकना!
तुम मेरे भेद को समझ लेना। डोंगरे महाराज का जोर है, किसके प्रति। मेरा जोर है तुम्हारे झुकने के ऊपर, तुम्हारे समर्पण पर। जैसे ही हमने बाहर की चीज पर जोर दिया, धर्म समाप्त हो जाता है, दुकानदारी शुरू हो जाती है। धर्म का संबंध है भीतर से। भीतर एक समर्पण का भाव होना चाहिए। भीतर एक गहन धन्यता प्रतीत होनी चाहिए। इतना दिया है, मुझ अपात्र को! कोई गणपति ने नहीं दिया है, और न कोई शिवजी ने दे दिया है, और न कोई शक्ति माता ने दे दिया है। यह जो पूरा विराट अस्तित्व है, यह जो समग्रीभूत अस्तित्व है, इसकी ही भेंट है।
इसको नाम मत दो। इसको अनाम ही छोड़ दो। यह अनाम ही है। इस अनाम के प्रति जीवन में सदा धन्यवाद का भाव होना चाहिए। फिर तुम भोजन करो, और चाहे विश्राम करो, चाहे चलो, चाहे बैठो, चाहे उठो, तुम्हारे भीतर यह अनुगूंज बनी रहनी चाहिए। शब्द में भी बांधने की जरूरत नहीं है। ऐसा कुछ कहने की और चिल्लाने की जरूरत नहीं है कि तुम पतितपावन हो और मैं पापी हूं! और मुझे बचाओ! और तुम बचावनहार हो! और इस सब बकवास की कोई जरूरत नहीं है। सिर्फ एक मौन धन्यवाद तुम्हारे भीतर झरने की तरह कलकल नाद करता रहे। उसे मैं कहता हूं पूजा--पूजन, अर्चन, वंदन। फिर फिक्र नहीं करनी पड़ती; नहीं तो बड़ी झंझटें खड़ी हो जाती हैं।
मीरा ने कहा है, मुझे पूजा की विधि नहीं आती, अर्चन का ढंग नहीं आता। मुझे पता नहीं, क्या गाऊं क्या न गाऊं! मगर फिर भी मीरा ने जो पूजा की, वह बेचारे डोंगरे महाराज क्या करेंगे! न पूजा की विधि है, न अर्चन का ढंग है। मूसा के जीवन में उल्लेख है। वे एक जंगल से गुजर रहे हैं और ठिठक कर खड़े हो गए। बात ही ऐसी थी कि ठिठक कर खड़े हो जाना पड़ा। एक चरवाहा, गड़रिया, सांझ की प्रार्थना कर रहा था। सूरज डूब रहा है, और वह सांझ की प्रार्थना कर रहा है। दोनों हाथ ऊपर उठाए आकाश की तरफ देख रहा है और कह रहा है, हे प्रभु! अरे, तू मुझे अपने पास बुला ले। अकेले रहते-रहते थक गया होगा, परेशान होता होगा। और मैं तेरे सब काम निपटा दूंगा! अरे, मैं कई काम जानता हूं!
मूसा तो बड़े हैरान हुए। ऐसी प्रार्थना उन्होंने सुनी न थी कभी, कि यह आदमी यह बता रहा है कि मैं कई काम जानता हूं। और तू थक गया होगा अकेले- अकेले! और मेरे बिना तेरा कैसे काम चलेगा? कब तक चलेगा? तू मुझे बुला ही ले। और देख, मैं मालिश भी कर देता हूं! चंपी भी कर देता हूं! तू थक जाएगा, तेरे पैर दबा दूंगा! पता नहीं कोई तुझे नहलाता-करता है या नहीं? मैं तुझे खूब घिस-घिस कर नहलाऊंगा! तुझे भरोसा न हो, तो मेरी भेड़ों को देख ले। अरे, ऐसी झकभक भेड़ें कहीं हैं? किसी और गड़रिए के पास हैं?
जरा बरदाश्त के बाहर होने लगा मूसा के कि यह क्या प्रार्थना हो रही है! और तब तो उसने हद्द कर दी। आखिर में बोला, और अगर तेरे जुएं वगैरह पड़ जाएंगे, तो वह भी निकाल दूंगा। अरे, भेड़ों तक के निकाल देता हूं।
मूसा ने कहा, चुप, नालायक, बदतमीज! ईश्वर को जुएं पड़ जाएंगे? और तू निकालेगा? और तू समझ रहा है, तू प्रार्थना कर रहा है! अगर एक शब्द भी मुंह के बाहर निकाला, तो वह चांटा मारूंगा कि छठी का दूध याद आ जाएगा। बंद कर यह प्रार्थना! किसने तुझे यह प्रार्थना सिखाई?
वह गड़रिया तो बेचारा एकदम पैरों पर गिर पड़ा मूसा के। उसने कहा कि हजरत, मुझे किसी ने सिखाई नहीं। मैं तो गरीब आदमी, बेपढ़ा-लिखा। खुद ही बना लेता हूं। और जब जैसी बन जाती है। अब आज यही बन गई। अब यह कोई रोज की थोड़े ही है। आप नाराज न हों। यह तो रोज बदल जाती है। जब जैसा मौका आ जाता है। जैसे सर्दी बहुत है, तो मैं कहता हूं कि देख, अगर मैं होता तेरे पास, कंबल ओढ़ा देता। या बहुत धूप पड़ रही होती है, तो मैं कहता हूं, देख छत्ता लगा

देता। अब कोई, पता नहीं, है भी वहां या नहीं! तू अकेला किस-किस मुसीबत में नहीं पड़ा होगा! कोई तेरा देखने वाला, रखवाला भी है या नहीं है! और मैं हूं। तू बुला क्यों नहीं लेता? अरे, तेरी आज्ञा की जरूरत है। इशारा कर दे। तो यह तो बदल जाती है। आप इतने नाराज न हों। यह तो समय-समय पर बदल जाती है। जैसे बीमारी फैल जाती है, कोई को हैजा हो गया, किसी को कुछ। तो मुझे डर लगता है, उसको हैजा न हो गया हो! तो मैं कहता हूं, तू बिल्कुल मत घबड़ा। अरे, मुझे जड़ी-बूटी मालूम! घोंट कर पिला दूंगा। एक मात्रा में तो इलाज कर दूंगा तेरा!
मूसा ने कहा, तू तो हद्द कर रहा है! तू तो और आगे बढ़ा जा रहा है! जिंदगी
हो गई मुझे प्रार्थना करते, जिंदगी हो गई प्रार्थना लोगों को समझाते, मगर तू गजब का धार्मिक आदमी मिला! ये नालायकी की बातें हैं, ये बंद कर। मैं तुझे प्रार्थना बताता हूं। यह प्रार्थना तू कर।
तो उसने कहा, जैसा आप कहें। आप प्रार्थना समझा दें।
प्रार्थना समझा दी। उसको समझा कर मूसा बड़ी प्रसन्नता से आगे बढ़े कि
एक भ्रष्ट आदमी को रास्ते पर लगाया। थोड़ी ही दूर गए थे कि आकाश से आवाज आई कि मूसा, मैंने तुझे पृथ्वी पर भेजा है इसलिए कि जो भटक गए हों उन्हें रास्ते पर ला, इसलिए नहीं कि जो रास्ते पर हों उनको भटका!
मूसा ने कहा, क्या कहते हैं! मैंने किसको भटकाया?
ईश्वर ने कहा, अभी तू उस बेचारे गड़रिए को भटका कर आया। उसकी स्वस्फूर्त प्रार्थना का मजा ही और था। मैं प्रतीक्षा करता था कि कब उसकी प्रार्थना हो, क्योंकि उसकी प्रार्थना बड़ी आनंददायी होती है। बड़ी चीजें गजब की कहता है! अब आज ही क्या गजब की बातें कह रहा था! और कितने प्रेम से कह रहा था! उसका प्रेम तो देख! कि तेरे जुएं बीन दूंगा! एक-एक जुआं निकाल दूंगा! एक नहीं बचने दूंगा! तू एक मौका तो दे मुझे! अरे, मेरी मान! तूने सब खराब कर दिया। अब वह एक झूठी प्रार्थना, थोथी प्रार्थना, जिसमें उसके प्राण नहीं होंगे, भाव नहीं होगा, रोज-रोज दोहराता रहेगा, तोते की तरह रटता रहेगा। तू वापस जा और उससे क्षमा मांग।
मूसा वापस गए। उसके पैरों पर गिरे। उससे क्षमा मांगी और कहा कि भैया, मैंने तुझे जो प्रार्थना बताई वह गलत थी। तेरी ही प्रार्थना ठीक है। तू अपनी प्रार्थना जारी रख। मेरी प्रार्थना कभी नहीं पहुंची परमात्मा तक, तेरी पहुंचती है। और मैंने जितनों को सिखाई, किसी की नहीं पहुंचती है। और तेरी पहुंचती है।
स्वस्फूर्त होनी चाहिए। आत्म-विभोर हो जाना ही पूजा है। मस्ती में नाचो, गाओ, गुनगुनाओ। यह क्या पागलपन की बातें हैं कि पूजा किए बिना अन्न खाता है, वह अन्न नहीं पाप खाता है! पूजा बिना जीओ मत; यह कोई अन्न खाने की बात नहीं है। अन्न कितनी दफे खाओगे! दिन में दो दफे खाओगे, दो दफे पूजा कर लेना। फिर बाकी समय क्या करोगे? बाकी समय में बदला निकाल लेना! जो-जो पूजा की है, उसको ठिकाने लगा देना बाकी समय में!
पूजा चौबीस घंटे की भाव-दशा है; अन्न खाने, न खाने का सवाल नहीं है। और किसी दिन अगर अन्न नहीं खाओगे, समझो उपवास किया, फिर पूजा करोगे कि नहीं? फिर जरूरत ही क्या पूजा की!
एक छोटे बच्चे से उसके स्कूल में पूछा--ईसाइयों का स्कूल--पादरी ने पूछा कि तेरे घर पर तू रात प्रार्थना करके सोता है न?
उसने कहा, कभी-कभी।
पादरी ने पूछा, कभी-कभी! और कभी-कभी क्यों नहीं करता?
उसने कहा कि जब मैं अकेला होता हूं, जब मुझे डर लगता है, तब करता हूं।
और जब कमरे में पिताजी सोए होते हैं, माताजी सोई होती हैं, क्यों करूं? जब डर ही नहीं लगता, तो करना किसलिए? प्रयोजन है।
तो पादरी बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, खाने के वक्त तू पूजा करता है कि नहीं?
उसने कहा, कभी नहीं। क्योंकि मेरी मां खाना तो बहुत अच्छा बनाती है। पूजा वगैरह किसलिए करनी! वह तो पूजा वे लोग करते हैं, जिनकी माताएं ऐसा खाना बनाती हैं कि भगवान का नाम याद आता है। एकदम मालूम होता है, राम नाम सत्य है!

उसने कहा कि मेरे पड़ोस में एक लड़का रहता है, वह रोज पूजा करता है। उसकी मां गजब का भोजन बनाती है! शुरू-शुरू में जब आई थी, अभी-अभी उसकी शादी हुई थी, पति घर लौटा, तो वह बड़ी उदास बैठी थी। तो पति ने पूछा, क्या हुआ? तो उसने कहा कि वह जो मैंने पराठे बनाए थे, वह बिल्ली खा गई।
तो पति ने कहा, मत घबड़ा। कल दूसरी बिल्ली खरीद लाएंगे। ऐसा क्या घबड़ाने की बात है! अरे, बहुत से बहुत बिल्ली मरेगी, और क्या होगा! तेरे पराठे खाए कोई, और इससे ज्यादा तो कुछ होने वाला नहीं। तो दूसरी बिल्ली ले आएंगे। इतनी क्यों चिंता कर रही है!
उस स्त्री का बेटा रोज प्रार्थना करता है। मगर मैं नहीं करता, क्योंकि मेरी मां तो अच्छा भोजन बनाती है!
लोगों की प्रार्थना भी सहेतुक है; उसके भीतर हेतु है। तो प्रार्थना नहीं है। प्रार्थना तो अहेतुक होनी चाहिए। इसका भोजन, न भोजन से क्या संबंध?
मगर इस देश में हजार तरह की गधा-पचीसी बातें चलती हैं। और इनका नाम धार्मिक बातें है! ये धार्मिक प्रवचन! और लोग बड़े भक्तिभाव से सुनते हैं! बुद्धि तो जैसे हम बेच ही चुके हैं। एक जमाना हो चुका जब बेच चुके। बुद्धि से हमने कोई नाता ही नहीं रखा है।
अब डोंगरे महाराज कहते हैं कि "ब्रह्म-दर्शन पहले मूर्ति में होता है।"
इन्हें ब्रह्म शब्द का भी अर्थ मालूम है? इन्हें ब्रह्म-दर्शन शब्द
का भी अर्थ मालूम है? और ब्रह्म की कोई मूर्ति देखी तुमने? राम की देखी होगी। कृष्ण की देखी होगी। बुद्ध की देखी होगी। महावीर की देखी होगी। मगर ब्रह्म की तुमने कोई मूर्ति देखी अब तक? मैंने तो नहीं देखी! सुनी भी नहीं कि ब्रह्म की कोई मूर्ति होती है!
इस देश में बहुत मूढ़ताएं हुईं, मगर यह मूढ़ता किसी ने भी नहीं की कि ब्रह्म की मूर्ति बनाई होती। क्योंकि ब्रह्म की मूर्ति बन ही नहीं सकती। ब्रह्म का अर्थ ही हैः अनिर्वचनीय, अव्याख्य, निराकार। ब्रह्म शब्द का अर्थ होता हैः वह, जो विस्तीर्ण ही होता चला गया है, फैलता ही चला गया है; जिसके फैलाव का कोई अंत ही नहीं है। कैसे उसकी मूर्ति बनाओगे?
हां, राम की मूर्ति होती है; कृष्ण की होती है; बुद्ध की होती है। ये व्यक्ति हैं। और इनकी मूर्ति हमने क्यों बनाई? इनकी मूर्ति हमने इसलिए बनाई, कि इन्होंने उस ब्रह्म को जाना, पहचाना। मगर यह ब्रह्म की मूर्ति नहीं है।
बुद्ध तो ऐसे ही हैं, जैसे मील के पत्थर पर लगा हुआ तीर का निशान। इशारा कर रहा है कि और आगे। हां, इशारा ठीक तरफ कर रहा है। यह बुद्ध की मूर्ति तो इशारा है ब्रह्म की तरफ; यह ब्रह्म की मूर्ति नहीं है।
और मूर्ति में पहले दर्शन नहीं होता। हां, जिसको दर्शन हो जाता है ब्रह्म का, उसे मूर्ति में भी वही दिखाई पड़ता है। मूर्ति में ही क्यों, उसे तो पत्थर-पत्थर में वही दिखाई पड़ता है। उसे तो वही दिखाई पड़ता है, और कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता।
ब्रह्म तो जीवन का नाम है। जिसे जीवन की पहली प्रतीति हो गई... । और यह प्रतीति अपने भीतर होती है, मूर्ति में नहीं होती। ब्रह्म का पहला अनुभव स्वयं के भीतर होता है। दर्शन नहीं होता ब्रह्म का; द्रष्टा की प्रतीति का नाम ब्रह्म की अनुभूति है। उसका दर्शन नहीं होता। दर्शन का तो मतलब है, बाहर। दर्शन का तो मतलब है, और। दर्शन का तो मतलब है, तुम्हारी दृष्टि का विषय। ब्रह्म तो वह है जो तुम्हारी दृष्टि के भीतर बैठा है, जो तुम्हारी दृष्टि है, जो तुम्हारे दर्शन की क्षमता है, जो तुम्हारे ज्ञान की ही क्षमता है। ब्रह्म कभी ज्ञेय नहीं बनता; वह तो सदा ज्ञाता है। दृश्य नहीं बनता, सदा द्रष्टा है। इसलिए तो हमने ऋषियों को द्रष्टा कहा है।
उसका कोई दर्शन नहीं होता। हां, जिस दिन तुम अपने द्रष्टा को पहचान लेते हो, उस दिन प्रतीकात्मक अर्थों में कह सकते हो, दर्शन हो गया। और जिसने अपने द्रष्टा को जान लिया, जिसने अपने भीतर होती हुई जीवन की अनाहत ध्वनि सुन ली, जिसने अपने भीतर नाद को पहचान लिया, जिसने अपने भीतर बहती

हुई जीवन की धारा से परिचय बना लिया, उसे फिर सब के भीतर वही दिखाई पड़ने लगता है।
बुद्ध ने कहा है, जिस दिन मैं बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ, मेरे लिए सारा जगत उसी दिन बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया। क्योंकि जो मैंने अपने भीतर पाया, देखा सब के भीतर मौजूद है।
इसलिए पहला ब्रह्म-दर्शन स्वयं के द्रष्टा-भाव में होता है। और फिर मूर्ति में ही नहीं, फिर तो प्रत्येक चीज उसी की मूर्ति है। फिर मस्जिद में भी वही, मंदिर में भी वही, गिरजे में भी वही, गुरुद्वारे में भी वही। राह के किनारे पड़े पत्थर में भी वही। पहाड़ में भी वही। नदी, झरनों में, पोखरों में भी वही। चांद-तारों में भी वही। फिर तो ब्रह्म अर्थात अस्तित्व।
"श्री डोंगरे महाराज ने बताया कि गणपति की पूजा करने के बाद ही पानी पीना चाहिए।"
क्या-क्या गजब की बातें! क्यों? गणपति को कोई एतराज है पानी पीने से? बाद में पीओ, तो समझ में भी आता है, क्योंकि गणपति ही एक ऐसे देवता हैं, जिनके हाथ में लड्डू है। लड्डू खाने के पहले ही पानी पी लोगे? अरे, बाद में पीओ, तो समझ में भी आता है। कि लड्डू उतर जाए; कहीं अटक न जाए; गटकने में सहायता मिलेगी।
मगर गणपति की पूजा करने के बाद ही पानी पीना चाहिए!
गणपति का महाराष्ट्र में काफी पागलपन है। महाराष्ट्रियंस को बात पकड़ में आती होगी। मराठी मानस! एकदम बात जंचती होगी, कि बिल्कुल ठीक! गणपति को बिना याद किए कैसे पानी पीओगे!
क्या संबंध गणपति का और पानी पीने से? हां, यह मेरी समझ में आता है कि पानी भी परमात्मा है। यह मेरी समझ में आता है कि भोजन भी परमात्मा है। यही उपनिषद कहते हैं, अन्नं ब्रह्म! यह नहीं कहते कि अन्न खाने के पहले ईश्वर की पूजा करनी चाहिए। अन्न ही ब्रह्म है। तो जल भी ब्रह्म है। पूजा क्या करनी है!
"और गणपति ही एक ऐसे देवता हैं, जिनके हाथ में लड्डू है।"
यह विशिष्टता की बात है। इसलिए गणपति की ही पूजा करनी चाहिए, क्योंकि उनके हाथ में लड्डू है। जिसको लड्डू चाहिए हो, वह उनकी पूजा करे। अगर उनकी पूजा नहीं की, लड्डू से चूकोगे।
चंदूलाल के घर एक आदमी ने आकर कहा... । उतरा कार से और चंदूलाल से बोला
कि आपकी पत्नी घर पर हैं या नहीं? क्योंकि सेठ बुलाकीराम के घर के यहां से लड्डू आए हैं।
पत्नी तो बाहर गई थीं, लेकिन चंदूलाल के मुंह में पानी आ अया। कलियुग में कहां लड्डू! तो उन्होंने कहा, पत्नी तो बाहर गई हैं, मगर कोई फिक्र न करो; सेठ बुलाकीराम को धन्यवाद देना और लड्डू तुम रख जाओ।
वह आदमी थोड़ा हिचकिचाया।
चंदूलाल ने कहा, नहीं, तुम चिंता मत करो। मैं चंदूलाल ही हूं। तुम्हारे लड्डू को कोई नुकसान नहीं होगा!
उसने कहा, नहीं, आप समझे नहीं। मेरा नाम लड्डू है! कोई लड्डू वगैरह नहीं लाया हूं। सिर्फ नाम मात्र लड्डू है!
वह जो गणेशजी के हाथ में रखा हुआ है, वह कोई लड्डू थोड़े ही है। नाम मात्र! उसमें कहां की मिठास?
वे बता रहे हैं, "उस लड्डू में मीठापन है!"
ये बड़ी ज्ञान की बातें बताई जा रही हैं! इस देश में तो ज्ञान के ऐसे झरने बह रहे हैं! क्या गजब की बात बताई कि लड्डू में मीठापन है! जैसे यह भी मूढ़ों को पता नहीं! माना कि शक्कर की कमी है, मगर लड्डू में मीठापन है, यह तो किसी को भी पता है।
और फिर उन्होंने और भी गजब का तात्विक ज्ञान निकाला कि "ज्ञान ही लड्डू है!"
छोटे-छोटे बच्चों को समझाओ ऐसी बातें, तो समझ में आता है। इसलिए तो मैंने कहा, डोंगरे का बालामृत पीओ। सत्य वेदांत, तुम्हें भी बहुत जंचेगा। स्वादिष्ट है। और शक्ति भी बढ़ती है, भक्ति भी बढ़ती है!

"उन्होंने बताया कि माताजी, शक्ति की पूजा भी आवश्यक है।"
कितनी पूजा करवाओगे भैया! पूजा ही करवाना है, कुछ और भी करवाना है? यह मूरखपन इस देश में इतना लंबा चला कि लोग पूजा ही करते रहे, और सब भूल ही गए। पूजा ही कर रहे हैं। पूजा ही करने में सब गंवाया। न लड्डू बचे, न मिठास बची, न ज्ञान बचा, कुछ भी न बचा। बस, पूजा ही करते रह गए।
"बिना शक्ति के जीवन बेकार है।"
इसको कहते हैं बात में से बात निकालना।
मैं एक विश्वविद्यालय में प्रोफेसर था। उसके जो कुलपति थे, वे प्रदेश
के विधानसभा के अध्यक्ष भी थे। नाम तो उनका कुंजीलाल था, मगर लोग कहते उनको चाबीलाल कहते थे! पता नहीं... ! अकल तो उनमें बिल्कुल नहीं थी, मगर चाबी जरूर उनके पास थी; खोल लेते थे चीजें! जब वे कुलपति हुए, तो उन्होंने जो पहला ही व्याख्यान दिया, वह था एक टूर्नामेंट का उदघाटन। सो उन्होंने कहा, खेल तीन तरह के होते हैं। आप तो जानते ही होंगे कि खेल तीन तरह के होते हैं। हाकी, फुटबाल और टूर्नामेंट! बात में से बात निकाल रहे हैं! क्या ज्ञान की बात कही, कि खेल तीन तरह के होते हैं!
अब यह देख रहे हो, डोंगरेजी महाराज क्या बातें निकाल रहे हैं!
"माताजी, शक्ति की पूजा भी आवश्यक है। बिना शक्ति के जीवन बेकार है।"
अब हमारी संन्यासिनी है प्रेम शक्ति, उसको समझ लेना चाहिए कि बिना शक्ति के जीवन बेकार है। और बिना प्रेम शक्ति के तो जीवन बिल्कुल ही बेकार है!
"शक्ति से ही भक्ति होती है।"
इसको कहते हैं बात में से बात निकालना। बाल की खाल निकालना। कुछ भी बके जा रहे हो! शक्ति से ही भक्ति होती है! सो डंड-बैठक लगाओ भैया! शक्ति बढ़ाओ। जब पहले शक्ति होगी, तब भक्ति होगी! डंड-बैठक लगाओ, मालिश करवाओ, लड्डू खाओ!
"और भक्ति से ध्यान में थिरता आती है।"
अब ध्यान में भी थिरता की जरूरत है? ध्यान का अर्थ ही होता है थिरता। ध्यान का मतलब ही है कि सब थिर हो गया। इस तरह के लोग, जैसे सन्निपात में कुछ बक रहे हों! डोंगरेजी महाराज हैं कि सन्निपात महाराज हैं?
"गणपति का ध्यान करने से विघ्न नहीं आता। और माताजी के ध्यान से शक्ति आती है।"
ठीक ही है। पिताजी, माताजी दोनों ही को सम्हाल लेना ठीक है! अरे, कोई गड़बड़ न हो जाए।
मुल्ला नसरुद्दीन मर रहा था। तो उसने एकदम हाथ जोड़ा और कहा कि हे प्रभु, कृपा करना। पाप मैंने बहुत किए, क्षमा करना। और फिर बोला कि हे शैतान, कृपा करना। पाप जितने करने चाहिए थे, नहीं किए। मगर फिर भी दया करना।
पास ही धर्मगुरु खड़ा था, जो आखिरी प्रार्थना करवाने आया था, उसने यह प्रार्थना सुनी। उसके कहा, चुप! यह क्या बात कर रहा है?
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, तू चुप! क्योंकि यह आखिरी वक्त है; कौन जाने किसके हाथ में पड़ना पड़े! अपना क्या बिगड़ता है? अरे, दोनों की प्रार्थना कर ली। जिसके हाथ में पड़ जाएंगे, उससे ही माफी मांग लेंगे, कि भई, वह दूसरे की छोड़ना, ख्याल न करना। बीमारी में, घबड़ाहट में, मरते वक्त कह गए होंगे। मगर हम करें ईश्वर की प्रार्थना और पड़ जाएं शैतान के हाथ में, फिर? फिर तू बचाएगा? हम करें शैतान की प्रार्थना, और पड़ जाएं ईश्वर के हाथ में, तो हम तो मारे गए! अभी यह कोई समय सोच-विचार का नहीं है। अभी तो दोनों की प्रार्थना कर लेना ठीक है। पता नहीं किसके हाथ में पड़ें! जिसके हाथ में पड़ेंगे, वहीं निपट-सुलझ लेंगे, कि दूसरे के बाबत माफी मांग लेंगे कि वह गलती थी, अज्ञान था! पैर पकड़ लेंगे; क्षमा मांग लेंगे!
ऐसे ही बताए जा रहे हैं वे। इधर गणपति को भी सम्हाल लो; उधर माताजी को
भी सम्हाल लो; फिर पिताजी को भी सम्हाल लो। सम्हालते चलो! तुम्हारी जिंदगी सम्हालने में ही व्यतीत हो जाएगी। इस सब बकवास में पड़ने की कोई भी आवश्यकता नहीं है। शांत बनो। मौन बनो। आनंदित होओ। जीवन में धन्य-भाव हो। बस, पर्याप्त है।

"श्री डोंगरे महाराज ने शिव को संयम की मूर्ति बताया।"
और यह तो गजब हो गया! यह तो आखिरी बात हो गई! शिव और संयम की मूर्ति?
"और कहा कि संयम से ही शक्ति बढ़ती है।"
देखते हो, बातों से वे बातें निकाले जा रहे हैं!
"इसलिए शिव की पूजा करनी चाहिए।"
शिव और संयम का क्या लेना-देना? ऐसे कोई संयमी तो दिखाई नहीं पड़ते। नहीं तो पार्वती के प्रेम में ही क्यों पड़े? और फिर बारात लेकर चले। और बारात देखी? उसमें डोंगरे महाराज जरूर रहे होंगे! वह बारात ही ऐसी थी! उसमें जितने इरछे-तिरछे आदमी, सब थे! आड़े-टेढ़े! वैसी बारात तो कभी निकली ही नहीं। वह तो गजब की बारात थी, अद्वितीय थी।
और फिर जब पार्वती की मृत्यु हो गई, तो कथा यह है कि शिव पार्वती की लाश को लिए बारह साल तक भारत भर में घूमते रहे। यह संयमी का लक्षण! जरा अपने शास्त्रों को तो उठा कर देखो। इतनी मूढ़ता तो मूढ़ से मूढ़ आदमी भी नहीं करता! अरे, बारह साल की बात कर रहे हो, बारह मिनट नहीं रुकता। इधर पार्वतीजी गईं कि उसने जल्दी से अरथी बांधी। और मोहल्ले भर के लोग भी सहायता करते हैं, कि चलो, बेचारा बचा! देर नहीं; जरा देर नहीं करते। एकदम चलते हैं लेकर।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरी। उतार रहे थे ताबूत को। जीने पर जरा संकरी जगह थी। और उतारते वक्त जीने पर दीवाल से जरा धक्का लग गया। और ढक्कन एकदम खुल गया और पत्नी उठ कर बैठ गई! मरी नहीं थी। इतनी जल्दबाजी कर दी कि अभी बेहोश ही थी कि वे ले चले! इसको कहते हैं संयम! अरे, क्या माया- मोह! और स्त्री है ही क्या, नरक का द्वार!
फिर तीन साल स्त्री जिंदा रही। स्त्रियां भी गजब की हैं! मर-मर कर भी मरती नहीं! मार कर ही मरती हैं! वैज्ञानिक भी चकित हैं कि स्त्रियां पुरुषों से पांच साल ज्यादा क्यों जीती हैं? अभी तक हिसाब नहीं लगा पाए वे। लेकिन पांच साल ज्यादा जीती हैं। अगर पुरुष सत्तर साल जीएगा, तो स्त्री पचहत्तर साल जीएगी। वह हमेशा पुरुष से आगे ही खड़ी रहती है!
वह तीन साल और जीयी। तीन साल बाद फिर मरी। फिर संयोग आया संयम का! जल्दी से ताबूत बांधा गया। और जब लोग ताबूत उतारने लगे, जैसे ही मोड़ पर पहुंचे जीने के, मुल्ला नसरुद्दीन चिल्लाया, भाइयो, जरा सम्हाल कर! क्योंकि तुम तो धक्का मार देते हो, मुसीबत में मैं पड़ता हूं! तुम्हारे बाप का क्या जाता है! पिछली बार तुम तो धक्का मारे, तीन साल मुसीबत किसने भोगी? और रोता भी जा रहा है, आंसू भी गिरा रहा है, कि अब मेरा क्या होगा! इसको कहते हैं संयम!
और ये शिवजी बारह साल तक पार्वती की लाश लिए घूमते रहे, इस आशा में कि
जी उठेगी! उसके अंग-अंग सड़ गए और गिरने लगे जगह-जगह। कथा यही है कि जहां- जहां उसके अंग गिरे, वहां-वहां एक तीर्थ निर्मित हुआ। सो भारत भर में घूमते रहे! शायद चिकित्सक की तलाश में घूम रहे थे, कि उरलीकांचन आ रहे थे, या क्या कर रहे थे! कहां जा रहे थे! सारे भारत में घूमते फिरे। बारह साल! जब हाथ में कुछ भी न बचा, जब आखिरी लाश का टुकड़ा भी गिर गया, तब कहीं उनका छुटकारा हो पाया।
संयमी? तो फिर उन्होंने, डोंगरे महाराज ने शिव के संबंध में कुछ पढ़ा नहीं। अगर शिव संयमी हैं, तो ये शिवलिंग सारे देश में क्यों खड़े किए गए हैं? यह संयम का प्रतीक है? अब मुझसे लोग कहते हैं कि मैं गड़बड़ बातें कहता हूं। अब मैं करूं भी तो क्या करूं? आंखें रहते आंखें बंद भी कैसे करूं? जहां देखो वहीं शिवजी विराजमान हैं! और तुम पुराणों में खोजो, तो तुम्हें कहानी मिल जाएगी कि यह शिवलिंग क्यों बना। यह इसलिए बना, संयम के कारण! ब्रह्मा और विष्णु, दोनों में किसी बात पर विवाद हो गया। और कुछ तय नहीं हो रहा था, तो उन्होंने सोचा कि शिवजी से चल कर निर्णय करवा लें। सो दोनों पहुंच गए। और जैसे द्वारपाल होते हैं, जैसे हमारे संत महाराज! अक्सर सोए रहते हैं! मतलब द्वारपालों का काम ही यह है। वे अभी-अभी जागे होंगे; सोच रहे होंगे, मामला क्या है! क्या मेरी चर्चा हो रही है?
द्वारपाल सो रहा होगा, और दोनों भीतर चले गए। और शिवजी प्रेम में संलग्न थे। संभोगातून समाधि कडे! वे संभोग से समाधि साध रहे थे! अब मैं भी

क्या करूं? संयमी आदमी, समाधि न साधें तो करें क्या! और ये दोनों ब्रह्मा और विष्णु हद्द निर्लज्ज, कि वहां खड़े ही रहे! अरे सज्जन आदमी हो, तो कम से कम आंखें बंद कर ले, रूमाल बांध ले। मगर वे यूं खड़े रहे टकटकी लगा कर! छह घंटे तक वे दर्शन करते रहे! और शिवजी तो शिवजी! भांग पीए होंगे, उन्हें कहां पता! पार्वती बेचारी थोड़ी सकुचाती भी होगी, मगर करे भी तो क्या करे! पति के खिलाफ तो जा भी नहीं सकती। पति यानी परमात्मा! और फिर ये शिवजी! और नाराज हो जाएं, कुछ हो जाएं! सो उसने भी मद्देनजर किया। खड़े रहो दोनों!
ये दोनों खड़े रहे, हटे नहीं। ये भी बड़े गजब के लोग! शिवजी भी संयमी, ये
भी संयमी। मुफ्त में ही फिल्म देखने मिले, तो क्यों न देखें! जब छह घंटे हो गए, द्वारपाल की नींद खुली; जूते उतरे देखे बाहर; भीतर पहुंचा; धक्के देकर इनको बाहर निकाला कि बाहर निकलो! कम से कम पूछ तो लेते!
वे दोनों गुस्से में आ गए बहुत। देवी-देवताओं का काम ही यह, गुस्से में आ जाना। इसलिए तो उनकी पूजा करने को डोंगरे महाराज कहते हैं। भैया, पानी भी पीओ, तो पूजा कर लेना पहले। क्योंकि गुस्से में आ जाएं! कि तुमने बिना पूछे पानी पीया? भोजन करो, पहले पूजा कर लेना। कोई गड़बड़ कर दें खड़ी! खास कर गणपति!
क्योंकि गणपति का जो पुराना वैदिक रूप है, वे बड़े विघ्नकारी देवता का रूप है, उपद्रवी का! उनका काम यही था कि जहां कुछ भी हो रहा हो मंगलकार्य, वहां जाकर उपद्रव खड़ा कर देना। घिराव कर देना। हड़ताल करवा देना। नारे लगवा देना। जिंदाबाद-मुर्दाबाद करवा देना। उनका जो वैदिक रूप है, वह विघ्नकारी का है। और इसीलिए चूंकि इतना विघ्नकारी कोई व्यक्ति हो, तो उसको पहले ही से सम्हाल लेना अच्छा; उसकी पूजा पहले ही कर लेनी चाहिए। इसलिए धीरे-धीरे विघ्नकारी गणपति मंगल के देवता हो गए! उलटी बात हो गई! इसलिए हर काम के शुरुआत में, ओम गणेशाय नमः। पहले! शास्त्र लिखो, कि बही लिखो, कि खाता लिखो, कुछ भी, लेकिन पहले उनको स्मरण कर लेना, ताकि वे विघ्न-बाधा न डालें। इसलिए वे जो विघ्न करने वाले देवता थे, विघ्न-नाशक हो गए! और मैं समझता हूं उनका मतलब कि कारण क्या था। कारण साफ है।
मैं खुद विद्यार्थी था स्कूल में, तो हमेशा हर क्लास में मुझे मानीटर बना देते थे! तभी मैं समझ गया कि यह गणेशजी का राज क्या है! मुझको उन्हें मानीटर बनाना ही पड़ता, नहीं तो इतनी विघ्न-बाधाएं खड़ी करता! उसका एक ही रास्ता था बचाव का कि मुझको ही मानीटर बना दिया। तो मैं तो कर ही नहीं सकता अब गड़बड़। और भी दूसरा कोई गड़बड़ नहीं कर सकता, क्योंकि वह मेरा जिम्मा कि गड़बड़ रोकना।
सिर्फ एक बार एक शिक्षक ने मुझे मानीटर नहीं बनाया। आखिर उनको प्रिंसिपल ने बुलाया और कहा कि तुम गलती कर रहे हो। बस, इसीलिए सब गड़बड़ हो रहा है।
उन्होंने कहा, क्या गलती कर रहा हूं?
इस लड़के को मानीटर बनाओ। नहीं तो तुम्हारी क्लास में कभी पढ़ाई-लिखाई नहीं होगी; उपद्रव ही होगा!
उन्होंने एक सीधे-सादे लड़के को मानीटर बना दिया। सीधा-सादा सोच कर बना दिया। यह भी कोई गणित है! उपद्रवी को बनाना पड़ता है, क्योंकि उपद्रव को रोकने की यह सुगमतम तरकीब है।
वही कथा है पूरी गणपति की। क्यों गणपति इतने आदृत हो गए? उसका कारण यह
है कि वे विघ्न उपस्थित न करें। उनसे यह कहना कि आप भर कृपा करना; और सब तो ठीक है। और सब को हम सम्हाल लेंगे; आप भर अपने को सम्हालना!
तो देवी-देवता तो बहुत जल्दी से कुपित हो जाते हैं, क्रुद्ध हो जाते हैं। विष्णु और ब्रह्मा दोनों एकदम नाराज हो गए। उनका अपमान हो गया। एक तो अपमान किया शिव ने कि वे छह घंटे तक खड़े रहे और उन्होंने देखा ही नहीं! और अपमान किया कि उनकी मौजूदगी में और ऐसा गर्हित कृत्य किया कि संभोग में लगे रहे। न लाज, न संकोच, न शिष्टाचार! यह कोई भारतीय संस्कृति है?
इसीलिए तो वे मुझे कच्छ में नहीं आने देते! क्योंकि भारतीय संस्कृति कहीं नष्ट न हो जाए! और मैं तुमसे कहे देता हूं, कच्छ जाना ही पड़ेगा। धर्मक्षेत्रे कच्छक्षेत्रे! अब कुरुक्षेत्र में ही कब तक धर्मक्षेत्र रहेगा? जगह बदलनी भी तो पड़ेगी!

नाराज हो गए बहुत कि यह तो बिल्कुल भारतीय संस्कृति के खिलाफ है। तो कुपित होकर अभिशाप दे दिया कि चूंकि तुमने ऐसा दुर्व्यवहार किया है, कि हम छह घंटे खड़े रहे और तुमने हमारी तरफ देखा भी नहीं और हमारे सामने इस तरह का अश्लील व्यवहार जारी रखा, तो हम तुम्हें यह अभिशाप देते हैं कि तुम हमेशा- हमेशा तक जननेंद्रियों के प्रतीक से ही जाने जाओगे।
यह पुराण-कथा है। इसलिए शिवलिंग। जननेंद्रिय उनका प्रतीक हो गया। और तुम कह रहे हो कि शिवजी को संयम की मूर्ति बताया। और कहा कि संयम से ही शक्ति बढ़ती है।
तुम्हारे देवी-देवता, अगर तुम उनकी कथाएं पढ़ो, तो देवी-देवता कहने योग्य भी नहीं। मगर कौन पढ़े? किसको चिंता पड़ी है? किसको फुर्सत है? किसको प्रयोजन है? इसलिए पंडित-पुरोहित तुमसे जो कहते रहते हैं, तुम सिर हिलाते रहते हो कि ठीक ही कहते होंगे। काश, प्रत्येक हिंदू वेद को पढ़ ले, तो वेद की प्रतिष्ठा समाप्त हो जाए। काश, प्रत्येक हिंदू सारे पुराणों को पढ़ ले, तो निन्यानबे प्रतिशत पुराण जला देने योग्य मालूम हों; क्योंकि उनमें जो है, सब गर्हित है।
लेकिन किसको पड़ी है! किसी को चिंता नहीं है। और ये जो धंधेबाज लोग हैं,
जो धर्म के नाम पर धंधा कर रहे हैं, वे कुछ भी कहे चले जाते हैं और कुछ भी अर्थ लगाए चले जाते हैं। और चूंकि तुम्हें कुछ बोध नहीं है, इसलिए तुम्हें जो भी अर्थ बता दिया जाता है, वही ठीक लगता है। और तुम्हारी भी आकांक्षा सिर्फ इतनी है कि तुम्हारा लोभ सिद्ध होना चाहिए। तो तुम्हारा लोभ सिद्ध होने के लिए माताजी की पूजा करो, शक्ति बढ़ेगी। शक्ति की पूजा करो, तो ध्यान बढ़ेगा। गणपति का ध्यान करो, तो वे विघ्न खड़ा नहीं होने देंगे। बस, इस तरह की बातें तुमसे कही चली जाती हैं। और तुम इसी घनचक्कर में पड़े रहते हो। भारत की प्रतिभा को नष्ट कर दिया इस तरह के लोगों ने। इस तरह के लोगों
से इस देश की मुक्ति चाहिए। मगर ये हैं तुम्हारे ऋषि-मुनि, ये हैं तुम्हारे धर्मगुरु, यही तुम्हें मार्ग दिखाते हैं। इसलिए मैं लगता हूं कि अधार्मिक हूं। लगता हूं कि मैं तुम्हें धर्म से च्युत कर रहा हूं।
मैं सिर्फ तुमसे स्पष्ट वही कह देना चाहता हूं, जो है, जैसा है।
अगर चाहते हो कि इस देश में धर्म का पुनरोदय हो, तो तुम्हें धर्म के नाम से चलने वाला सारा कूड़ा-करकट होली की तरह जला देना होगा। रावण को बहुत जला चुके तुम। अब अपने धर्म के कूड़ा-करकट को जलाना शुरू करो। रावण तो जल चुका, खतम हुआ। अब रावण को क्या बार-बार जला रहे हो! अब तो छांटो अपने शास्त्रों में से उस सब कचरे को जिसकी वजह से इस देश का पतन हुआ है; और जिसके कारण तुम अंधों की तरह दीन-दरिद्र, दुखी-भूखे, गुलाम, मानसिक रूप से गुलाम, आध्यात्मिक रूप से गुलाम...! आज पृथ्वी पर तुमसे ज्यादा बुरी अवस्था किसी की भी नहीं है।
मगर तुम्हें अकड़ है। तुम सोचते हो कि तुम बड़े धार्मिक, क्योंकि तुम गणेशोत्सव मनाते हो, काली की पूजा करते हो, शंकरजी की पूजा करते हो, हनुमानजी की पूजा करते हो!
इन सब पूजाओं से धर्म का कोई भी संबंध नहीं है। धर्म का संबंध है शांत होने से, मौन होने से, शून्य होने से। तुम्हारे भीतर शून्य का आकाश पैदा हो, तो ब्रह्म का अनुभव होगा। और वह अनुभव सारे अस्तित्व को आह्लाद से भर देगा।
जीवन तुम्हारा रसमय हो जाए, तो ही जानना कि तुम धार्मिक हो। बस परमात्मा की एक ही व्याख्या मुझे पसंद हैः रसो वै सः! वह रसरूप है!
आज इतना ही।

अनहद में बिसराम
छठवां प्रवचन

ऋषि पृथ्वी के नमक हैं

पहला प्रश्नः ओशो,
लौकिकानां हि साधूनामर्थ वागनुवर्तते।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।।
लौकिक साधुओं की वाणी अर्थ का अनुसरण करती है; लेकिन जो आदि ऋषि थे, उनकी वाणी का अनुसरण अर्थ करता था।
ओशो, वसिष्ठ के इस सूत्र को समझाने की अनुकंपा करें। क्या आदि ऋषि वास्तव में इतने ही श्रेष्ठ थे?

योग प्रतीक्षा!
साधु, और लौकिक! वह बात ही विरोधाभासी है। फिर साधु और असाधु में भेद क्या रहा? असाधु वह, जो लौकिक; जिसकी दृष्टि पदार्थ के पार नहीं देख पाती, पदार्थ में ही अटक जाती है; अंधा है जो। क्योंकि पदार्थ को ही देखने से बड़ा और क्या अंधापन होगा!
अस्तित्व परमात्मा से भरपूर है--सौंदर्य से, सत्य से, आनंद से; और तुम्हें केवल पदार्थ ही दिखाई पड़ता हो! एक बात जाहिर होती है उससे कि तुम्हारे पास सूक्ष्म को देखने की दृष्टि नहीं; सिर्फ स्थूल तुम्हारी पकड़ में आता है।
असाधु वह, जो स्थूल को ही पहचानता है। इतना ही नहीं, जो अपने अहंकार की रक्षा के लिए सूक्ष्म को इनकार भी करता है। क्षमा किया जा सकता है वह व्यक्ति, जो कहे कि मैं क्या करूं, अभी तो मुझे स्थूल ही दिखाई पड़ता है! हो सकता है, सूक्ष्म भी हो। खोजूंगा, तलाशूंगा, जिज्ञासा करूंगा। मैंने अपने चित्त के द्वार बंद नहीं कर लिए हैं। लेकिन वह व्यक्ति क्षमा नहीं किया जा सकता, जो कहता हो, पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। क्योंकि उसने सूक्ष्म के प्रवेश का मार्ग ही अवरुद्ध कर दिया। अब उसे व्यर्थ ही दिखाई पड़ेगा, सार्थक की कोई प्रतीति नहीं होगी।
इसलिए वसिष्ठ के इस सूत्र में पहला आक्षेप तो मुझे यह है कि वे कहते हैंः "लौकिकानां हि साधूनामर्थ वागनुवर्तते। वह जो लौकिक साधु है, उसकी वाणी अर्थ का अनुसरण करती है।"
लौकिक साधु जैसी कोई घटना ही नहीं होती। और अगर होती है, तो फिर उसे साधु न कहो। जिसको परमात्मा की जरा सी झलक भी न मिलती हो, उसे साधु कहोगे? जिसे किरण भी दिखाई न पड़ती हो, उसे आंख वाला कहोगे? जिसे सौंदर्य का बोध ही न होता हो, उसे कवि कहोगे? सौंदर्य-मर्मज्ञ कहोगे? जिसके जीवन में प्रेम की बूंदा-बांदी भी न हुई हो, उसे प्रेमी कहोगे?
लौकिक साधु तो सिर्फ पाखंडी है। यद्यपि यह सच है--और शायद इसीलिए वसिष्ठ ने यह सूत्र कहा--कि सौ साधुओं में से निन्यानबे लौकिक साधु हैं। ऐसा लगता है, वसिष्ठ कठोर नहीं होना चाहते होंगे, इसलिए बात को मिठास से कह दिया। कबीर जैसे न रहे होंगे।
कबीर ने कहा हैः कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
कि कबीर बाजार में खड़ा है, लट्ठ हाथ में लिए हुए।
कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर बारै आपना, चलै हमारे साथ।।
हो हिम्मत घर को जलाने की, तो आ जाओ, चलो हमारे साथ। लट्ठ लिए, कबीर कहते हैं, मैं खड़ा हूं बाजार में!
कबीर सीधी चोट करते हैं। उस चोट में कहीं कोई समझौता नहीं होता। वसिष्ठ सत्य को भी कहते हैं, तो लीप-पोत देते हैं। उसको भी थोड़ी सी मिठास, थोड़ी सी चासनी दे देते हैं!
लौकिक साधु? ऐसी कोई बात ही नहीं होती। लौकिक होगा, तो साधु नहीं। साधु होगा, तो लौकिक नहीं। यह तो विपरीत को एक साथ जोड़ देना हो गया। यह तो यूं हुआ, जैसे कोई कहे, अंधेरा दिन! यह तो आधी रात ऊगा हुआ सूरज हो गया!

लेकिन एक अर्थ में वसिष्ठ ठीक कहते हैं कि निन्यानबे साधु, सौ में से, ऐसे ही हैं। नाम-मात्र के साधु! साधु का वेश है, साधु की आत्मा नहीं। साधु का आवरण है, साधु का अंतस नहीं। और आवरण बड़ी सस्ती बात है। आचरण भी बड़ी सस्ती बात है। कोई कठिनाई नहीं है साधु के आचरण में। थोड़े अभ्यास की बात है। दो बार भोजन न किया, एक बार भोजन किया। यह न खाया, वह न पीया। या जैसा कल डोंगरे महाराज ने बताया कि पानी पीओ, तो पहले प्रभु का स्मरण करो। पानी भी पीओ, तो प्रभु का स्मरण करो। भोजन करो, तो प्रभु का स्मरण करो। अगर अन्न बिना प्रभु के स्मरण के खाया, तो पाप खाया! पानी बिना प्रभु के स्मरण के पीया, तो पाप पीया!
ऐसे एक महापुरुष से मेरा मिलना हो गया था। मैं आगरा से गुजर रहा था; जयपुर से लौटता था, आगरा में कोई छह घंटे का समय था गाड़ी बदलने में। एक मित्र बहुत दिन से पत्र लिखते थे कि कभी आगरा से गुजरें--और आप जरूर गुजरते होंगे, क्योंकि जयपुर की खबरें मिलती हैं; और यहां छह घंटे स्टेशन पर रुकना ही होता होगा, तो मेरे घर को ही पवित्र करें।
तो मैंने कहा, ठीक। उन्हें खबर कर दी।
जानता तो नहीं था, पहचानता तो नहीं था; पत्र से ही मुलाकात थी। जो सज्जन लेने आए थे, उन्होंने आते ही से कहा कि बस, जल्दी करिए! कहीं मेरे बड़े भाई न आ जाएं!
मैंने पूछा कि आप ही मुझे पत्र लिखते थे?
उन्होंने कहा कि नहीं, पत्र तो मेरे बड़े भाई लिखते हैं। मगर मेरी और उनकी जानी दुश्मनी है। यह मौका मैं नहीं दे सकता कि आपका स्वागत वे करें। सो मैं पहले से ही हाजिर हूं! बंटवारा हो गया है। आधे मकान में वे रहते हैं, आधे में मैं रहता हूं। और आपको तो मेरा ही आतिथ्य-ग्रहण स्वीकार करना पड़ेगा, क्योंकि मैं ही पहले आया हूं!
मैंने कहा, मुझे क्या फर्क पड़ता है! और आधा घर तुम्हारा, आधा बड़े भाई का! चलो, तुम्हारे साथ ही चल पड़ता हूं; तुम आ गए।
उनको लेकर बीच रास्ते पर ही पहुंचा था कि बड़े भाई आ गए! एकदम भागे हुए चले आ रहे थे! आते ही से बोल, ओम! मैंने पत्र लिखा था, उन्होंने कहा, और यह छोटा भाई आपको कहां ले जा रहा है? यह दुष्ट यहां भी आ गया! चलिए, बैठिए मेरे तांगे में!
छोटे भाई ने कहा कि देखिए, मैंने पहले ही कहा था कि जल्दी करिए। अगर बड़ा भाई आ गया, तो बस मुश्किल हो जाएगी!
और बड़ा भाई था भी पहलवान-छाप! छोटे भाई थे भी दुबले-पतले। तो बड़े भाई
ने आव देखा न ताव, उन्होंने तो सामान ही उतार कर मेरा भी हाथ पकड़ कर अपने तांगे में ही बिठा लिया! लेकिन एक उनकी खूबी थी कि कोई भी काम करते थे, तो पहले ओम कहते थे! मेरा हाथ पकड़ कर उतारा, तो ओम! मेरा बिस्तर उतारा, तो ओम! हालांकि कर रहे थे बिल्कुल गलत काम। क्योंकि वह छोटा भाई बेचारा चुपचाप खड़ा था। अब क्या कहे! और मैं देख रहा था कि अगर वे उसकी पिटाई भी करेंगे, तो पहले, ओम! और वही हुआ।
उनके घर पहुंच गया। बंटवारा कर लिया था घर का, लेकिन एक कक्ष बीच का, बड़ा कमरा था, वह खाली छोड़ रखा था; वह बांटा नहीं था। उसमें दोनों आ-जा सकते थे। बाकी तो प्रवेश असंभव था एक-दूसरे के घर में, मगर एक कमरा छोड़ रखा था। तो जैसे ही मैं बड़े भाई के घर में प्रविष्ट हुआ, दरवाजे पर ही उन्होंने कहा, ओम। आइए भीतर!
छोटे भाई ने अपने दरवाजे से कहा कि देखिए, आप इतनी कृपा करिए कि कम से
कम बीच के कमरे में रुकिए, वहां मैं भी आ सकता हूं, बड़े भाई भी आ सकते हैं। अगर आप उनके ही घर में रुके, तो मैं नहीं आ सकूंगा। मेरे घर में रुके, तो वे नहीं आ सकेंगे!
मैंने कहा, यह बात तो ठीक है।
लेकिन बड़े भाई ने कहा, ओम! और सामान उठा कर वे तो अपने घर में ही ले गए!
बड़े भाई फोटोग्राफर थे। सो उन्होंने कहा, इसके पहले कि छोटा भाई उपद्रव करे, और यह आएगा बार-बार दरवाजे पर और कहेगा कि मेरे घर आइए, और भोजन करिए; यह करिए, वह करिए; मैं आपकी तस्वीर उतार लूं। इसी के लिए असल में मैंने आपको पत्र लिखा था। यही एक आकांक्षा थी।

मैंने कहा, जैसी मर्जी! अब आपके हाथ में हूं, छह घंटे जो करना हो, करिए! तस्वीर भी क्या उतारी! हर चीज में ओम! बिल्कुल डोंगरे महाराज के भक्त थे! प्लग भी लगाएं, तो ओम! प्लग निकालें, तो ओम! मुझे कुर्सी पर बिठालें, तो ओम! कैमरा घुमाएं, तो ओम! प्लेट लगाएं, तो ओम! ओम से ही सब चीज शुरू हो!
एक कंघी ले आए और मेरे बाल बनाने लगे, और बोले, ओम!
मैंने कहा, देखें, मैं जैसा हूं, तुम मुझे वैसा ही छोड़ो!
एकदम नाराज हो गए। आदमी तो गुस्सेबाज थे ही। कहा, जैसी मर्जी! ओम कह कर कंघी फेंक दी और मेरे बाल एकदम छितरा दिए!
जब यह सब चल रहा था, तभी पड़ोस के एक सज्जन आ गए। उनको भी खबर मिल गई कि मैं आया हूं, तो आकर बैठ गए। यह फोटो उतर जाए, तो फिर वे मुझसे कुछ बात करना चाहते थे। तभी बड़े भाई की नौकरानी निकली, और उन सज्जन ने कहा कि बाई, एक गिलास पानी! गरमी के दिन थे। बस, एकदम बोले, ओम! अरे, मर्द बच्चा होकर शर्म नहीं आती स्त्री से पानी मांगते हो! नल सामने लगा है, भर लो और पी लो! मर्द होकर और स्त्री से पानी मांगना! फिर मेरी तरफ धीरे से बोले, ओम! यह मेरे भाई का दोस्त है। साले को ठीक किया!
ओम भी कहते जाते हैं!
ये जो तुम्हारे तथाकथित साधु हैं, ये ओम का उच्चार भी करते रहेंगे और
ओम के भीतर क्या-क्या नहीं भरा होगा! क्या-क्या नहीं उपद्रव होंगे! आचरण भी साध लेंगे, मगर ठीक आचरण से विपरीत इनका भीतर का जीवन होगा--ठीक विपरीत। दो दिगंबर जैन मुनियों में मार-पीट हो गई। होनी तो असंभव ही चाहिए यह बात। एक तो दिगंबर जैन मुनि, जिसने सब छोड़ दिया, कपड़े भी छोड़ दिए, अब क्या मार-पीट को बचा! लोग कहते हैंः जर, जोरू, जमीन, झगड़े की जड़ तीन! वे तो तीनों ही छूट गईं! मगर गजब के लोग हैं, फिर भी झगड़ा निकाल लिया! न जर है, न जोरू है, न जमीन है। कुछ भी नहीं है। दिगंबर जैन मुनि--कपड़े भी नहीं हैं, लंगोटी भी नहीं है--अब झगड़े का क्या उपाय है!
उसी दिन मुझे पता चला कि वह सूत्र पर्याप्त नहीं है। अरे, झगड़ा ही करना हो तो आदमी कर लेगा। जर, जोरू, जमीन की कोई जरूरत नहीं। जर, जोरू, जमीन तो बहाने हैं, खूंटियां हैं। झगड़ा टांगना है, कहीं भी टांग दो। खूंटी हुई, खूंटी पर टांग दो। न हुई, तो खीली पर टांग दो। खीली न हुई, तो खिड़की पर टांग दो, कुर्सी पर टांग दो। नहीं तो अपने ही कंधे पर टांग लो। मगर टांग लोगे। कुछ न कुछ उपाय... !
झगड़ा कहां हुआ? दोनों गए थे सुबह मल-विसर्जन को। एकांत में झगड़ा हो गया। एक-दूसरे की पिटाई कर दी। पिटाई काहे से की? और तो कुछ था नहीं; पिच्छी रखते हैं जैन मुनि। पिच्छी रखी जाती है कि कोई चींटी भी न मर जाए। पिच्छी में ऊन का बना हुआ गुच्छा होता है। छोटी सी डंडी होती है, ऊन का गुच्छा होता है। तो जैन मुनि कहीं बैठे, तो पहले पिच्छी से वह जगह को साफ कर ले। ऊन का गुच्छा इसलिए ताकि पिच्छी की चोट भी न लगे। अगर चींटी भी हो, तो ऊन के धक्के से उसे कोई चोट न लगे, हटा दी जाए; फिर बैठे। स्थान को साफ करके बैठे।
वही पिच्छी थी उनके पास। उसमें डंडा भी होता है लेकिन पिच्छी में! यह महावीर ने सोचा ही न होगा कि पिच्छी तो ठीक है कि चींटी बच जाएंगी, मगर डंडा! कभी मौका आ गया, तो काम आ जाएगा। आ गया उस दिन काम। एक-दूसरे ने पिच्छी से पिटाई कर दी! वह डंडे का उपयोग हो गया!
कुछ गांव के ग्रामीण लोगों ने पकड़ लिया उनको एक-दूसरे को मारते हुए।
वे पुलिस थाने ले गए। बामुश्किल उनको बचाया गया। जैनियों में बड़ी हड़कंप मची, क्योंकि उनके जैन मुनि इस तरह का व्यवहार करें, जो निरंतर आत्मज्ञान की बात करते हैं! जो जीवन को तपाते, तपश्चर्या करते, साधना करते!
और इनके झगड़े का कारण क्या? जब पुलिस ने पूछताछ की, तो जो झगड़े का कारण
था वह और भी बड़ा मजेदार था! वह जो पिच्छी का डंडा था, बांस का डंडा, उसको भीतर से पोला करके उसमें सौ-सौ के नोट भरे हुए थे! वह उनका बटुआ था, वह जो डंडा था!
अगर जैन मुनियों की पिच्छी देखो, तो डंडा जरूर गौर से देख लेना! क्योंकि वही है उनके पास। और कोई उपाय नहीं है मगर। आदमी इतना होशियार है कि उसको डंडे को पोला करके अंदर उसमें गिड्डियों पर गिड्डियां उन्होंने

भर रखी थीं! झगड़ा यह हो गया कि बंटवारा, जो बड़े मुनि थे वे ज्यादा चाहते थे छोटे मुनि से। सीनियारिटी का सवाल था! और छोटे मुनि भी बराबर चाहते थे; नहीं तो, वे कहते थे, हम पोल-पट्टी उखाड़ देंगे! शड्यंत्र में कहीं कोई सीनियर-जूनियर होता है! यह कोई सरकारी दफ्तर थोड़े ही है!
इसी पर झगड़ा हुआ। इसी पर मार-पीट हो गई। रुपए भी पकड़े गए। और जैनियों
ने किसी तरह रिश्वत खिला कर मामले को दबाया कि कहीं यह पता न चल जाए सबको! मेरे पास आए कि क्या करना चाहिए?
मैंने कहा कि अखबारों में खबर देनी चाहिए! फोटो छापने चाहिए!
उन्होंने कहा, आप क्या कहते हो! अरे, हम यह पूछने आए हैं कि इसको किस तरह रफा-दफा करना! क्योंकि मुनि की प्रतिष्ठा का सवाल है। उसमें हमारे धर्म की भी प्रतिष्ठा का सवाल है।
मैंने कहा कि मेरे लिए भी धर्म की प्रतिष्ठा का सवाल है और मुनि की प्रतिष्ठा का सवाल है। निन्यानबे इस तरह के मुनि उस एक मुनि को डुबाए दे रहे हैं, जो सच्चा होगा। उसको बचाना है कि इन निन्यानबे को बचाना है! लेकिन लोग निन्यानबे को बचाने में लगे हैं; एक डूबे तो डूब जाए! संख्या का मूल्य है। हर जगह संख्या का मूल्य है।
तो वसिष्ठ इस अर्थों में, प्रतीक्षा, ठीक कहते हैं कि लौकिकानां हि साधूनामर्थ वागनुवर्तते। वे जो लौकिक साधु हैं... !
लौकिक अर्थात जो साधु नहीं हैं, बस दिखाई पड़ते हैं; नाम-मात्र को हैं। लेबिल साधु का है, भीतर कुछ और है। भीतर तो लोक ही है। अभी अलोक से कोई संबंध नहीं हुआ; अलौकिक से कोई नाता नहीं हुआ।
मगर यही तो तुम्हें मिलेंगे। फिर चाहे मुक्तानंद हों, चाहे अखंडानंद हों, और चाहे स्वरूपानंद हों, यही तुम्हें मिलेंगे। लौकिक साधु ही तुम्हें मिलेंगे। और तब यह सूत्र बड़ा सार्थक है। लौकिक साधु की बात को तुम ठीक से ख्याल में ले लो, तो सूत्र में बड़ी सार्थकता है।
सूत्र कहता है, ऐसे साधुओं की वाणी अर्थ का अनुसरण करती है।
ऐसे साधुओं के पास अपनी कोई अंतरवाणी तो होती नहीं। अपना कोई अनुभव
तो होता नहीं। ऐसी तो कोई प्रतीति होती नहीं कि जिस शब्द को छू दें, वह जीवित हो जाए। ऐसा कोई जादू तो होता नहीं कि मिट्टी को छुएं और सोना हो जाए।
तो ऐसे व्यक्तियों की वाणी तो शास्त्रों का अनुसरण करेगी। शास्त्र में उनका अर्थ है; जीवन में उनके कोई अर्थ नहीं है। अर्थ गीता में है, वेद में है, कुरान में है, बाइबिल में है, धम्मपद में है। अर्थ स्वयं में नहीं है। और जो अर्थ स्वयं में नहीं है, वह अनर्थ है। उसे अर्थ कहो ही मत। क्योंकि गीता में जो अर्थ है, वह कृष्ण का अर्थ होगा, वह कृष्ण का अनुभव होगा। वह अर्जुन का भी नहीं बन सका! तो तुम्हारा क्या बनेगा?
कभी सोचो इस बात को। कितना सिर मारा कृष्ण ने, तभी तो गीता बनी! काफी सिर मारा! मगर अर्जुन भी बचाव करता गया। वह भी दांव-पेंच लगाता रहा। बड़ी देर तक यह मल्लयुद्ध चला। और अर्जुन ने जब अंततः यह कहा कि मेरे सब संदेह गिर गए; निरसन हो गया मेरे संदेहों का; तो भी मुझे भरोसा नहीं आता! मुझे तो यही लगता है कि वह घबड़ा गया कि बकवास कब तक करनी! मतलब यह आदमी मानेगा नहीं। यह खोपड़ी खाए चला जाएगा। यहां से बचाऊंगा, तो वहां से हमला करेगा। तर्क उसका हार गया, वह स्वयं नहीं हारा। क्योंकि महाभारत की कथा इस बात को प्रकट करती है कि जब पांडव मरे और उनका स्वर्गारोहण हुआ, तो सब गल गए रास्ते में ही; अर्जुन भी गल गया उसमें! सिर्फ युधिष्ठिर और उनका कुत्ता, दो पहुंचे स्वर्ग के द्वार तक। अगर अर्जुन को कृष्ण की बात समझ में आ गई थी और जीवन रूपांतरित हो गया था, तो गल नहीं जाना चाहिए था। महाभारत की कथा इस बात की सूचना दे रही है कि अर्जुन को भी अनुभव नहीं हुआ। मान लिया, कि अब कब तक तर्क करो! कब तक प्रश्न करो! इससे बेहतर है निपट ही लो। उठाओ गांडीव, जूझ जाओ युद्ध में। मरो, मारो, झंझट खत्म करो। इस आदमी से बचाव नहीं है! इस आदमी के पास प्रबल तर्क हैं।
मगर तर्क से कोई रूपांतरित नहीं होता। अर्जुन भी रूपांतरित नहीं हुआ। कृष्ण का अर्थ अर्जुन का भी अर्थ नहीं बन सका, जो कि आमने-सामने थे; जिनमें मैत्री थी, संबंध था, एक-दूसरे के प्रति सदभाव था। तो तुम्हारे और कृष्ण के

बीच तो पांच हजार साल का फासला हो गया। तुम क्या खाक कृष्ण के अर्थ को अपना अर्थ बना पाओगे! तुम्हें तो अपना अर्थ खुद खोजना होगा।
हां, यह बात जरूर सच है, तुम अगर अपना अर्थ खोज लो, तो तुम्हें कृष्ण का अर्थ भी अनायास मिल जाएगा। क्योंकि सत्य के अनुभव अलग-अलग नहीं होते। सत्य को मैं जानूं, कि तुम जानो, कि कोई और जाने; अ जाने, कि ब जाने, कि स जाने; सत्य का अनुभव तो एक होता है। सत्य का अनुभव हो जाए, तो बाइबिल और वेद और जेन्दावेस्ता, सब के अर्थ एक साथ खुल जाएंगे।
लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या आपने ये सारे शास्त्र पढ़े हैं?
अब जैसे यह सूत्र मैंने इसके पहले कभी पढ़ा ही नहीं। यह वसिष्ठ का सूत्र भी है, यह भी मुझे पक्का नहीं। यह तो जो प्रश्न पूछा है प्रश्नकर्ता ने, उसको मान कर मैं उत्तर दे रहा हूं। मैंने यह सूत्र कभी पढ़ा नहीं। पढ़ने की कोई जरूरत नहीं।
लोग मुझसे पूछते हैं, क्या आपने ये सारे शास्त्र पढ़े हैं?
पढ़ने की कोई जरूरत नहीं है। एक शास्त्र मैंने पढ़ा--अपने भीतर। और उसको
पढ़ लेने के साथ ही सारे शास्त्रों के अर्थ प्रकट हो गए। अब तुम कोई भी शास्त्र उठा लाओ, मेरे पास अपनी रोशनी है जिसमें मैं उसका अर्थ देख लूंगा। इससे क्या फर्क पड़ता है! मेरे पास दीया जला हुआ है, तुम वेद लाओगे, तो वेद उस दीए की रोशनी में झलकेगा। और तुम कुरान लाओगे, तो कुरान झलकेगी। और तुम धम्मपद लाओगे, तो धम्मपद झलकेगा। तुम जो भी ले आओगे, उस रोशनी में झलकेगा। दीए को क्या फर्क पड़ता है कि वेद सामने रखा है, कि कुरान, कि बाइबिल! दीए की रोशनी तो पड़ेगी सब पर समान, सम-भाव से।
तो मैं तो यह भी नहीं कह सकता कि यह वसिष्ठ का सूत्र ही है। हो या न हो, इतना साफ है कि वह जो लौकिक साधु है, जिसको वसिष्ठ ने लौकिक साधु कहा है, उसके पास कोई अपनी अनुभूति की संपदा नहीं होती। भीतर तो वह बिल्कुल थोथा होता है। ईश्वर को मानता है, जानता नहीं। और जब तक जाना नहीं, तब तक मानने में कुछ मूल्य है? तब तक मानना असत्य है, बेईमानी है, पाखंड है। जो जाना है, बस उसको मानना। और जो न जाना हो, तब तक साफ रहे कि मैंने नहीं जाना है, तो कैसे मानूं? कम से कम ईमानदारी तो मत गंवा देना। धार्मिक होने के लिए कम से कम ईमानदारी तो अनिवार्य है।
और तुम्हारे तथाकथित विश्वासियों ने उतनी निष्ठा भी नहीं बरती। कोई हिंदू बन गया, कोई मुसलमान, कोई ईसाई, कोई जैन। किसी ने जाना नहीं। यहां तक कि जो नास्तिक बना बैठा है, उसने भी कुछ जाना नहीं; उसने नास्तिकता उधार ले ली है। किसी ने आस्तिकता उधार ले ली है! तुम्हारा सारा जीवन उधार है! स्वभावतः, तुम्हारी वाणी किसी और के अर्थ का अनुसरण करेगी। तुम किसी
और का गीत गाओगे। गीत तो गा लोगे, मगर वह थोथा होगा। उसमें कोई गहराई न होगी, ऊपर-ऊपर होगा। शब्द ही शब्द होंगे, शब्दों के भीतर कोई संपदा न होगी। बुझे हुए दीयों की कतार होगी, मगर एक भी दीया जला हुआ नहीं होगा। क्योंकि अगर एक दीया भी जला हो, तो पूरी कतार ही जलाई जा सकती है, सारी दीपावली मनाई जा सकती है।
तो यूं सूत्र ठीक है; सिर्फ लौकिक साधु शब्द पर मेरा एतराज है। उसे साधु नहीं कहना चाहिए। समय आ गया कि हम उसे साधु न कहें। उसकी दृष्टि लौकिक है, तो क्यों साधु कहना? हां, यह हो सकता है, घर छोड़ कर चला गया हो। लेकिन घर छोड़ कर गया, वह भी लौकिकता है।
कैसा मजा है! एक तरफ तो ये तुम्हारे साधु कहते हैंः संसार माया। और दूसरी तरफ कहते हैंः संसार त्याग करो! माया का भी त्याग हो सकता है? जो है ही नहीं, उसका भी त्याग हो सकता है? यह क्या पागलपन की बात है!
रात तुमने सपना देखा कि तुम सम्राट थे। बड़ा तुम्हारा साम्राज्य था। स्वर्ण तुम्हारे महलों में ढेरों से भरा था। हीरे-जवाहरात के अंबार लगे थे। और सुबह तुम्हारी आंख खुली; तुम जाग गए। और तुमने पाया कि वह सपना था! फिर क्या तुमसे यह कहना होगा कि भैया, सपने का अब त्याग करो! छोड़ो सपने को; वह सपना था! और क्या तुम यह कहोगे, छोड़ेंगे भाई। धीरे-धीरे छोड़ेंगे। अभी कैसे छोड़ें! शास्त्र के अनुसार छोड़ेंगे। पचहत्तर वर्ष की उम्र में संन्यास लेंगे, तब छोड़ेंगे! अभी कैसे छोड़ दें! अभी तो भोग लेने दो थोड़ा। अभी तो यह स्वर्ण-महल, ये हीरे-जवाहरात, यह साम्राज्य, यह मजा-मौज, अभी तो

भोग लेने दो! अभी तो मैं जवान हूं। अभी छोड़ने की बात न करो। माना कि तुम जो कहते हो, ठीक ही कहते हो; ठीक ही कहते होओगे। क्यों तुम गलत कहोगे! क्यों तुम मुझे भरमाओगे! तुम साधु पुरुष हो! नमन करता हूं; चरण छूता हूं। तुम्हारी पूजा करूंगा, और याद रखूंगा। मगर समय पकने दो। जब पचहत्तर साल का हो जाऊंगा, तब इस सपने का बिल्कुल त्याग कर दूंगा। अरे, छोड़ना तो है ही। संसार माया है। कौन नहीं जानता है! मगर अभी नहीं। अभी समय नहीं। अभी समय आया नहीं। क्या तुम ऐसा कहोगे?
सपने को सपने की तरह जानने में ही सपना छूट गया। इसलिए मैं अपने संन्यासी को संसार छोड़ने को नहीं कहता। मैं कहता हूं, जब सपना ही है, तो छोड़ना क्या!
छोड़ना नहीं है, जागना है। भागना नहीं है, जागना है।
सदियों से तुम्हें भगोड़ापन सिखाया गया है। और भागने का अर्थ है, मूल्य बदलते नहीं; मूल्य वही के वही रहते हैं। कुछ लोग धन की तरफ दौड़े जा रहे हैं। उनका मूल्य भी धन है--कितना इकट्ठा कर लें! और फिर कुछ लोग हैं जो धन छोड़ कर भागे जा रहे हैं। उनका मूल्य भी धन है; उनकी कसौटी भी धन है-- कितना छोड़ दें! तुम त्यागियों को भी नापते हो, तो तराजू वही। राकफेलर को और बिड़ला को और टाटा को भी नापते हो, तो तराजू वही। और महावीर को और बुद्ध को नापते हो, तो भी तराजू वही! असली सवाल तराजू का है।
जैन शास्त्र वर्णन करते हैं, इतने हाथी, इतने घोड़े, इतना धन, इतना महल,
सब महावीर ने छोड़ दिया! यह हाथी-घोड़ों की गिनती, ये धन के अंबार, इनकी चर्चा शास्त्र इतने रस से करते हैं कि बात जाहिर है, वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि हमारे महावीर कोई छोटे-मोटे साधु नहीं थे; बड़े साधु थे! महासाधु थे! देखो, कितना छोड़ा!
मापदंड क्या है? इसीलिए तो कोई गरीब आज तक, न तो हिंदुओं ने उसे अवतार माना, न बौद्धों ने उसे बुद्ध माना, न जैनों ने उसे तीर्थंकर माना! क्योंकि कसौटी ही पूरी नहीं होती। सवाल यह है, छोड़ा क्या? कितना छोड़ा? अब तुम कहो, हमने एक लंगोटी छोड़ दी। तो वे कहेंगे, भाग जाओ यहां से! लंगोटी छोड़ कर और तीर्थंकर होने के इरादे रख रहे हो! राजपाट कहां है? हाथी-घोड़े कितने हैं? अब तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी भविष्य में। तीर्थंकर होने ही मुश्किल हो जाएंगे, क्योंकि राजपाट न रहे। अब तो सिर्फ इंग्लैंड में ही तीर्थंकर हो सकते हैं! या ताश के पत्तों में! कहते हैं, बस पांच ही राजा बचेंगे दुनिया मेंः चार तो ताश के पत्तों के और एक इंग्लैंड का। और इंग्लैंड का राजा ताश के पत्तों से भी गया-बीता है। ताश के पत्तों में भी कुछ अकड़ होती है; इंग्लैंड के राजा में वह भी नहीं! वह सिर्फ नाम-मात्र का!
तो अब तो इंग्लैंड में ही आशा समझो कि बुद्ध पैदा हों; तीर्थंकर पैदा हों; अवतार पैदा हों। भारत में तो असंभव। अब तो राजपाट रहे नहीं। अब साम्राज्य नहीं, हाथी-घोड़े नहीं, छोड़ोगे क्या? क्या कहोगे कि मैंने एक साइकिल छोड़ दी! कम से कम घोड़ा तो हो! क्या छोड़ोगे? और साइकिल छोड़ कर दावा करोगे तीर्थंकर होने का! लोग कहेंगे, लाज-संकोच न आई! अरे, शरम खाओ! है क्या तुम्हारे पास?
इसीलिए तो कोई कबीर को तीर्थंकर नहीं कहता। हालांकि कबीर में क्या कमी है किसी तीर्थंकर से! मगर कैसे कबीर को तीर्थंकर कहो? जुलाहे! छोड़ने वगैरह को कुछ है ही नहीं। पकड़ने को ही नहीं है; छोड़ने को कहां से लाओ! रोज बुन लेते हैं कपड़ा, रोज बेच लेते हैं। बस, किसी तरह खाना-पीना चल जाए। वह भी पूरा नहीं चल पाता; उसमें भी बड़ी झंझटें आ जाती हैं। बड़ी अदभुत कहानी है; सत्य वेदांत ने लिख कर मुझे भेजी है। बहुत प्यारी है। खूब सोचने जैसी है। और सिर्फ कबीर जैसे आदमी की जिंदगी में हो सकती है। कबीर की कीमत आंकनी मुश्किल है।
कहानी यह है कि कबीर को तो जो भी घर में आ जाए--और सुबह से बहुत से लोग आ जाते! कबीर की मस्ती में कौन न डूबना चाहे! कबीर के आनंद में कौन भागीदार न होना चाहे! दूर-दूर से लोग आ जाते। सुबह से कीर्तन छिड़ जाता। नाच होता, गीत होता। भीतर की शराब बहती। लोग मदमस्त होकर पीते। फिर भोजन का समय हो जाता, तो कबीर की आदत थी, वे लोगों से कहते कि भैया, यूं ही मत चले जाना। अरे, भोजन तो कर जाओ। अब आ ही गए, तो भोजन कर जाओ।

कभी दो सौ आदमी, कभी तीन सौ आदमी, कभी पांच सौ आदमी। गरीब कबीर की हैसियत क्या! बामुश्किल दिन भर कपड़ा बुन कर कितना बुनोगे? उधारी चढ़ती जाती! पत्नी परेशान, बेटा परेशान! एक दिन यह हालत हो गई कि जब पत्नी बाजार गई और दुकानदार से उसने भोजन के लिए प्रार्थना की कि घर में दो सौ आदमी बैठे हैं और मेरे पति ने निमंत्रण दे दिया है! मैं पीछे के दरवाजे से भाग कर आई हूं! जल्दी से कुछ चावल दो, घी दो, आटा दो।
उस दुकानदार ने कहा, अब बहुत हो गया। पहले का कर्ज चुकाओ। यह कर्ज बढ़ता ही जा रहा है। यह चुकेगा कैसे? मेरी दुकान तुम डुबा दोगे! यह कबीर का तो भजन चले और मेरा भंडा फूटा जा रहा है। कबीर तो हर किसी को निमंत्रण दे देते हैं! कबीर को पता है कि बर्बादी मेरी हो रही है! यह चुकेगा कैसे? कर्ज इतना हो गया है कि अब मैं और नहीं दे सकता।
पत्नी ने कहा, कुछ भी करो, आज तो देना ही होगा; इज्जत का सवाल है। मैं किस मुंह से जाकर कहूं! लोग बैठे हैं। भोजन तो कराना ही होगा।
उस दुकानदार की बहुत दिन से कबीर की पत्नी पर नजर थी। कबीर की पत्नी थी, सुंदर रही होगी। कबीर जैसे व्यक्ति की पत्नी हो, असुंदर भी रही होगी तो सुंदर हो गई होगी। कबीर का संग-साथ मिला होगा, रंग-रूप निखर आया होगा, प्रसाद उतर आया होगा। जहां चौबीस घंटे कबीर के आनंद की वर्षा हो रही थी, वहां कोई कुरूप कैसे रह जाएगा! सुंदर थी, बहुत सुंदर थी। नजर तो दुकानदार की बहुत दिन से थी, आज मौका देख लिया उसने कि आज यह फंस गई। उसने कहा कि अगर तेरी सच में ही ऐसी निष्ठा है, तो वायदा कर कि आज रात मेरे पास सोएगी। तो सारा कर्ज समाप्त कर दूंगा।
पत्नी ने कहा, जैसी मर्जी। भोजन तो कराना ही होगा।
कबीर की ही पत्नी थी। कोई साधारण लौकिक साधु की पत्नी नहीं थी। कबीर
की ही पत्नी थी। यह कबीर के ही योग्य थी बात। उसने कहा, ठीक है। अगर तुझे इससे ही हल हो जाता हो, तो ठीक है। यह निपटारा हुआ। और यह अच्छा रास्ता मिल गया। तूने पहले ही क्यों न कहा! यह रोज-रोज की परेशानी कभी की मिट गई होती। ठीक है, सांझ मैं आ जाऊंगी।
वह तो ले आई। उसने सब को भोजन करवाया। सांझ वर्षा होने लगी। बड़े जोर
से वर्षा होने लगी। वह सजी-संवरी बैठी। कबीर ने पूछा, कहीं जाना है या क्या बात है? तू सजी-संवरी बैठी है। बरसा जोर से हो रही है।
उसने कहा, जाना है, और जरूर जाना है। तुमसे क्या छिपाना है!
इसको प्रेम कहते हैं। तुमसे क्या छिपाना है!
पूरी कहानी कह दी कि यूं-यूं मामला है। कर्ज बहुत बढ़ गया है। आज दुकानदार देने को राजी न था। उसने तो कहा, आज रात अगर तू मेरे पास आकर रुक जाए पूरी रात, तो सारा कर्ज माफ कर दूंगा। तो कुंजी हाथ लग गई। अब कोई चिंता नहीं। अब तुम जितनों को निमंत्रण देना हो दो। यह मूरख इतने दिन तक बोला क्यों नहीं! यह बोल देता, तो कभी की बात ही खतम हो जाती। यह रोज-रोज की अड़चन तो न होती। तो मुझे जाना है।
कबीर ने कहा कि बरसा बहुत जोर की हो रही है। मैं तुझे छोड़ आता हूं!
यह सिर्फ कबीर ही कह सकते हैं। कबीर ने छाता लिया, पत्नी को छाते में छिपाया, उसे ले गए। और कहा कि तू भीतर जा, मैं बाहर बैठा हूं, क्योंकि बरसा बंद हो नहीं रही। जब निपट चुके, तो मैं तुझे घर वापस ले चलूंगा। रात भी अंधेरी है; बरसा भी जोर की है; तो मैं यहां बाहर छप्पर में बैठा रहूंगा! कबीर छप्पर में बैठ रहे। पत्नी ने दरवाजे पर दस्तक दी। दुकानदार वैसे
तो बड़ी उत्सुकता से राह देख रहा था, लेकिन डर भी रहा था। डर इसलिए रहा था कि पत्नी ने इतनी सहजता से हां भर दी थी कि उसे भरोसा ही न आ रहा था! कि एक दफे भी इनकार न किया! अरे, कोई सती-सावित्री होती, तो फौरन चप्पल निकाल लेती! जो चप्पल निकाले, समझ लेना कि यह सती-सावित्री नहीं है! वह चप्पल निकालना ही जाहिर कर रहा है कि लंपट है।
एकदम हां भर दिया! भरोसा नहीं आ रहा था। और कबीर की पत्नी ऐसा हां भर दे! न लाज, न संकोच, न विरोध! एक चेहरे पर बदली भी न आई! जैसे कोई खास बात ही न हो। आएगी भी कि नहीं, यह भरोसा नहीं था। सोचता था कि धोखा दे गई। सोचता था कि ले गई सामान, आने-वाने वाली नहीं है।

लेकिन जब द्वार पर उसने दस्तक दी और दरवाजा खोला और पत्नी सामने खड़ी थी! सज-बज कर आई थी। जो भी घर में सुंदर था, पहन कर आई थी। घबड़ा गया; दुकानदार घबड़ा गया! पसीना छूट गया! सोचा न था कि पत्नी आ जाएगी। एक दफा तो आंख पर भरोसा न आया। और दूसरी बात देख कर और हैरान हुआ कि इतनी धुआंधार बरसा हो रही है, मूसलाधार, और पत्नी बिल्कुल भीगी नहीं है!
उसने पूछा कि इतनी मूसलाधार बरसा में मुझे भरोसा न था कि तू आएगी। मगर आई, यह ठीक। मगर यह चमत्कार क्या है कि तुझ पर तो बूंद भी नहीं पड़ी! तेरे कपड़े तो भीगे भी नहीं!
उसने कहा, भीगते कैसे! अरे, कबीर जो मुझे साथ लेकर आए; खुद भीगते रहे, छाते में मुझे छिपाए रहे। कहने लगे, मैं भीग जाऊं तो कोई बात नहीं, लेकिन तुझे तो अब उस दुकानदार के पास जाना है। उस बेचारे का क्या कसूर कि आज बरसा हो रही है!
वह तो दुकानदार और भी लड़खड़ा गया। उसने कहा, कबीर छोड़ गए! कबीर कहां हैं? गए कि यहीं हैं?
उसने कहा, गए नहीं। छप्पर में बैठे हैं। क्योंकि वे कहते हैं, तू निपट जाए, पता नहीं बरसा रुके न रुके, रात अंधेरी है, तो ले जाने के लिए बैठे हैं! तो जल्दी निपट लो, तुम्हें जो करना हो कर लो, क्योंकि उनको ज्यादा देर बिठाए रखना भी ठीक नहीं। सुबह ब्रह्ममुहूर्त में फिर उठ आना होता है, और फिर भजन-कीर्तन, और भक्त इकट्ठे होंगे!
पैरों पर गिर पड़ा वह दुकानदार। भागा; कबीर के पैर छुए। कबीर ने कहा कि
तू समय खराब न कर। तू अपना काम निपटा; हमें अपना काम करने दे। तू इन बातों में मत उलझ। अरे, यह पैर छूना वगैरह पीछे हो लेगा। सुबह आ जाना; भजन-कीर्तन कर लेना; वहीं पैर भी छू लेना। मगर अभी तू अपना काम निपटा।
उसने कहा, आप कहते क्या हैं! और मुझे न मारो। और मुझे न दुत्कारो। और मुझे गर्हित न करो। और मुझे अपमानित न करो!
कबीर ने कहा, नहीं, तेरा हम कोई अपमान नहीं कर रहे हैं। इन बातों का मूल्य ही क्या है?
यह होगी ज्ञानी की दृष्टि। कबीर को मैं कहूंगा तीर्थंकर। मेरे लिए कबीर ने कितने घोड़े और कितने हाथी छोड़े, यह सवाल नहीं। एक बात देख ली कि यह संसार और इसके मूल्यों का कोई मूल्य नहीं। इसकी नीति कुछ नीति नहीं, इसकी अनीति कुछ अनीति नहीं। सब व्यावहारिक बातें हैं। और उस परम सत्य को कुछ भी नहीं छूता है। वह परम सत्य सदा कुंवारा है, अछूता है। वह जल में कमलवत है। मगर कबीर को कौन तीर्थंकर माने? कौन अवतार माने? कौन कबीर को बुद्ध माने? वही मूल्य है। एक बंधा हुआ मूल्य है, धन का। तो जिनको तुम साधु भी कहते हो, उनको भी तुम साधु लौकिक कारणों से ही कहते हो। उन्होंने कुछ छोड़ दिया। जो तुम्हारे लिए बहुत मूल्यवान था, उन्होंने छोड़ दिया। बस, साधु हो गए!
मगर वसिष्ठ के सूत्र में बात कीमत की है। बात यह है कि ऐसे साधु की वाणी थोथी होगी। वह किसी और के अर्थ का अनुसरण करेगी। उसके पास अपना तो कोई अर्थ नहीं है; अपना कोई साक्षात्कार नहीं है। कहेगा कि मधु मीठा होता है, मगर यह उसका अपना स्वाद नहीं है।
और वसिष्ठ ने कहाः "ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति। और आदि ऋषि थे, उनकी वाणी का अनुसरण अर्थ करता था।"
प्रतीक्षा, इसमें आदि तूने कहां से जोड़ दिया? सूत्र तो सिर्फ इतना है, ऋषीणां! वे जो ऋषि हैं; वे जो ऋषि की अनुदशा को उपलब्ध हुए हैं। इसमें आदि का कोई सवाल नहीं है। लेकिन हम अनुवाद भी जब करते हैं, तो भी हमारी बुद्धि बीच-बीच में व्याघात उत्पन्न करती है। यह जिसने भी अनुवाद किया हो, उसने आदि ऋषि जोड़ दिया! क्योंकि हमारी धारणा यह है कि जो भी होना था श्रेष्ठ, पहले हो चुका। स्वर्णयुग तो बीत चुका; अब तो कलियुग चल रहा है। अब कहां ऋषि! इसलिए आदि ऋषि! हालांकि सूत्र में कुछ आदि का सवाल नहीं है।
सिर्फ सूत्र तो इतना कह रहा हैः "ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।"
वे जो ऋषि हैं, उनकी वाणी का अनुसरण अर्थ करता है। वे जो भी बोल देते हैं, वही सार्थक हो जाता है। वे जो भी बोल देते हैं... । वे बोलें तो, न बोलें

तो; उनका मौन भी सार्थक होता है, उनकी वाणी भी सार्थक होती है। उनकी वाणी का अनुसरण अर्थ करता है। उन्हें अपनी वाणी को किसी अर्थ के पीछे नहीं चलाना होता। वे तो बहते हैं, सरिता की भांति। अर्थ उनके साथ बहता है। इसलिए वे जो भी कहें, उसमें ही गरिमा होती है, गौरव होता है। वे जो भी कहें, उसमें ही सौंदर्य होता है।
ऋषि शब्द बड़ा प्यारा है। पहले उस शब्द को समझ लो। हमारे पास दो शब्द हैं--सिर्फ हमारे पास दो शब्द हैं सारी दुनिया में--कवि और ऋषि। दुनिया की सभी भाषाओं में कवि शब्द तो है, लेकिन ऋषि शब्द नहीं है। दोनों का अर्थ एक होता है, लेकिन थोड़े भेद से; जरा सा बारीक भेद, यूं बाल बराबर भेद, लेकिन जमीन और आसमान को अलग कर देता है।
कवि का अर्थ है, जिसे सत्य की कभी-कभी झलक मिलती है। और ऋषि का अर्थ है,
जो सत्य में ही ठहर गया। कवि का अर्थ है, जो दूर से, बहुत दूर से हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों को देखता है--मगर दूर से। और ऋषि का अर्थ है, जिसने वहीं निवास बना लिया; वह जो हिमाच्छादित शिखरों पर रहने लगा।
कवि के लिए सत्य एक किरण की तरह आता है और चला जाता है; एक झलक की तरह;
एक हवा का झोंका; यह आया, वह गया! मगर उस झोंके में भी कवि के भीतर फूल खिल जाते हैं। ऋषि स्वयं ही फूल हो गया। कवि का वसंत आता है, जाता है। ऋषि के लिए वसंत ही एकमात्र ऋतु है, चौबीस घंटे वसंत है। ऋषि का अर्थ है, जिसने ध्यान से सत्य को अनुभव किया; जिसकी आंखें खुल गईं, असली आंखें खुल गईं; जिसने पदार्थ में परमात्मा को देख लिया; जिसने संसार में मोक्ष को अनुभव कर लिया!
ऐसे ऋषि जो भी बोलें, साधारण से साधारण शब्द भी उनके हाथों में असाधारण अर्थ ले लेते हैं। और जिनको तुम साधु कहते हो, इनके हाथों में सुंदर से सुंदर शब्द भी बड़े कुरूप हो जाते हैं; अपंग हो जाते हैं।
सारी बात आदमी की है। शब्दों में कुछ नहीं होता, व्यक्तियों में होता है, व्यक्तियों की अनुभूतियों में होता है। अगर व्यक्ति के भीतर आह्लाद है, ईश्वर का उन्माद है, मोक्ष की मस्ती है, तो वह जो भी बोल दे, वही मंत्र है, वही श्लोक है, वही ऋचा है। और अगर व्यक्ति के भीतर वह परम उन्माद नहीं है, तो वह सुंदर-सुंदर शब्दों को बिठाता रहे, जमाता रहे--शायद कविता रच लेगा, भाषा के हिसाब से, व्याकरण के हिसाब से, छंद के हिसाब से, मात्रा के हिसाब से--लेकिन उसमें आत्मा नहीं होगी, वह लाश ही होगी।
लाश भी दिखाई पड़ सकती है बिल्कुल आदमी जैसी; लाश को भी तुम खूब सजा सकते हो। पश्चिम में तो लाश को सजाने का धंधा होता है। पश्चिम में तो बड़ा भय है मृत्यु का। होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि ईसाइयत, यहूदी, मुसलमान-- भारत के बाहर पैदा हुए तीनों धर्म--एक ही जीवन में भरोसा करते हैं। बस, एक ही जीवन; और कोई जीवन नहीं! तो घबड़ाहट स्वाभाविक है। यूं भी आदमी मौत से घबड़ाता है। यहां भी आदमी मौत से घबड़ाता है, जहां कि अनंत जीवनों का विश्वास है। पहले भी हम थे, आगे भी हम होंगे। मगर वह विश्वास ही है। घबड़ाहट तो भीतर होती है कि कौन जाने बचे न बचे! मगर पश्चिम में तो साफ ही है कि बचना नहीं है; एक ही जीवन है। बस, फिर दुबारा लौटना नहीं है। फिर तो कयामत की रात तक पड़े रहना है कब्र में। तो घबड़ाहट स्वाभाविक है।
जरा सोचो तो, कब आएगी कयामत! अनंत-अनंत काल तक कब्र में ही सड़ते रहोगे, सड़ते रहोगे, सड़ते रहोगे। गल जाओगे, हड्डी-हड्डी गल कर मिट्टी हो जाएगी, तब आएगी कयामत! पता नहीं, आएगी भी कि नहीं आएगी। और इतने काल तक तुम्हें पड़े रहना पड़ेगा कब्र में ही। घबड़ाहट है।
तो मृत्यु को झुठलाने का पश्चिम में बहुत उपाय होता है। इसलिए पश्चिम में एक धंधा ही हो गया है; पूरब में वैसा कोई धंधा नहीं है अभी। पश्चिम में धंधा है, मौत को सजाने वालों का धंधा! काफी लाभ वाला धंधा है। जब कोई मर जाता है, तो उस पर हजारों रुपए खर्च होते हैं। उसको सजाया जाता है। जैसे कि कोई अभिनेताओं को सजाता है नाटक में। अब यह नाटक का अंत ही हो रहा है, आखिरी सजावट कर ही लेनी चाहिए। पटाक्षेप हो रहा है। पर्दा गिरने को है। गिर ही चुका है।
तो उसके चेहरे को सुंदर बनाते हैं, रंगते हैं; लाली देते हैं उसके गालों को, उसके ओंठों को। उसकी आंखों को काजल देते हैं। उसके बालों को रंग

देते हैं। अगर बाल न हों, तो झूठे बाल लगा देते हैं। अगर दांत गिर गए हों, तो झूठे दांत लगा देते हैं। सुंदर कपड़े पहनाते हैं। इत्र छिड़कते हैं। फूलों से सजा देते हैं। आदमी यूं लगने लगता है, जैसे दूल्हा हो! दूल्हा भी फीका लगे। आदमी यूं लगने लगता है, जैसे यह कोई मरघट नहीं जा रहा है; यह कोई बारात निकल रही है! फिर खूबसूरत से खूबसूरत ताबूत, कीमती से कीमती ताबूत, उनमें उसकी लाश को सजाया जाता है। धोखा! हर तरह का धोखा!
लेकिन लाख उपाय करो, तो भी जिंदा आदमी जिंदा आदमी है और मरा हुआ आदमी मरा हुआ आदमी है। कितना ही सुंदर लगे!
उतना ही भेद कविता में और ऋचा में है। उतना ही भेद कवि में और ऋषि में है। ऋषि है जीवंत। मात्रा का उसे पता नहीं। अब कोई मीरा की कविताओं में मात्राएं हैं, कि कोई छंद है! अगर भाषा और मात्रा और छंद के हिसाब से तौला जाए, तो कबीर और मीरा की गिनती कहीं भी नहीं होगी। तब तो तुलसीदास बड़े कवि मालूम होंगे। कहते भी हैं कि तुलसीदास महाकवि। हैं भी वे महाकवि। बस लेकिन कवि ही हैं, ऋषि नहीं। कबीर कवि नहीं हैं, ऋषि हैं। शब्द अटपटे हैं, लेकिन उन शब्दों के पीछे गहन अर्थ चला आ रहा है। शब्द जीवंत हैं; पंख हैं उनमें, यूं कि अभी उड़ जाएं! किन्हीं पिंजड़ों में बंद नहीं।
तुलसीदास के शब्द कितने ही सुंदर हों, पिंजड़ों में बंद हैं। लेकिन तुलसीदास की महिमा! क्योंकि लोग तो व्यर्थ से प्रभावित होते हैं, सार्थक से तो घबड़ाते हैं। क्योंकि सार्थक तो झकझोर देता है। सार्थक तो आता है झंझावात की तरह, धूल झाड़ देता है। और तुमने धूल को समझ रखा है बड़ी कीमती! सो जो तुम्हारी धूल को और जमा दे, वही प्यारा लगता है।
तुलसीदास महाकवि! कबीरदास तो अटपटे हैं। सधुक्कड़ी उनकी भाषा है। पंडित कहते हैं, सधुक्कड़ी। उसके लिए भाषा ही अलग रख लिया है नाम, सधुक्कड़ी भाषा! संध्या भाषा! उलटबांसी! सीधी बात ही नहीं करते, उलटी बांसुरी बजाते हैं! कुछ का कुछ कहते हैं!
मगर कारण? कारण यह है कि कबीर कोई पढ़े-लिखे व्यक्ति नहीं हैं, कबीर कोई शास्त्रीय व्यक्ति नहीं हैं, मगर सत्य को जाना है। इसलिए बोलचाल की भाषा ही बोलते हैं, मगर उसमें ही वह सारा रस भर दिया है कि फूल फीके पड़ जाएं, वह सारी रोशनी भर दी है कि चांद-तारे फीके पड़ जाएं। छोटे-छोटे वचन, मगर बड़े से बड़े शास्त्रों का निचोड़ आ गया है।
इसलिए प्रतीक्षा, आदि ऋषि शब्द मत जोड़ो। आदि से क्या लेना-देना है? ऋषि का आदि से क्या संबंध? ऋषि तो आज भी होते हैं। जब भी सत्य को जाना, तभी ऋषि का जन्म हुआ।
ऋषि का अर्थ तो है, जिसे भीतर की देखने की आंख मिल गई। और तब यह बात सच
है कि ऋषि की वाणी का अनुसरण अर्थ करता है। वह अर्थ की चिंता नहीं करता, न व्याकरण की चिंता करता, न भाषा की चिंता करता। और इसलिए अनेक बार ऐसा हुआ है कि ऋषियों के बोलने के कारण नई भाषाएं पैदा हो गईं।
महावीर ने संस्कृत में नहीं बोला, प्राकृत में बोला। महावीर के बोलने
के कारण प्राकृत बनी। संस्कृत में एक पांडित्य है, एक आभिजात्य है। महावीर ने संस्कृत का उपयोग नहीं किया, बोलचाल की भाषा में बोले। उसमें वह पांडित्य नहीं है, लेकिन जीवंतता है।
बुद्ध पाली में बोले। पाली बोलचाल की भाषा है, बेपढ़े-लिखे आदमी की भाषा है। मगर बड़ी प्यारी! जब लोग शब्दों का उपयोग करते हैं, तो शब्दों के किनारे घिस जाते हैं, शब्दों में गोलाई आ जाती है, सौंदर्य आ जाता है। लोगों के शब्द घिसते-घिसते बड़े प्यारे हो जाते हैं! और जब भी कभी लोगों पर ऊपर से भाषा थोपी जाती है, तो कभी उस भाषा में प्राण नहीं आते। जैसा इस देश में उपयोग किया गया।
स्वतंत्रता के बाद इस देश में जिन्होंने सबसे बड़ी हानि हिंदी को पहुंचाई, वे थे डाक्टर रघुवीर, सेठ गोविंददास। दोनों मेरे निकट से परिचित व्यक्ति थे। और दोनों को मैंने कहा था कि तुम दुश्मन हो हिंदी के! हालांकि दोनों समझे जाते थे कि हिंदी के सबसे बड़े समर्थक हैं। मगर उन्हीं ने नष्ट किया।
भाषाएं ऐसे ऊपर से नहीं थोपी जातीं। रघुवीर ने कैसी भाषा थोपने की कोशिश की! हालांकि गणित ठीक था उनका; व्याकरण ठीक थी उनकी; सब बातें ठीक

थीं। मगर भाषाएं जन्मती हैं; ऐसी थोपी नहीं जातीं। भाषाएं कृत्रिम नहीं होतीं। जनता जब सैकड़ों वर्ष तक उपयोग करती है शब्दों का, तो उन शब्दों में एक रस आ जाता है, एक जीवंतता आ जाती है। निरंतर के चलन से उनमें गोलाई आ जाती है। जैसे नदी में बहते हुए पत्थर गोल हो जाते हैं, शंकरजी की पिंडी बन जाते हैं। ऐसे प्रत्येक शब्द में... ।
रघुवीर के शब्दों में गोलाई नहीं है और बेहूदापन है। हालांकि हिसाब
की दृष्टि से बिल्कुल ठीक हैं। अब जैसे रेलगाड़ी। तो रेलगाड़ी शब्द का ठीक-ठीक अनुवाद भाषा में करना हो, तो रघुवीर ने बिल्कुल ठीक किया, लोह-पथ-गामिनी!
मगर कौन इसका उपयोग करेगा? जिससे कहोगे, वही हंसेगा! किसी से कहोगे कि लोह-पथ-गामिनी से जा रहे हैं, तो वह पहले चौंक कर देखेगा, तुम होश में हो कि ज्यादा पी गए! क्या हो गया तुम्हें! लोह-पथ-गामिनी से जा रहे हो? तुम्हें जाने के लिए कुछ और उपाय न बचा? हालांकि लोह-पथ-गामिनी बिल्कुल ठीक रेलगाड़ी का ही अनुवाद है। रेल का अर्थ होता है, लोह-पथ। और लोह-पथ पर जो दौड़ती है, वह गामिनी, गमन करती है। बिल्कुल ठीक है, लोह-पथ-गामिनी!
इससे तो डाक्टर राममनोहर लोहिया बेहतर आदमी थे। उन्होंने जनता के शब्द चुनने की फिक्र की है। जैसे रिपोर्ट की जगह वे रपट लिखते थे। क्योंकि गांव का किसान जब कहता है, तो वह कहता है, भइया, रपट लिखवाई कि नहीं? रिपोर्ट घिस-घिस कर रपट हो गई! स्टेशन घिस-घिस कर टेशन हो गया! मगर जो टेशन में मजा है वह स्टेशन में नहीं। और जो रपट में बात है वह रिपोर्ट में नहीं। रपट में एक सचाई है। कबीर तो रपट लिखवाएंगे; रिपोर्ट नहीं लिखवाएंगे! कबीर टेशन जाएंगे, स्टेशन नहीं जा सकते!
अभी पांच सौ साल पहले ही नानक के कारण गुरमुखी भाषा पैदा हुई। सिर्फ नानक के कारण! क्योंकि नानक ने पंजाब की लोक-भाषा का उपयोग किया, और एक नई भाषा को जन्म दे दिया। मगर वह जन्म ऊपर से थोपा हुआ नहीं है; वह कोई कृत्रिम नहीं है। लोग जिस भाषा का उपयोग कर रहे थे सदियों से, उसी भाषा को छू दिया, और जादू हो गया!
ऋषि की वाणी का अनुसरण अर्थ करता है। ऋषि फिक्र नहीं करता कि शब्द क्या हैं, किन्हीं भी शब्दों को चला देता है, चलते हुए शब्दों को उपयोग में ले आता है, और उनमें बड़े अर्थ के फूल खिल जाते हैं।
यह सूत्र उपयोगी है। लेकिन इसमें से दो बातें छोड़ देना। एक तो लौकिक साधु जैसा कोई व्यक्ति होता नहीं। या तो कोई साधु होता है, या लौकिक होता है।
और दूसरी बात, आदि ऋषि गलत अनुवाद है। ऋषि सदा होते रहे, आज भी हैं, कल
भी होंगे। यह दुनिया उस दिन स्वाद खो देगी जिस दिन ऋषि पैदा न होंगे। जब तक ऋषि हैं, तब तक जमीन पर नमक है, तब तक जीवन में स्वाद है।
ऋषि का अर्थ केवल इतना ही है, जिसने देखा, अनुभव किया, जीया; जो जीकर बोला; जिसके बोलने में हृदय की धड़कन है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मुंडकोपनिषद का लेखक कौन है?

भोलेराम!
बाबा, क्या मुंडकोपनिषद के लेखक से नाराज हो गए? कि देखें, कौन है यह!
कि इसको ठीक करें!
मैं डर रहा था कि कोई यह प्रश्न न पूछ ले! क्योंकि मुझे भी पता नहीं कि मुंडकोपनिषद के लेखक कौन हैं। असल में मैंने भी जब पहली दफा मुंडकोपनिषद पढ़ा था, तो यह सवाल मुझे उठा था। उम्र तब मेरी छोटी थी जब मेरे हाथ में पहली दफा मुंडकोपनिषद पड़ गया। घर में उसकी कापी पुराने दिनों से पड़ी थी। उठा कर मैंने देखा। पहला ही सवाल यह उठा कि मुंडकोपनिषद! यह भी कोई नाम हुआ! किसने लिखा? और क्या नाम दिया! अरे, कम से कम नाम तो ठीक दे देते!
लोग सड़ी-गली चीजों को भी क्या-क्या नाम देते हैं! रसमलाई! चमचम! रसगुल्ला! क्या-क्या नाम देते हैं!
मुंडकोपनिषद! मुझे लगा, हो न हो--मेरे मोहल्ले में एक पहलवान थे; उनका नाम था मुंडे पहलवान। हो न हो इसी आदमी ने लिखा है! थे भी गड़बड़ ही वे। और

सभी चीजों में गुणी थे। भांग वे पीएं; गांजा वे पीएं; अफीम का सेवन वे करें; शराब वे पीएं। और जब नशे में होते थे, तो बड़ी ब्रह्मचर्चा करते थे! तो मैंने कहा, जरूर इसी आदमी ने पीनक में आकर मुंडकोपनिषद लिख दिया है! और मुंडे पहलवान, तो मुंडकोपनिषद नाम जंचता है! कि किसी मुंडे ने लिखा है! मेरा उनसे दोस्ताना था। यूं तो उम्र में बहुत फासला था। दोस्ती हो जाने का कारण था कि मुझे भी एक शौक था और वही शौक उनको भी था, पतंग लड़ाने का शौक। उनको कोई काम-धाम नहीं था; दादागिरी उनका धंधा थी। कमाने वगैरह का कोई सवाल न था। सो वे पतंग लड़ाते थे। और मुझे भी पतंग लड़ाने का शौक था। और वे तो बड़े प्रसिद्ध लड़ाके थे पतंग के। लखनऊ तक पतंग लड़ाने जाते थे। गांव में तो कोई उनसे पतंग लड़ाने की हिम्मत ही नहीं कर सकता था। क्योंकि दिन भर मंजा लगाना! उनका काम ही यह था। सुबह से डंड-बैठक; फिर डट कर दूध-जलेबी; फिर मंजे पर उतर जाते वे। तो उनके शागिर्द घोंट रहे हैं कांच! फिर लुब्दी बनाई जा रही है! फिर मंजा चढ़ाया जा रहा है!
और मुझे भी पतंग लड़ाने का शौक उन्हीं को देख कर पैदा हो गया था। और मेरी उनसे दोस्ती इसलिए हो गई कि मैंने एक बार उनका पतंग काट दिया! उन्होंने मुझे बुलाया और कहा, बेटा, आज तक मेरा पतंग कोई नहीं काट सका! पहली तो बात, कोई मुझसे पतंग लड़ाने की हिम्मत ही नहीं करता, क्योंकि लोग डरते हैं कि कोई झगड़ा-झांसा खड़ा न हो जाए! एक तो तूने पतंग लड़ाने की हिम्मत की... ।
मैंने कहा, मुझे मालूम नहीं था कि पतंग आपका है। नहीं तो मैं भी इस झंझट में नहीं पड़ता।
और गजब कि तूने मेरा पतंग काट दिया!
मस्ती में थे। आशीर्वाद दे गए कि तू बड़ों-बड़ों के पतंग काटेगा! मैंने कहा, यह तो... ।
तब से मैं वही काम कर रहा हूं! अब तो छोटे-बड़े का फर्क ही नहीं करता! समदृष्टि से काटता हूं! पतंग होना चाहिए--छोटे का हो, बड़े का हो; शंभु महाराज का हो, कि मोरारजी देसाई का हो, कि मुक्तानंद का हो, कि डोंगरेजी महाराज का हो--पतंग होना चाहिए! छोटे-बड़े का क्या भेद करना! समदृष्टि रखनी चाहिए। मगर वे क्या आशीर्वाद दे गए मुंडे पहलवान, वह काम अभी तक नहीं छूटा! और वह छूटने वाला भी नहीं है।
तो मैंने सोचा कि हो न हो, इन्होंने ही यह मुंडकोपनिषद लिखा है! और तो मैं कुछ समझा नहीं किताब में अंदर, लेकिन बस वह शब्द मुझे मुंडकोपनिषद पकड़ गया। सो सांझ को मैं उनके दरबार में हाजिर हुआ। पास में ही उनका अखाड़ा था। वे भंग चढ़ा कर--एक शागिर्द उनका पैर दबा रहा था, दूसरा शागिर्द उनकी चंपी कर रहा था--खाट पर लेटे हुए थे। मस्ती में कुछ गुनगुना रहे थे। मैं जाकर पास बैठ गया। मैं उनको काका कहता था, आदर के कारण।
मैंने कहा, काका, एक सवाल पूछूं?
उन्होंने कहा, पूछो बेटा, जरूर पूछो। अरे, पूछोगे नहीं, तो जानोगे कैसे!
जब वे पीनक में होते, तो बड़ी गजब की बातें कहते थे!
जरूर पूछो, कहने लगे, जिन खोजा तिन खोइयां, गहरे पानी पैठ।
मैंने कहा, आप कबीर को भी चारों खाने चित्त कर दिए!
जिन खोजा तिन खोइयां, गहरे पानी पैठ! अरे, पूछोगे नहीं, तो जानोगे कैसे! पूछो।
अंग्रेजी के वे दो शब्द बोलते थे। एक, व्हाय नाट!
वे एकदम से मुझसे बोले, व्हाय नाट! पूछो!
व्हाय नाट उनका तकिया कलाम था। किसी भी चीज में व्हाय नाट कह देते थे। जैसे उनसे जय रामजी करोः काका, जय रामजी! वे कहते, व्हाय नाट! जिसमें कोई संबंध ही नहीं होता था!
कि काका, कहां जा रहे हो?
वे कहते, व्हाय नाट!
उन्हें अर्थ का संबंध नहीं था। इसको कहते हैं ऋषि! जो शब्द बोलें, अर्थ उसके पीछे आता है!
वे मुझसे बोले, व्हाय नाट! पूछो, क्या पूछना है?

मैंने कहा कि एक किताब मेरे हाथ लग गई, मुंडकोपनिषद! यह सवाल उठता है
कि यह किसने लिखी और किसने यह नाम दिया?
वे कुछ सोच-विचार में पड़ गए! उपनिषद वगैरह से उनका क्या नाता रहा! फिर मैंने ही उनसे कहा कि मुझे यह शक हुआ कि हो न हो, आपने ही लिखी होगी! क्योंकि मुंडे पहलवान, आप ही एक जाहिर आदमी हैं!
बड़े प्रेम से मुस्कुराए और बोले, बेटा, जवानी में आदमी से कई तरह की भूलें हो जाती हैं! अरे, लिख दी होगी! बीती ताहि बिसार दे! अब जो हुआ, सो हो गया। तू भी कहां की पुरानी बातें उखाड़ता है! अब जाने भी दे। जो हो गया, हो गया! तेरे हाथ में कहां से लग गई? लिख दी होगी! कई काम जवानी में कर गया, जो नहीं करने थे। मगर जवानी में कौन भूल-चूक नहीं करता!
मैंने कहा, व्हाय नाट!
मैं भी उनकी भाषा का धीरे-धीरे उपयोग करने लगा था। मुझे भी पता नहीं
था कि व्हाय नाट का मतलब क्या होता है!
और दूसरा शब्द उनका अंग्रेजी का था, कि जैसे हम कहते हैं कि तबीयत बाग-बाग हो गई। वे कहते, तबीयत गार्डन-गार्डन हो गई!
जब उन्होंने मेरे मुंह से सुना व्हाय नाट, बोले, तबीयत गार्डन-गार्डन
हो गई! क्या बात तूने कही! होनहार बिरवान के होत चीकने पात। वे मुझसे बोले कि तू जरूर कुछ करके दिखाएगा!
मैंने कहा कि देखें, आपका आशीर्वाद रहा, तो लिखूंगा कोई मुंडकोपनिषद! भोलेराम, तुम पूछ रहे हो, "कौन लेखक था?"
मुझे पता नहीं! अब तो मुंडे पहलवान भी मर चुके!
उपनिषद किसी ने लिखे नहीं। उपनिषद कहे गए। सच में तो कोई ऋषि कभी कुछ नहीं लिखा। जिन्होंने जाना है, उन्होंने लिखा नहीं; और जिन्होंने लिखा है, उन्होंने जाना नहीं। जानने वाले बोले, लिखे नहीं। फिर शिष्यों ने लिख लिए। शिष्यों ने संक्षिप्त नोट्स लिख लिए, ताकि आने वाली सदियों के काम आ सकें।
ये उपनिषद लिखे गए शिष्यों के द्वारा; कहे गए ऋषियों के द्वारा।
ऋषि बोलते हैं, सिर्फ बोलते हैं। क्योंकि बोलने में शब्द जीवित होता है। और जीवित शब्द ही एक हृदय से दूसरे हृदय में प्रवेश कर सकता है। और जीवित शब्द ही मुक्तिदायी है।
आज इतना ही।
अनहद में बिसराम
सातवां प्रवचन

गुरु तीर्थ हैं

पहला प्रश्नः ओशो,
बलं वाव विज्ञानाद भूयः;
अपि ह शतं विज्ञानवतां
एको बलवान आकंपयते।
स यदा बली भवति, अथोत्थाता भवति, उत्तिष्ठन परिचारिता भवति,
परिचरन उपसत्ता भवति, उपसीदन द्रष्टा भवति,
श्रोता भवति, मन्ता भवति,
बुद्धा भवति, कर्त्ता भवति, विज्ञाता भवति।।
विज्ञान से बल श्रेष्ठ है, क्योंकि एक बलवान मनुष्य सौ विद्वानों को डराता है। बलवान होने पर ही मनुष्य उठ कर खड़ा होता है; उठने पर वह गुरु की सेवा करता है; सेवा करने से वह गुरु के पास बैठने लायक बनता है; पास बैठने से द्रष्टा बनता है, श्रोता बनता है, मनन करने वाला बनता है, बुद्ध बनता है, कर्ता बनता है, विज्ञानी बनता है।
ओशा, छांदोग्य उपनिषद के इस अजीब से सूत्र का आशय क्या है, यह हमें विशद रूप से समझाने की अनुकंपा करें।

सहजानंद!

यह सूत्र निश्चय ही अजीब सा मालूम होता है, अजीब है नहीं। है तो बहुत प्यारा, है तो बहुत अनूठा, अद्वितीय। छांदोग्य उपनिषद का जैसे सारा छंद इसमें समा गया है। जैसे सारा, हजार-हजार फूलों से निचोड़ कर कोई इत्र इकट्ठा करे, ऐसा यह सूत्र है। पर अजीब सा लगेगा, क्योंकि सत्य भाषा में आते-आते अजीब सा ही हो जाता है। और हमारे पास कोई सत्य का अनुभव नहीं हो, तो शब्द ही हमारे हाथ लगते हैं। और शब्दों में बड़ा खतरा है। शब्द से ज्यादा खतरनाक कोई और चीज नहीं। समझे तो पहुंचे; चूके तो गिरे। खड्ग की धार पर चलने जैसा है।
तुम्हारी बात मैं समझा सहजानंद! क्योंकि सूत्र शुरू होता हैः बलं वाव विज्ञानाद भूयः--विज्ञान से बल श्रेष्ठ है। और सूत्र अंत होता हैः विज्ञाता भवति--विज्ञानी बनता है। विज्ञान से बल श्रेष्ठ है, ऐसा प्रारंभ; फिर बल की महिमा और चर्चा। और अंततः बल लाता कहां है? विज्ञाता बनाता है! सो तुम उलझे होओगे। सोचा होगा, यह कैसी बात!
फिर और भी बहुत बातें हैं, जो चिंता पैदा करें।
"क्योंकि एक बलवान मनुष्य सौ विद्वानों को डराता है।"
विद्वान तो हम उसे कहते हैं, जो जानता है। और बलवान, वह तो कोई बड़ी महत्ता की बात नहीं। कोई गामा पहलवान को बुद्ध के साथ तुलना करने बैठ जाए! तो यूं तो ठीक है कि एक गामा पहलवान सौ बुद्धों को हरा दे। मगर वह हराना ऐसे ही होगा, जैसे एक चट्टान गुलाब के फूल को दबा दे। इससे चट्टान कुछ गुलाब का फूल नहीं हो जाती, और न ही गुलाब के फूल पर जीत जाती है।
फिर बल की महिमा छांदोग्य उपनिषद गाता चलता हैः "बलवान होने पर मनुष्य उठ कर खड़ा होता है। उठने पर गुरु की सेवा। सेवा से गुरु के पास बैठने की योग्यता। पास बैठने से द्रष्टा बनता है।" तब एक मोड़ आया। चले थे विज्ञान के विपरीत बल की प्रशंसा में, और बात कुछ और होने लगी! "द्रष्टा बनता, श्रोता बनता, मनन करने वाला बनता, बुद्ध बनता, कर्ता बनता"--और तब वर्तुल पूरा होता है कि--"बलवान विज्ञानी बनता है।"
तो स्वभावतः लगेगा कि बात बेबूझ है। तर्क से बेबूझ लगेगी। तर्क कुछ
भी सुलझाता नहीं, उलझाता है। तर्क को थोड़ा हटा कर सहानुभूति से इस सूत्र को समझने की कोशिश करो। एक-एक शब्द को बहुत ध्यानपूर्वक लेना, क्योंकि बारीक भेद हैं, जो ऊपर से दिखाई नहीं पड़ते। और इसलिए सदियों-सदियों तक भूलें चलती रहती हैं।
विज्ञान और विज्ञाता एक सा अर्थ देते मालूम होते हैं, मगर उनमें एक सा अर्थ नहीं है, विपरीत अर्थ है। विज्ञान है बहिर्यात्रा, और विज्ञाता होना है अंतर्यात्रा। विज्ञान का अर्थ है वस्तु को जानना, और विज्ञाता का अर्थ है जानने वाले को जानना!
विज्ञान तो पदार्थ का होता है; और विज्ञाता होना आत्मबोध है, परमात्म-अनुभव है, सत्य-साक्षात है। इसलिए विज्ञान और विज्ञाता शब्द को सबसे पहले स्पष्ट अलग-अलग कर लो। एक ही धातु से बनते हैं दोनों। भाषाकोश में एक ही अर्थ है दोनों का। इसलिए भूल हो सकती है। लेकिन यह सूत्र जिन्होंने कहा होगा, वे कुछ भाषा के जानकार ही नहीं; अनुभव, रससिक्त, उस परम विज्ञान की, विज्ञाता की अवस्था में रहे हुए व्यक्ति रहे होंगे।
तो पहला भेदः विज्ञान अर्थात साइंस, और विज्ञाता अर्थात धर्म। विज्ञान विचार पर निर्भर होता है, और विज्ञाता निर्विचार पर। विज्ञान में सोचना होता है; विज्ञाता होने में सोचने का अतिक्रमण करना होता है।
जब तक सोच-विचार है, तब तक मन में उपद्रव है, तब तक झंझावात, आंधियां, तूफान; नाव डांवाडोल! किनारा मिलेगा कि नहीं मिलेगा! कि मझधार में ही डूब जाना होगा! यूं ही चिंता में क्षण बीतते। ऐसे ही संताप में समय गुजरता। अब डूबे, तब डूबे की हालत होती।
विज्ञाता का अर्थ है, किनारा मिल गया, आंधियां समाप्त हुईं। आंधियां
ही नहीं, अब तो झील पर लहरें भी नहीं उठतीं। अब तो झील दर्पण बनी। ऐसी शांत, ऐसी मौन, कि सारा आकाश वैसा ही प्रतिफलित होता है जैसा है।
विज्ञाता पंडित नहीं है, प्रबुद्ध है। विज्ञानी पंडित है, प्रबुद्ध नहीं। अल्बर्ट आइंस्टीन और गौतम बुद्ध का जो भेद है... । यूं तो अल्बर्ट आइंस्टीन पदार्थ के संबंध में जितना जानता है, गौतम बुद्ध नहीं जानते।

अगर पदार्थ के ज्ञान के संबंध में ही परीक्षण होना हो, तो आइंस्टीन ही जीतेगा। लेकिन अगर स्वयं के बोध के संबंध में कोई तुलना करनी हो, तो आइंस्टीन कहीं भी तराजू पर नहीं बैठेगा। और अंततः वही निर्णायक है।
मरते समय, आइंस्टीन ने दो दिन पूर्व ही कहा कि मेरा जीवन अकारथ गया।
मैं व्यर्थ में उलझा रहा। मैंने उसे नहीं जाना, जिसे जानना था।
क्या जानना था? जानने वाले को पहले जानना था। अपने को ही न जाना, और सब जानते रहे! घर में ही अंधेरा रहा, और सारी दुनिया में दीवाली मनाते फिरे! घर में ही उत्सव न हुआ, और बाहर गुलाल उड़ाई, रंग उड़ाए! सब थोथा हो गया।
जब तक भीतर उत्सव न हो, तब तक बाहर के वसंत का क्या मूल्य है! और जब तक भीतर के फूल न खिलें, तब तक आए मधुमास कि जाए, सब बराबर है। फूल खिलें कि झरें, क्या करोगे! भीतर ही प्रकाश न हो, तो सूरज ऊगे कि डूबे, तुम तो अंधेरे में ही हो। ऊगता है सूरज तब भी, डूबता है तब भी! अंधेरी रात, तो भी अमावस। पूर्णिमा की रात, तो भी अमावस। तुम्हारे भीतर तो अमावस ही बनी रहती!
और मृत्यु के क्षण में अल्बर्ट आइंस्टीन को यह दिखाई पड़ना शुरू हुआ
कि काश, मैंने इतनी ही ऊर्जा अपने को जानने में लगाई होती, तो आज मृत्यु के पार भी मेरे भीतर कुछ है, शायद उसे पहचान लिया होता। आज मृत्यु का भय न पकड़ता। आज मृत्यु का अतिक्रमण करने की मेरी क्षमता होती!
मरते समय एक ही भाव अल्बर्ट आइंस्टीन को था कि अगर फिर कभी जीवन मिले,
तो उस सारे जीवन को अब धर्म की, रहस्य की खोज में लगा दूंगा। और सबसे बड़ा रहस्यों का रहस्य स्वयं के भीतर है। होगा भी। होना भी चाहिए। जानने वाले को जानने में ही परम रहस्य है। इस भेद को तुम ठीक से समझ लो, तो सूत्र साफ होना शुरू हो जाएगा।
"बलं वाव विज्ञानाद भूयः।"
ठीक कहता है छांदोग्य उपनिषद का ऋषि, "विज्ञान से बल श्रेष्ठ है।" विज्ञान, पदार्थ की जानकारी। बल किसे कह रहा है वह? बल से भी तुम किसी पहलवान के बल को मत समझ लेना। बल से भी उपनिषद के ऋषि का अर्थ होता है अंतर-ऊर्जा।
साधारण आदमी ऐसा है, जैसे छेद वाला घड़ा। कितना ही भरो, भरता नहीं। भरो,
और खाली हो जाता है। कुछ रुकता नहीं, कुछ टिकता नहीं।
एक सूफी फकीर के पास एक युवक ने आकर कहा कि बहुत-बहुत संतों के पास गया हूं, लेकिन जिसकी तलाश है वह नहीं मिलता। अब आखिरी आपके द्वार पर दस्तक दी है। बस, हताश हो गया हूं! बहुत लोगों ने आपकी तरफ इशारा किया। बड़ी लंबी यात्रा करके, बड़े दूर देश से आता हूं। निराश न भेज देना। और यह मेरा अंतिम प्रयास है। कुछ होना हो तो हो जाए, न होना हो तो न हो। बस, मैं हार गया हूं। उस फकीर ने कहा, जरूर होगा। क्यों नहीं होगा! लेकिन एक छोटी सी शर्त पूरी करनी पड़ेगी। शर्त बहुत छोटी है।
उस युवक ने कहा, मैंने बड़ी-बड़ी शर्तें पूरी कीं। किसी ने योग सिखाया, सिर के बल खड़ा किया, तो खड़ा रहा। किसी ने मंत्र पढ़वाए, तो वर्षों मंत्र दोहराता रहा। किसी ने उपवास करवाए, तो उपवास किए, भूखा मरा। जिसने जो कहा, वही किया। ऐसी कौन सी शर्त होगी जो मैंने पूरी नहीं की! तुम भी अपनी छोटी शर्त कह दो। जरूर पूरी करूंगा।
उस फकीर ने कहा, ये सब बड़ी-बड़ी बातें हैं। ये मुझे नहीं करनी हैं। बहुत छोटी शर्त है। अभी मैं कुएं पर पानी भरने जा रहा हूं। बस, तू इतना करना कि जब मैं पानी भरूं, तो बीच में बोलना मत, चुपचाप खड़े रहना। इतना अगर संयम तूने रख लिया, तो बस बहुत है। फिर आगे का काम मैं सम्हाल लूंगा। इतना तू कर ले।
उस युवक ने सोचा कि मैं भी किस आदमी के पास आ गया हूं! बड़े तंत्र साधे, मंत्र साधे, यंत्र साधे। और यह पागल मालूम होता है। यह कुएं पर पानी भरेगा, तो भर मजे से! मेरा क्या बनता-बिगड़ता है! मैं क्यों बोलूंगा?
लेकिन उसे पता न था। कुएं पर पानी भरना तो दूर, जब फकीर ने अपनी बालटी उठाई और रस्सी उठाई, तभी उसके भीतर बड़े झंझावात उठने लगे। लेकिन अपने को सम्हाला। याद रखा कि उसने कहा है कि बोलना ही मत। मगर न रहा जाए!

फिर भी अपने पर संयम रखा। पुराना संयमी था। लंबा अभ्यासी था। अपनी जबान को कस कर पकड़े रहा। ओंठों को बंद रखा। इधर-उधर देखा, कि देखो ही मत। न देखोगे, न प्रश्न उठेगा। और थोड़ी ही देर की बात है।
कुएं पर फकीर पहुंचा। उसने बालटी में रस्सी बांधी। युवक यहां-वहां देखे। फकीर ने कहा, यहां-वहां देखने की जरूरत नहीं। जो मैं कर रहा हूं उसको देख और चुपचाप खड़ा रह। बोलना मत। प्रश्न उठाना मत। इतनी शर्त तू पूरी कर देना, बाकी मैं सब कर लूंगा।
युवक को देखना पड़ा। मगर उसकी बेचैनी तुम नहीं समझ सकते। उसकी मुसीबत तुम नहीं समझ सकते। जो देख रहा था, उसे देख कर बिना बोले रहा न जाता था। फकीर ने रस्सी बांधी। बालटी कुएं में डाली। बड़ा हिलाया-डुलाया बालटी को। बड़ा शोरगुल मचाया कुएं में। पानी में डूबी रही बालटी तो भरी हुई मालूम पड़ी, फिर खींची तो खाली की खाली आई! फिर दुबारा डाली। संयम टूटने लगा युवक का। जब तीसरी बार बालटी डाली, युवक ने कहा, ठहरो! भाड़ में गया ब्रह्मज्ञान। इस बालटी में पेंदी ही नहीं है, और तुम पानी भरने चले हो! आखिर संयम की भी एक हद्द होती है! कब तक साधूं? और यह संयम तो ऐसा है कि जन्म-जन्म बीत जाएंगे, पानी भरने वाला नहीं। यह बालटी खाली रहने वाली है। और तुमने मुझसे वचन लिया है कि जब तक पानी न भर लूं, बोलना मत। मैं तो बोलूंगा। और तुमसे कहे देता हूं कि तुमसे क्या खाक मुझे मिलेगा! अभी तुम्हें खुद ही यह पता नहीं है कि बिना पेंदी की बालटी में पानी भरने चले हो! तुम क्या मुझे ब्रह्मज्ञान दोगे!
फकीर ने कहा, बात खतम हो गई। नाता-रिश्ता टूट गया। शर्त ही खतम हो गई।
जब तू छोटा सा भी काम पूरा न कर सका... । अरे बस, यह आखिरी बार था। तीन बार का मैंने तय किया था। मगर तू चूक गया। तीन ही बार पूरे न हो पाए और तूने संयम छोड़ दिया। रास्ते पर लग अपने! ऐसे आदमी से क्या होगा जिसमें इतना धीरज नहीं! भाग। यह तो मुझे भी पता है कि बालटी में पेंदी नहीं है। मैं कोई अंधा हूं! बालटी में पानी नहीं भरेगा, यह भी मुझे पता है। यह तो तेरे धीरज की परीक्षा थी। मगर तू असफल हो गया। अब मैं जानता हूं कि क्यों तू अब तक हताश है। तू सदा हताश रहेगा। एक छोटा सा काम न कर सका! भाग जा। अब यह शक्ल मुझे मत दिखा।
युवक चला तो, लेकिन अब बड़ी बेचैनी में पड़ गया। बात तो ठीक थी। फकीर पागल नहीं था। कुछ बेबूझ था। सो फकीर सदा हुए हैं। फकीर और बेबूझ न हो, तो क्या खाक फकीर! फकीर और कुछ रहस्यपूर्ण न हो, तो क्या खाक फकीर! पंडित होते हैं तर्क-शुद्ध; फकीर तो तर्क-शुद्ध नहीं होते, रहस्यमय होते हैं; पहेली की तरह होते हैं।
मैंने भी क्या चूक कर दी! जरा सी देर और रुक जाता; जरा सी देर की बात थी! और पता नहीं यह आदमी क्या जानता हो! जानता जरूर होगा। क्योंकि ऐसी परीक्षा मेरी किसी ने कभी ली भी न थी। रात भर सो न सका। सुबह ही उठ कर पहुंच गया। अंधेरे-अंधेरे पहुंच गया। फकीर के द्वार पर सिर पटक कर पड़ रहा और कहा कि मैं हटूंगा नहीं यहां से। मुझसे भूल हो गई, मुझे क्षमा कर दो। एक अवसर और दो।
तो फकीर ने कहा, क्या भूल हो गई? उसने कहा, यही कि मुझे क्या लेना था! दिखता था मुझे कि बिना पेंदी की बालटी में पानी भरेगा नहीं। मुझे बोलना नहीं था। चुप खड़ा रहता। वायदा किया था, पूरा करना था। मैं वायदे से च्युत हुआ।
फकीर ने कहा, अगर इतना तुझे दिखाई पड़ गया कि बिना पेंदी की बालटी में पानी नहीं भरता, तो मैं तुझसे यह कहना चाहता हूं कि तेरे भीतर भी पेंदी नहीं है, इसलिए ऊर्जा इकट्ठी नहीं होती। ऊर्जा इकट्ठी न हो, तो तू कैसे ब्रह्म को जानेगा? ब्रह्म को जानने के लिए ऊर्जा चाहिए! ऐसी ऊर्जा कि ऊपर से बह उठे! अतिरेक चाहिए।
ऊर्जा के अतिरेक को बल कहा है छांदोग्य उपनिषद ने। ऐसी ऊर्जा चाहिए
कि तुम सम्हाल न सको; तुम्हारे ऊपर से बहने लगे। इतनी ही ऊर्जा हो, तो ही सत्य को जाना जा सकता है। निर्वीर्य सत्य को नहीं जान सकते। तुमने कभी सुना न होगा कि कोई नपुंसक, और ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध हुआ हो! वीर्यवान, ऊर्जा से भरे हुए लोग... ।

वृक्ष पर फूल कब खिलते हैं? जब वृक्ष के पास इतनी ऊर्जा होती है कि अब उमंग में लुटा सकता है, तब फूल खिलते हैं। अगर वृक्ष को ठीक खाद न मिले, ठीक जल न मिले, रोशनी न मिले, फूल न आएंगे। फूल तो विलास है, वैभव है, ऐश्वर्य है। और इसलिए मुझे ईश्वर शब्द प्यारा है। ईश्वर शब्द ऐश्वर्य से ही बना है। ईश्वर को वे ही लोग जान पाते हैं, जिनके भीतर इतनी ऊर्जा होती है कि जैसे वृक्षों की ऊर्जा फूल बन जाती है। ऊर्जा जब न्यूनतम होगी, तो फूल तो दूर, पत्ते भी मुश्किल से पैदा होंगे। फूल तो बहुत दूर, पत्ते भी कुम्हलाए-कुम्हलाए होंगे। ऊर्जा अतिरेक होनी चाहिए।
पश्चिम के बहुत बड़े रहस्यवादी कवि विलियम ब्लैक का वचन महत्वपूर्ण है; उपनिषद के सूत्रों जैसा है। विलियम ब्लैक आदमी था भी कि उसे कवि नहीं, ऋषि ही कहना चाहिए। उसका सूत्र हैः एनर्जी इ.ज डिलाइट--ऊर्जा ही आनंद है। पते की बात कही। ऊर्जा ही आनंद है। ऊर्जा की कमी ही दुख है। ऊर्जा की दीनता और क्षीणता ही पीड़ा है, नर्क है। क्योंकि फूल खिलते नहीं, सुगंध बिखरती नहीं। जैसे दीए में तेल चुक जाए, तो बाती बुझ जाए। दीए में तेल चाहिए, बाती चाहिए, तो ज्योति जले। और जितना तेल हो, उतनी ही प्रगाढ़ता से ज्योति जले।
और तुमने एक खूबी की बात देखीः हवा आती, अंधड़ आता, छोटे-मोटे दीए बुझ जाते हैं; जंगल में लगी आग और भी धू-धू करके जल उठती है। छोटे दीए बुझ जाते हैं; हवा का झोंका आया, कि गए! लेकिन बड़ी आग और बड़ी हो जाती है! तुम्हारे भीतर ऊर्जा हो, तो परमात्मा की ऊर्जा भी तुम्हारी ऊर्जा में संयुक्त हो जाती है। तुम्हारे जीवन में यूं आग लग जाती है, जैसे जंगल में आग लगी हो। छोटा-मोटा दीया हो, तो जरा सा हवा का झोंका और उसे बुझा जाता है। इसे स्मरण रखना। क्षुद्र ऊर्जा से नहीं चलेगा; विराट ऊर्जा चाहिए। आकाश की यात्रा पर निकले हो, ईंधन तो चाहिए ही चाहिए। पंखों में बल चाहिए।
इसलिए छांदोग्य ठीक कहता हैः "बलं वाव विज्ञानाद भूयः। विज्ञान से बल श्रेष्ठ है।"
क्या करोगे जान कर गणित, भूगोल, इतिहास? क्या करोगे जान कर भौतिकी, रसायन? इससे ज्यादा श्रेष्ठ है अपनी जीवन-ऊर्जा को संगृहीत करना; जीवन-ऊर्जा को ऐसे संगृहीत करना कि तुम एक सरोवर हो जाओ, लबालब भरे हुए। तुममें कोई छिद्र न हो; जिससे ऊर्जा बहे न। तुम्हारा घड़ा जब पूरा भरा हो, ऐश्वर्य से भरा हो, तो ईश्वर को जानने की क्षमता है।
मेरी बात लोगों को अखरती है, क्योंकि लोग समझते नहीं। लेकिन मैं तुमसे फिर दोहरा कर कहना चाहता हूं कि ईश्वर को जानना इस जगत में सबसे बड़ा विलास है। यह धन का विलास कुछ भी नहीं। यह पद का विलास कुछ भी नहीं। ईश्वर को जानना सबसे बड़ा विलास है, क्योंकि वह परम ऐश्वर्य की अनुभूति है। और उस परम ऐश्वर्य की अनुभूति के लिए पहले तुम्हें ऊर्जा को बचाना होगा, संगृहीत करना होगा।
और तुम व्यर्थ गंवा रहे हो! तुम्हारी निन्यानबे प्रतिशत ऊर्जा कचरेघर में जा रही है। फूल उगें तो कैसे उगें? ज्योति जगे तो कैसे जगे? नृत्य हो तो कहां से हो? थके-मांदे तुम क्या नाचोगे? टूटे-फूटे तुम क्या नाचोगे? और जब नाच नहीं पाते, तो बहाने खोजते हो। कहते हो, आंगन टेढ़ा! नाच न आवे आंगन टेढ़ा! अब आंगन के टेढ़े होने से कुछ नाचने में बाधा पड़ सकती है? अरे, जिसको नाचना है, आंगन टेढ़ा हो कि सीधा हो, नाचेगा। अगर नाच है, तो आंगन को ही सीधा होना पड़ेगा। नाचने वाले की ऊर्जा आंगन को सीधा कर देगी। आंगन का तिरछा होना कहीं नाचने वाले को रोक सकता है? लेकिन क्या-क्या बहाने हम खोजते हैं!
ऊर्जा की कमी है; पूछते फिरते हैं कि जीवन में दुख क्यों है? दुख का कारण सिर्फ इतना है कि सुख होता है ऊर्जा के अतिरेक से; महाअतिरेक से आनंद होता है। और तुम्हारे जीवन में बूंद-बूंद कर सब चुका जा रहा है। और ख्याल रखना, बूंद-बूंद गिरता है, लेकिन गागर ही नहीं, सागर भी खाली हो जाता है। बूंद-बूंद गिरता रहे, तुमसे अलग होता रहे; बूंद-बूंद टपकती रहे, तो गागर तो खाली होगी ही, सागर भी खाली हो जाता है।
और तुम किस-किस तरह से अपनी ऊर्जा को व्यर्थ कर रहे हो! तुम्हारे पास जितनी इंद्रियां हैं, उन सबसे तुम दो तरह के काम ले सकते हो। एक तो ऊर्जा

को भीतर ले जाने का; और दूसरा ऊर्जा को बाहर फेंकने का। यही अंतर्मुखी और बहिर्मुखी का भेद है। बहिर्मुखी मूढ़ है।
दरवाजा तो एक ही होता है। उसी दरवाजे पर एक तरफ लिखा होता हैः प्रवेश, एन्टें्रस; उसी दरवाजे पर दूसरी तरफ लिखा होता हैः एक्झिट। उसी से तुम भीतर आते, उसी से बाहर जाते। कोई दो दरवाजों की जरूरत नहीं होती। एक ही दरवाजा काफी होता है। तुम्हारी आंख से तुम्हारे देखने की ऊर्जा बाहर भी जाती है और भीतर भी आती है। जो समझदार है, वह आंख से ऊर्जा को इकट्ठा करता है। और जो नासमझ है, वह गंवाता है। जो नासमझ है, आंख उसके लिए छेद हो जाती है। और जो समझदार है, आंख उसके लिए संग्राहक हो जाती है।
बुद्ध ने कहा है, राह पर चलो तो चार कदम से ज्यादा मत देखना।
क्यों? क्योंकि ज्यादा की क्या जरूरत है! चलना है, तो चार कदम देखना पर्याप्त है। जब चार कदम चल लोगे, तो चार कदम आगे दिखाई पड़ने लगेगा। चार कदम देखते-देखते तो हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाएगी।
लेकिन तुम? चार कदम छोड़ कर सब देखते हो! वे चार कदम भर नहीं दिखते, जो चलने हैं। दीवाल पर लिखा है, डोंगरे का बालामृत; पढ़ो! इधर फिल्म का पोस्टर लगा है; पढ़ो! इधर कोई खोंमचे वाला खड़ा है। उधर कोई स्त्री गुजर गई। इधर किसी छैल-छबीले ने कोई फिल्मी धुन छेड़ दी। क्या-क्या हो रहा है चारों तरफ! तुम करो भी क्या! आंखें भागी फिर रही हैं; सब तरफ भटक रही हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि आंख से मनुष्य की अस्सी प्रतिशत ऊर्जा बाहर जाती है।
फिर कान भी वही कर रहे हैं। तुम क्या सुनते हो? गलत हो तो जल्दी सुनते हो, ठीक हो तो सुनते ही नहीं। अरे, ठीक में क्या रखा है! ठीक में कोई समाचार होता है! गलत में समाचार होता है। किसकी स्त्री किसके साथ भाग गई, इसमें कुछ समाचार होता है। मजा आ जाता है! पास सरक आते हैं लोग, जब ऐसी बातें होने लगती हैं। गुफ्तगू होने लगती है। फुसफुसा कर बातें करने लगते हैं। और जब दो आदमी फुसफुसा कर बातें करें, तो जितने आदमी हैं, सब सुनने लगते हैं! क्योंकि जब बात फुसफुसा कर हो रही है, तो जरा गहरी हो रही है। कोई बात गहरी हो रही है!
जिस बात को सबको सुनाना हो, फुसफुसा कर कहना; किसी के कान में कह देना।
और उससे यह भी कह देना कि भैया, किसी को बताना मत; कि कसम है तुम्हें मेरी, अगर किसी को बताओ। बस वह बात पूरे गांव में पहुंच जाएगी। वह हरेक के कान में पहुंच जाएगी!
कचरा सुन रहे हो। कचरा देख रहे हो। कचरा पढ़ रहे हो। और फिर कहते हो, दुख क्यों है? कचरा खा रहे हो। कचरा पी रहे हो। तुमसे शुद्ध जल न पीया जाएगा, कोकाकोला चाहिए! अब यह कभी सोचोगे ही नहीं, यह कोकाकोला है क्या? इसमें है क्या? मगर सारी दुनिया पी रही है। और अखबारों में बड़े-बड़े पोस्टर छपे हुए हैं। अखबार पढ़ रहे हो, लोग कोकाकोला पी रहे हैं। लोग अखबार पढ़ रहे हैं; फिल्में देख रहे हैं; रेडियो पर सुन रहे हैं। और सब जगह एक ही चर्चा है कि अगर जिंदगी का मजा लेना है, तो कोकाकोला के बिना नहीं! लिव्वा लिटिल हाट, सिप्पा गोल्ड स्पाट! नहीं तो जिंदगी बेकार गई। किसी काम न आई।
लोग क्या खाते हैं? क्या पीते हैं? क्या सुनते हैं? क्या देखते हैं? अगर तुम जरा हिसाब रखो, तो तुम्हें साफ दिखाई पड़ेगा, तुम क्यों दुखी हो। जो सुनने योग्य हो अगर वही सुना जाए, और जो देखने योग्य हो अगर वही देखा जाए, तो तुम्हारे जीवन की नब्बे प्रतिशत ऊर्जा तो अपने आप सुरक्षित हो जाएगी--अपने आप! तुम्हारे घर में कोई कचरा डाले, तो तुम इनकार करोगे। लेकिन तुम्हारी खोपड़ी में कोई कचरा डाले, तुम कहते होः आइए, विराजिए, पधारिए! बड़ी कृपा की। ऐसे ही आया करते रहिए। कैसी-कैसी प्यारी खबरें ले आए हैं! धन्यभाग कि आप पधारे। कृतकृत्य हो गए, कृतार्थ हुए!
फिल्में देखने जा रहे हो, जिनमें सिवाय हंगामे के और कुछ भी नहीं! पैसे भी खर्च करोगे; टिकट खरीदने में धक्के-मुक्के भी खाओगे; पिटोगे- कुटोगे भी। मगर लोगों ने तय ही कर रखा है, सौ-सौ जूते खाएं तमाशा घुस कर देखें। और मजा यह है कि जब तुम सौ-सौ जूते खा रहे हो, तब तमाशा दूसरे देख रहे हैं! और तमाशा ही क्या है? जब तुम पर जूते पड़ रहे हैं, वे तमाशा देख रहे हैं; जब उन पर जूते पड़ रहे हैं, तुम तमाशा देख रहे हो! और तमाशा ही क्या है?

छांदोग्य जिस बल की बात कर रहा है, वह वही ऊर्जा है, जिसको ब्लैक ने कहा, अतिरेक ऊर्जा का आनंद है। जिसको बुद्ध ने कहा, ऊर्जावान बनो। शक्ति को भीतर सरोवर बनने दो। यह खाली घड़ा शोभा नहीं देता। इस खाली घड़े को लेकर तुम परमात्मा के द्वार पर भी जाओगे, तो क्या मुंह दिखाओगे! कम से कम घड़ा तो भरा हो। इसलिए हमारे देश में पूर्ण-कलश स्वागत का प्रतीक बना, भरा हुआ कलश स्वागत का प्रतीक हो गया। लेकिन यह भीतर के भरे कलश की ही सूचना है।
"बलं वाव विज्ञानाद भूयः। विज्ञान से बल श्रेष्ठ है। अपि ह शतं विज्ञानवतां एको बलवान आकंपयते। क्योंकि एक बलवान मनुष्य, एक ऊर्जावान व्यक्ति सौ विद्वानों को डराता है।"
यह कोई पहलवान के लिए नहीं कहा गया है। एक ऊर्जावान व्यक्ति सौ पंडितों को डराता है। विद्वान यानी पंडित, जिन्होंने उधार ज्ञान इकट्ठा कर रखा है। इसलिए तो पंडित सदा ही ज्ञानी के दुश्मन होते हैं। होंगे ही। क्योंकि ज्ञानी उनके धंधे को जड़ से ही काटे डालता है।
पंडितों का धंधा क्या है? पंडितों का सिक्का चलता है अंधों में। और ज्ञानी लोगों को आंखें देने लगता है। अब जिनका धंधा ही अंधों में चलता हो, वे कैसे बरदाश्त करें कि कोई लोगों की आंखों की चिकित्सा करने लगे! आंखों की चिकित्सा हो गई तो उनका धंधा कैसे चलेगा? ये झूठे सिक्के कैसे चलेंगे? इसलिए जीसस को पंडितों ने सूली लगाई। वे रबाई थे, यहूदी पंडित थे, जिन्होंने जीसस को सूली लगाई। लगानी पड़ी, क्योंकि उस एक व्यक्ति ने सारे यहूदियों के पंडितों को कंपा दिया। सुकरात को एथेंस के पंडितों ने सूली लगाई, क्योंकि उस एक व्यक्ति ने पूरे एथेंस के सारे तथाकथित थोथे ज्ञानियों के प्राण संकट में डाल दिए। बुद्ध को तुमने पत्थर मारे। महावीर के कानों में तुमने सींकचे ठोंके। तुम्हारा पंडित सदा से ही प्रबुद्धजनों का दुश्मन रहा है। रहेगा। सदा रहेगा। क्योंकि उन दोनों का धंधा साथ चल नहीं सकता।
सुकरात को अदालत ने कहा था, अगर तुम सत्य बोलना बंद कर दो, तुम चुप हो जाओ, तो हमें कोई एतराज नहीं। तुम जीओ, मजे से जीओ। लेकिन सुकरात ने कहा कि अगर मैं चुप हो जाऊं, तो फिर जीकर भी क्या करूंगा! सत्य बोलना ही तो मेरा धंधा है।
अब यह धंधा बड़ा खतरनाक है। ठीक धंधे शब्द का ही उपयोग किया है सुकरात ने। यह सत्य बोलना ही मेरा धंधा है। अगर सत्य बोलना ही सुकरात का धंधा है, तो जो असत्य पर जी रहे हैं--और असत्य पर बहुत जी रहे हैं--वे स्वभावतः सुकरात को जिंदा न रहने देंगे। जब उनके जीवन पर बन आएगी, उनकी आजीविका पर बन आएगी, तो इस आदमी को हटाना ही होगा। यह रास्ते का रोड़ा है। यह खतरनाक है। यह तो लोगों को बिगाड़ रहा है।
सुकरात पर जुर्म क्या थे? वे ही जुर्म, जो मुझ पर हैं! वही के वही जुर्म हैं सदा। क्योंकि बात वहीं की वहीं है। आदमी बदलता ही नहीं। आदमी सीखता ही नहीं। आदमी हर बार घूम कर वहीं आ जाता है। सुकरात पर जो जुर्म थे... पहला जुर्म यह था कि सुकरात ऐसे सत्य बोलता है, जो परंपरा के विपरीत हैं।
अब सत्य ने कोई कसम खाई है परंपरा के अनुकूल होने की? परंपरा दो कौड़ी
की चीज है। सत्य को क्या पड़ी है कि परंपरा के अनुकूल हो! अगर परंपरा को कुछ पड़ी हो तो सत्य के अनुकूल हो जाए। लेकिन सत्य किसी के अनुकूल नहीं हो सकता। सत्य तो सिर्फ अपने अनुकूल होता है। सत्य का तो अपना छंद होता है। सत्य स्वच्छंद होता है।
यह छांदोग्य उपनिषद शब्द बड़ा प्यारा है। जिन्होंने अपने छंद को पा लिया है, उनके वचन इसमें संगृहीत हैं। सत्य तो स्वतंत्र होता है, उसका अपना ही तंत्र होता है। उस पर किसी और का शासन नहीं। वह अनुशासित नहीं होता किसी से, आत्मानुशासित होता है।
तो पहला जुर्म था सुकरात पर कि तुम सत्य बोलते हो जो परंपरा के विपरीत है।
सुकरात ने कहा, लेकिन सत्य सदा परंपरा के विपरीत रहेगा। इसमें मेरा कसूर नहीं है। कसूर परंपरा का है।

परंपरा होती है सड़ी-गली; परंपरा होती है अतीत की, मुर्दा। परंपरा होती
है पंडितों के हाथ में, पुरोहितों के हाथ में। और सत्य होता है प्रबुद्धजनों के हाथ में। प्रबुद्ध तो कभी कोई एकाध होता है। पंडितों का तो व्यवसाय है--परंपरागत, वंशानुगत।
दूसरा जुर्म था सुकरात पर कि तुम युवकों को बिगाड़ते हो!
निश्चित ही, सुकरात जैसे व्यक्तियों की बातें युवकों को ही जम सकती हैं। क्योंकि युवकों में ही थोड़ी अभी ऊर्जा होती है, थोड़ी शक्ति होती है, थोड़ी क्षमता होती है, थोड़ा कुछ कर गुजरने का अभी साहस होता है। थोड़ा अभियान, थोड़े अज्ञात की यात्रा अभी उनके लिए पुकारती है, चुनौती देती है। जैसे-जैसे आदमी बूढ़ा होने लगता है, शक्ति क्षीण होने लगती है, दीन होने लगता है, मृत्यु करीब आने लगती है, तो परंपरा के अनुकूल होने लगता है। अक्सर नास्तिक मरते-मरते आस्तिक हो जाते हैं। इससे तुम यह मत समझना
कि जीवन के अनुभव ने उन्हें आस्तिक बना दिया। मरते-मरते आस्तिक होने लगते हैं, क्योंकि मरते-मरते पैर डगमगाने लगते हैं। जवानी में नास्तिकता बड़ी सहज है, क्योंकि अभी पैरों में बल होता है। बुढ़ापे में मौत दरवाजे पर दस्तक देने लगती है। भय पकड़ने लगता है। लगता है, हो न हो परमात्मा हो! कौन जाने परमात्मा हो! मैं इनकार करता रहा, पीछे किसी मुसीबत में न पडूं। अभी भी कुछ देर नहीं हुई। सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए, तो भूला नहीं। अभी भी याद कर लूं। माफी मांग लूं। क्षमा मांग लूं। मरते-मरते गंगास्नान कर आऊं! काशी हो आऊं, कि काबा हो आऊं, हाजी हो जाऊं, मरते-मरते हाजी हो जाऊं! कुछ कर लूं। अगर परमात्मा होगा तो ठीक, न हुआ तो कोई हर्जा नहीं, क्या बिगड़ जाएगा। समझेंगे कि चलो, एक यात्रा कर आए काशी की, कि कैलाश की, कि काबा की। क्या बुरा! क्या बिगड़ गया! थोड़ा भौगोलिक ज्ञान ही बढ़ जाएगा। नए-नए देश देखने को मिल जाएंगे। नए-नए लोगों से मिलने को हो जाएगा। कुछ हानि तो होने वाली नहीं है। और अगर परमात्मा हुआ, तो पास में अपने एक प्रमाणपत्र भी हो जाएगा।
मरते-मरते आदमी आस्तिक होने लगते हैं।
सुकरात जैसे व्यक्तियों से तो युवा व्यक्ति ही आकर्षित होते हैं। हां, जरूर कुछ वृद्ध लोग भी आकर्षित होते हैं। लेकिन वे वृद्ध वे ही होते हैं, जिनका शरीर बूढ़ा हो गया होगा, लेकिन जिनकी आत्मा में अभी भी युवक होने की क्षमता है। जिनमें अभी भी दुस्साहस है। जो अभी भी अज्ञात की यात्रा पर निकल सकते हैं। जो अपनी छोटी सी डोंगी को लेकर अभी भी उस सागर में उतर जा सकते हैं जिसका दूसरा किनारा दिखाई नहीं पड़ता।
सत्य तो थोड़े से दुस्साहसी लोगों की ही बात है। भीड़ तो असत्य में जीएगी, क्योंकि भीड़ सांत्वना चाहती है, सत्य नहीं चाहती। इसलिए एक भी सत्य को जानने वाला व्यक्ति हजारों पंडितों के लिए संकट बन जाता है।
और कैसा मजा है! हिंदू पंडित मुसलमान पंडित के खिलाफ। मुसलमान पंडित ईसाई पंडित के खिलाफ। ईसाई पंडित यहूदी पंडित के खिलाफ। यहूदी पंडित पारसी पंडित के खिलाफ। लेकिन सुकरात जैसे व्यक्ति के संबंध में ये सारे पंडित एक साथ राजी हो जाते हैं! यह राज भरी बात है!
मेरा विरोध करने में हिंदू पंडित, मुसलमान पंडित, जैन पंडित, बौद्ध पंडित, सिक्ख पंडित--सब राजी। एक बात पर कम से कम राजी हैं। मैं इससे ही खुश होता हूं कि चलो, मेरे द्वारा कम से कम इतना भाईचारा तो बढ़ रहा है! चलो, मेरे एक मुद्दे पर इनकी दुश्मनी तो मिटी! चलो, इतनी बात पर तो कम से कम इन्होंने हाथ बढ़ाए एक-दूसरे की तरफ, इकट्ठे हुए!
क्या राज है? इनकी एक-दूसरे से जो दुश्मनी है, वह केवल औपचारिक है। वह
दो दुकानदारों की दुश्मनी है। वह प्रतिस्पर्धा है दुकानदारों की। लेकिन मेरे जैसा व्यक्ति तो उनकी दोनों की ही दुकान की जड़ों को काट रहा है, एक साथ काट रहा है। मेरे खिलाफ तो वे दोनों इकट्ठे हो जाएंगे।
यह छांदोग्य उपनिषद ठीक कहता हैः "क्योंकि एक ऊर्जावान व्यक्ति सौ विद्वानों को डराता है, आकंपित कर देता है।"
आकंपित शब्द डराने से भी महत्वपूर्ण है। उनके प्राण थरथरा जाते हैं। भूकंप आ जाता है। उनका भवन गिरने लगता है। भवन ही उनका क्या है? ताश के पत्तों का है! उनकी नाव डूबने लगती है। नाव ही कागज की है। खिलौनों से खेल

रहे हैं, और दूसरों को भी खिलौनों में भरमा रहे हैं। क्या-क्या मजा चल रहा है धर्म के नाम पर! कैसे-कैसे खेल चल रहे हैं! और कितनी गंभीरता से चल रहे हैं!
रामलीला होती है; हर साल होती रहती है! वही रामलीला, वही देखने वाले लोग! हजारों बार देख चुके हैं! हजारों बार देख रहे हैं! एक-एक शब्द याद है। वे रामलीला में जो अभिनय कर रहे हैं, उनको भी शायद भूल जाए, मगर देखने वालों को एक-एक शब्द याद है। पक्का पता है कि अब दशरथ जी क्या कहेंगे, कि अब राम जी क्या बोलेंगे, कि अब सीता मैया पर क्या गुजरेगी! सब पता है, फिर भी देख रहे हैं।
और जानते हैं भलीभांति कि यह छोकरा जो राम बना है, कौन है। गांव का ही छोकरा है। मगर उसके पैर पड़ेंगे, फूलमालाएं पहनाएंगे, शोभायात्रा निकलेगी! रामचंद्र जी की बारात निकलेगी, और फूलमालाएं चढ़ाई जाएंगी, और पैर छुए जाएंगे, और पैर धो-धो कर लोग पानी पीएंगे। और सबको मालूम है यह छोकरा कौन है! यही गांव का लफंगा है। यही इनकी छोकरियों को सताता है। मगर इस समय वे बातें छेड़ने की जरूरत नहीं। अभी मुकुट बांधे हुए राम बना बैठा है। अभी बात और है।
क्या अभिनय में पड़े हो? क्या खेल खेल रहे हो? बच्चों जैसे काम! जैसे बच्चे गुड्डा-गुड्डी का विवाह करते हैं, ऐसे तुम राम और सीता का विवाह करवा रहे हो।
मंदिरों में क्या हो रहा है? कृष्ण जी को झूला झुलाया जा रहा है! अब बेचारे कृष्ण जी कुछ कर भी नहीं सकते। अगर उनको न भी झूलना हो... । जैसे मुझे झूलना पसंद नहीं, बिल्कुल पसंद नहीं! मुझे बचपन से ही झूले से नफरत है। अब पता नहीं कृष्ण जी को पसंद था कि नहीं। उनको चक्कर भी आ रहा हो, तो कोई बात नहीं! भक्त लोग झूला झुला रहे हैं, तो झूलना पड़ रहा है। और भक्तों के हाथ में सब है। जब लिटा दें, तो लेट जाओ। जब उठा दें, तो उठ जाओ। जब पट खोलें मंदिर के, तो खुल जाएं; जब बंद कर दें, तो बंद हो जाएं। क्या खेल कर रहे हो!
मूर्तियां बना ली हैं। अपनी ही कल्पना के जाल हैं सब। कोई राम को पूज रहा है, कोई कृष्ण को पूज रहा है, कोई बुद्ध को, कोई महावीर को! पत्थर की मूर्तियां यूं पूजी जा रही हैं, जैसे इनकी पूजा से तुम्हें सत्य मिल जाएगा। यह कोई पूछता नहीं कि महावीर ने किसी की मूर्ति पूजी थी? यह पूछना शायद शिष्टाचार नहीं।
जैनियों की एक सभा में मैंने एक बार पूछ लिया। वे बहुत नाराज हो गए। मैंने उनसे पूछा कि तुम महावीर की मूर्ति पूजते हो, तुम कम से कम यह तो पता लगाओ कि महावीर ने कभी किसी की मूर्ति पूजी थी? और जब महावीर ने ही नहीं पूजी, तो तुम महावीर की मूर्ति पूज कर महावीर के अनुयायी नहीं हो, दुश्मन हो। अगर महावीर के सच्चे अनुयायी हो, तो पूजो मत।
महावीर ने तो शिक्षा दी है, अशरण-भावना। बड़ी अदभुत शिक्षा! किसी की शरण ही न जाना। पूजने का तो सवाल ही नहीं उठता। क्योंकि तुम्हारे भीतर ही बैठा है परमात्मा, तुम किसको पूज रहे हो? खोजो, पूजो मत। जागो, पूजो मत। आविष्कार करो अपने भीतर। जिसे तुम बाहर पूज रहे हो, वह बाहर नहीं है। वह तुम्हारे भीतर है। वह पूजा करने वाले में छिपा है। खोजने वाले में ही खोज का गंतव्य है। तुम्हारे जानने वाले में ही वह छिपा है, जिसे जानना है।
तो महावीर ने कहा, अशरण-भावना।
मगर बड़ा मजा है! महावीर की मूर्तियां ही मूर्तियां हैं सारे देश में! बुद्ध ने कहा कि मुझ पर मत अटक जाना। मुझसे इशारे ले लो, चलना तो तुम्हें होगा। बुद्ध तो केवल इशारे करते हैं।
लेकिन बस, बुद्ध की जितनी मूर्तियां बनीं, किसी की भी नहीं! इतनी मूर्तियां बनीं कि अरबी में, उर्दू में मूर्ति शब्द के लिए जो पर्यायवाची शब्द है, वह है बुत। बुत बुद्ध का ही अपभ्रंश है। इतनी मूर्तियां बनीं कि बुद्ध शब्द ही बुत का पर्यायवाची हो गया, मूर्ति का पर्यायवाची हो गया।
सबसे पहले बुद्ध की मूर्तियां बनीं।
और बुद्ध ने इनकार किया था कि मेरी बात को इसलिए मत मानना कि मैंने कहा है। मेरी बात को तब मानना, जब तुम जान लो।

और बुद्ध ने किसकी मूर्ति पूजी थी? किसी की भी मूर्ति नहीं पूजी थी। बुद्ध का कसूर ही यही था। अगर वे किसी की मूर्ति पूजे होते, जो आज भारत में हिंदू उनको अपने सिर पर धारण करते। उनकी भी पालकी निकलती। लेकिन हिंदुस्तान से बुद्ध को हिंदुओं ने उखाड़ फेंका। कारण क्या था? क्योंकि बुद्ध ने न राम को पूजा, न कृष्ण को पूजा। बुद्ध ने किसी को पूजा ही नहीं। बुद्ध ने परंपरा को कोई सहारा न दिया। बुद्ध ने तो भीतर के सत्य को, नग्न सत्य को वैसा का वैसा रख दिया, जैसा था। लगे किसी को चोट, तो लगे। प्रीतिकर लगे तो ठीक, अप्रीतिकर लगे तो ठीक। सत्य को तो कहना ही होगा।
स्वभावतः, पंडित थरथराते हैं।
"बलवान होने पर ही मनुष्य उठ कर खड़ा होता है।"
बलवान शब्द की जगह हमेशा तुम पढ़ना ऊर्जावान, तब तुम्हारे लिए इस सूत्र का अर्थ बिल्कुल स्पष्ट हो जाएगा! ऊर्जावान होने पर ही मनुष्य उठ कर खड़ा होता है। तुम कहोगे, यह भी क्या बात हुई! हम सब तो उठ कर खड़े होते हैं! यह कोई उठ कर खड़ा होना नहीं। तुम्हारी चेतना तो सोई हुई है; तुम भला खड़े हो गए हो, मगर तुम्हारी चेतना तो बिल्कुल सोई हुई है। जब ऋषि उठ कर खड़े होने की बात करते हैं, तो तुम्हारी चेतना के खड़े होने की बात करते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं--चार्ल्स डार्विन और उनके अनुयायी--कि बंदर से आदमी बना। और बनने में सबसे बड़ा कारण क्या था? सबसे बड़ा राज क्या था? क्योंकि बंदर तो चारों हाथ-पैर से चलता है। आदमी दो पैर पर खड़ा हो गया। आदमी का खड़ा हो जाना दो पैर पर, विकास में सबसे बड़ा चरण सिद्ध हुआ। दो पैर पर खड़े हो जाने के कारण ही आदमी और बंदर में जमीन-आसमान का अंतर हो गया। कहां बंदर और कहां आदमी!
आज तो कोई कहता भी है कि बंदर से आदमी पैदा हुआ, तो तुम्हें अपमानजनक मालूम होता है। लेकिन क्रांति घटी सिर्फ छोटी सी बात से कि आदमी का शरीर सीधा खड़ा हो गया। सीधा खड़े होने से बहुत से फर्क पड़ गए। सबसे बड़ा फर्क तो यह पड़ा कि जब जानवर, कोई भी जानवर, चारों हाथ-पैर से चलता है, तो उसके मस्तिष्क में खून की मात्रा ज्यादा पहुंचती है। इसलिए खून की अधिक मात्रा पहुंचने के कारण सूक्ष्म तंतु विकसित नहीं हो पाते। खून के बहाव के कारण टूट-टूट जाते हैं। बनते भी हैं, तो टूट जाते हैं।
और तंतु बहुत सूक्ष्म हैं मस्तिष्क के। तुम्हारे इस छोटे से सिर में सात करोड़ तंतु हैं। बड़े बारीक हैं, इतने बारीक हैं कि तुम्हारा बाल भी इतना बारीक नहीं है। वैज्ञानिक कहते हैं कि अगर मस्तिष्क के तंतुओं को एक के ऊपर एक, एक के ऊपर एक रखा जाए, तो एक हजार तंतुओं को रखने से तुम्हारे बाल की मोटाई के बराबर तंतु बनेगा। इतने सूक्ष्म तंतुओं को जरा ही खून की गति ज्यादा हुई कि वे टूट जाते हैं। उनके टूट जाने से मस्तिष्क विकसित नहीं हो पाया जानवरों का।
आदमी खड़ा हो गया दो पैर से, इसका परिणाम सबसे बड़ा तो यह हुआ कि गुरुत्वाकर्षण के विपरीत होने के कारण उसके सिर तक खून कम पहुंचने लगा। स्वभावतः, क्योंकि गुरुत्वाकर्षण नीचे की तरफ खींचता है वस्तुओं को; खून को भी नीचे की तरफ खींचता है। मस्तिष्क की तरफ खून कम जाने लगा।
इसलिए तो तुम बिना तकिए के रात में सो नहीं सकते। अगर बिना तकिए के सोओगे, तो जागे ही रहोगे। क्योंकि खून इतना पहुंचता रहेगा मस्तिष्क में कि वह तुम्हें सोने नहीं देगा; जगाए रखेगा; तंतुओं में हड़बड़ी मचाए रखेगा। इसलिए तकिया चाहिए। तकिया तुम्हारे सिर को ऊंचा कर देता है; शरीर को सिर से नीचा कर देता है। खून कम पहुंचता है। खून कम पहुंचता है, तुम आराम से सो पाते हो।
इसलिए मैं शीर्षासन के पक्ष में नहीं हूं। क्योंकि शीर्षासन मस्तिष्क को निश्चित नुकसान पहुंचाता है। और मैंने अभी तक एक ऐसा शीर्षासन करने वाला व्यक्ति नहीं देखा जिसमें कोई प्रतिभा हो! बुद्धू बहुत तरह के देखे। खोपड़ी के बल खड़े हुए लोग बुद्धू ही हो सकते हैं। पहले तो बुद्धू होना ही चाहिए, तब वे खोपड़ी के बल खड़े होंगे। दूसरा, फिर खोपड़ी के बल खड़े होने से और बुद्धूपन पैदा होगा। और जितनी ज्यादा देर खड़े होंगे, उतने बुद्धू होंगे।

हां, यह बात जरूर है कि उनमें पशुओं जैसा बल आ सकता है। क्योंकि मस्तिष्क के प्रतिभा के तंतु तो टूट जाएंगे, तो लट्ठ ही लट्ठ बचेगा।
बुद्धि तो गई। तो हो सकता है शरीर के लिए तो स्वास्थ्यप्रद हो, लेकिन मस्तिष्क के लिए तो हानिप्रद है।
और यह तो पक्की बात है। बंदर से जूझ कर देख लो तो पता चल जाएगा। एक बंदर पर्याप्त है तुम्हारे बड़े से बड़े पहलवान को भी ठंडा कर देने के लिए। विवेकानंद के पीछे एक बंदर पड़ गया था। बंदर भी अजीब होते हैं। कुछ जानवरों में खूबी होती है, बंदर और कुत्तों में खासकर, कि वर्दीधारियों के खिलाफ होते हैं। पुलिस वाला हो, पोस्टमैन हो, संन्यासी हो, वर्दी वाला दिखा कि कुत्ते भौंके! कि बंदर नाराज हुआ!
विवेकानंद चले जा रहे होंगे अपना लट्ठ लिए। वर्दीधारी! एक बंदर उनके पीछे हो लिया। उन्हें डरवाने लगा। विवेकानंद घबड़ाए। यूं तो बहादुर आदमी थे। पूरे-पूरे क्षत्रिय तो नहीं थे, मगर खत्री तो थे ही!
अब तुम पूछोगे, क्षत्रिय और खत्री में क्या भेद होता है?
भेद भारी है। सच तो यह है कि क्षत्रिय अब दुनिया में कोई नहीं, खत्री
ही खत्री हैं। क्योंकि क्षत्रिय तो परशुराम ही खतम कर गए! तुमने कहानी तो पढ़ी है कि परशुराम ने अठारह बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया। सारे क्षत्रिय मार डाले; अठारह बार, एक बार भी नहीं। मगर फिर भी क्षत्रिय तो हैं। तो ये क्षत्रिय कहां से आए? ये खत्री हैं! खत्री का मतलब यह होता है कि ये पूरे-पूरे क्षत्रिय नहीं हैं।
उन पुराने दिनों में ऋषि-मुनियों से यह काम लिया जाता था। इसीलिए तो तुमको लोग कहते हैं, ऋषि-मुनियों की संतान! क्योंकि जब परशुराम ने सारे क्षत्रिय मार डाले, तो अब क्या करना? स्त्रियों को तो मार नहीं सकते थे परशुराम। वह जरा उनको हेटा काम मालूम पड़ा होगा, कि क्या स्त्रियों को मारना! तो क्षत्राणियां तो बच गईं। विधवाएं बच गईं। और उस समय का यह नियम था कि अगर कोई विधवा, या कोई भी स्त्री जिसको बच्चे पैदा न होते हों किसी कारण से, वह ऋषि-मुनियों से जाकर प्रार्थना करे तो वे दयावश बाल-बच्चे पैदा करवा देते थे। उनका काम वही था जो कि हम शिवजी के नंदी से लेते हैं! ऋषि-मुनि थे, समाज की सेवा ही उनका कार्य था। परोपकार के लिए ही जीते थे! सो खत्री यानी ऋषि-मुनियों की संतान! विवेकानंद खत्री थे; पक्के खत्री थे। डंडा लिए और अकड़ कर चले जा रहे! वह डंडा और अकड़ आदमियों को प्रभावित करे भला, बंदरों को नाराज कर देती है। एक बंदर पीछे हो लिया। वह डरवाने लगा। विवेकानंद को घबड़ाहट लगी! एकांत था। यूं तो ब्रह्मज्ञानी थे कि सब संसार माया है। मगर यह बंदर! बहुत मन में दोहरायाः ब्रह्म सत्य जगत माया! मगर यह बंदर, वह एकदम पीछे ही पड़ा हुआ था। वह करीब ही आता जा रहा था। सो वे भागने लगे। वहां कोई था भी नहीं देखने वाला।
भागे, तो बंदर को और मजा आ गया! तो बंदर भी भागने लगा। दो-चार बंदर और झाड़ों से उतर आए। उन्होंने कहा, अच्छा! अरे, तमाशा जब हो रहा हो तो... । विवेकानंद के तो छक्के छूट गए। रास्ता लंबा। पहाड़ी का रास्ता। हिमालय की यात्रा पर गए थे। यह नहीं सोचा था कि यह झंझट होगी। गए थे ब्रह्म-दर्शन को, और यह मिल गया बंदर!
एकदम से ख्याल आया कि ऐसे भागने में तो झंझट है। और बंदर उतरते आ रहे हैं झाड़ों से! ऐसे अगर भागते रहे, तो थोड़ी देर में ये लोग मुसीबत कर देंगे। अब तो कुछ करना पड़ेगा। तो रुक कर खड़े हो गए। लौट कर खड़े हो गए डंडा टेक कर, कि अब जो कुछ होगा होगा। कड़ी कर ली हिम्मत। संयम साधा। मंतर-तंतर पढ़ा होगा! स्मरण किया होगा कि हे परमहंस रामकृष्णदेव! अरे, अब तो काम आओ! ये दुष्ट बंदर, और अपने वाले, लाल मुंह वाले! काले मुंह बंदर होते तो भी ठीक था, कि रावण के भक्त हैं, चलो कोई बात नहीं। मगर अपने वाले। रामजी के सेवक। हनुमान जी के वंशज। ये इस तरह की हरकत कर रहे हैं! कलियुग बिल्कुल निश्चित आ गया है!
मगर वे खड़े हुए डंडा टेक कर, तो बंदर भी रुक गए। बंदर होते हैं नकलची। उन्होंने देखा, यह आदमी रुक गया, वे भी रुक गए। तब जरा विवेकानंद की हिम्मत बढ़ी। विवेकानंद जरा दो कदम उनकी तरफ बढ़े, तो बंदर जरा पीछे हटे! विवेकानंद जरा डंडा बजा कर उनके पीछे भागे, तो बंदर भागे। तो विवेकानंद ने अपने

संस्मरणों में लिखा है कि उस दिन मुझे समझ में आया कि भागने से कोई सार नहीं। मुसीबत आए, तो टिक कर सामना ही कर लेना ठीक है। मुसीबत की चुनौती स्वीकार कर लेना ठीक है।
चार्ल्स डार्विन और उनके अनुयायी कहते हैं कि मनुष्य विकसित हुआ, क्योंकि खड़ा हुआ--शरीर की दृष्टि से। एक तो मस्तिष्क को खून कम मिला; उससे सूक्ष्म तंतु विकसित हुए। दूसरा, उसके दो हाथ मुक्त हो गए चलने के काम से। उन्हीं दो हाथों से सारी संस्कृति विकसित हुई है। फिर आदमी को, दो हाथ मुक्त हो गए, तो कुछ भी करने की सुविधा हो गई। चित्र बनाए। मूर्ति बनाए। मकान बनाए। जयरामजी करे। हाथ मिलाए। गले मिले। सारी संस्कृति, सारी सभ्यता उन दो हाथों का खेल है। अब वे चलने में ही उलझे रहते, तो यह विकास नहीं हो सकता था। फिर विकास होते-होते बात बढ़ती चली गई। विज्ञान खोजा। यंत्र बने। आदमी के हाथ खाली थे, उनके लिए काम चाहिए था।
तो मनुष्य का सारा विकास शरीर के सीधे खड़े होने से है। लेकिन उपनिषद
के ऋषि कहते हैं, अगर शरीर के सीधे खड़े होने से इतना विकास हुआ, तो जिस दिन तुम्हारी चेतना भी सीधी खड़ी हो जाएगी, उस दिन कितना विकास न होगा!
यह सूत्र बड़ा प्यारा हैः "स यदा बली भवति अथोत्थाता भवति--बलवान होने
पर मनुष्य उठ कर खड़ा हो जाता है।"
चेतना उसकी खड़ी हो जाती है, जैसे ज्योति आकाश की तरफ उठने लगे, ऐसी उसकी चेतना ऊर्ध्वगामी हो जाती है।
और जिसकी चेतना ऊर्ध्वगामी है--"अथोत्थाता भवति"--जो ज्योति की तरह ऊपर की तरफ बढ़ा जा रहा है, उसी के जीवन में ये सारी अदभुत घटनाएं घटती हैं। "उत्तिष्ठन परिचारिता भवति।"
ऐसी जिसकी चेतना ऊपर की तरफ उठने लगी, वही गुरु के सान्निध्य को उपलब्ध हो सकता है। क्योंकि गुरु वह है, जो ऊपर जा चुका। उससे संबंध उन्हीं का हो सकता है, जो स्वयं भी ऊपर की तरफ जाने लगे। कुछ तो समानता होनी चाहिए। कम से कम दिशा की समानता होनी चाहिए। तुम नीचे की तरफ जा रहे हो तो फिर कैसे गुरु से मिलन होगा!
"उठने पर वह गुरु की सेवा करता है।"
यह सेवा शब्द तुम्हें किसी भ्रांति में न डाल दे, यह जरा ख्याल रखना। "उत्तिष्ठन परिचारिता भवति।"
इस देश में हमने सेवा के बड़े और अर्थ लिए थे। जब से ईसाइयत देश में आई,
तब से सेवा का अर्थ बिल्कुल विकृत हो गया। सेवा का जो सौंदर्य था, वही नष्ट हो गया। सेवा बड़ी और ही चीज हो गई। इसलिए अच्छा हो कि दो शब्दों का प्रयोग अलग-अलग करो, परिचर्या और सेवा।
"परिचारिता भवति।"
वह गुरु की सेवा में संलग्न हो सकता है, जिसकी चेतना उठ कर खड़ी हो गई।
हम इस देश में सेवा उनकी करते थे, जो हमसे ऊपर हैं। ईसाइयत ने सेवा का
एक नया रूप इस देश में प्रवेश करवायाः सेवा उनकी करनी, जो हमसे नीचे हैं।
सेवा करनी है दरिद्र की, दीन की, बीमार की, दुखी की। सेवा करनी है कोढ़ी की।
सेवा करनी है कैंसर के मरीज की। सेवा करनी है अनाथों की, विधवाओं की, वृद्धों की। कुछ बुराई नहीं इस सेवा में। लेकिन यह सेवा सामाजिक घटना है, यह सेवा धार्मिक घटना नहीं है।
इसलिए मैं कलकत्ता की मदर टेरेसा को कोई धार्मिक व्यक्ति नहीं मानता। धर्म से क्या लेना-देना है! सामाजिक सेवा है, अच्छा काम है। ठीक है किसी अनाथ बच्चे को पाल लेना। बुरा काम तो निश्चित ही नहीं है, अच्छा काम है। लेकिन इससे कुछ धर्म नहीं होने वाला है। धर्म तो तब घटता है, जब तुम उसके चरण पकड़ते हो, जो तुमसे ऊपर है। जो तुमसे नीचे है, उसके चरण पकड़ोगे, इससे तो अहंकार ही बढ़ेगा। जब तुमसे जो ऊपर है, उसके चरण पकड़ोगे, तो अहंकार गिरेगा। जो तुमसे ऊपर है, वही तुम्हें ऊपर की तरफ ले जा सकता है। इसको परिचर्या कहें हम।
छांदोग्य कहता हैः "उत्तिष्ठन परिचारिता भवति। जिसकी चेतना उठ कर खड़ी हो गई, वह गुरु की सेवा करता है--गुरु की।"
सेवा तो हम इस देश में सिर्फ गुरु की करते थे, और किसी की नहीं। सेवा गुरु की ही हो सकती है। गुरु शब्द का अर्थ होता है, अंधकार को मिटाने वाला।

सेवा उसकी ही करनी है जिसका अंधकार मिट गया हो, ताकि हमारा अंधकार मिट सके। अरे, उस दीए के करीब आओ जो जल चुका है, ताकि तुम्हारी बुझी ज्योति, तुम्हारा बुझा दीया, तुम्हारी बुझी बाती भी सुलग उठे।
"सेवा करने से वह गुरु के पास बैठने योग्य बनता है।"
क्या लाभ होगा गुरु की सेवा का? उसके पास बैठने की योग्यता आएगी। समर्पण से योग्यता आती है। गुरु के पास बैठना इस जगत का अभूततम अनुभव है, अपूर्व अनुभव है।
"परिचरन उपसत्ता भवति।"
उपसत्ता सिर्फ पास बैठना ही नहीं। जब तुम गुरु के पास बैठते हो, तो किसी अर्थों में गुरु की सत्ता से आच्छादित हो जाते हो, उसकी आभा से मंडित हो जाते हो, उसकी तरंगों में डूब जाते हो। जैसे कोई नदी में स्नान करता है, शीतल जल में, तो शीतल हो जाता है। ऐसे ही गुरु के पास भी एक शीतल ऊर्जा है। वह स्वयं शीतल हुआ है। वह स्वयं शांत हुआ है, मौन हुआ है। तो उसके पास एक सरोवर है। तुम उसमें डुबकी लगाओ।
यही गंगास्नान है। यही वस्तुतः तीर्थ-स्नान है। गुरु के पास होना ही तीर्थ में होना है। और गुरु को जिसने पा लिया उसने तीर्थंकर को पा लिया। उसकी सत्ता आच्छादित करने लगती है तुम्हें। जैसे कि तुम निकलोगे, रातरानी के फूल खिले हों, उनके पास से--सिर्फ पास से गुजर जाओगे या थोड़ी देर खड़े हो जाओगे--तो तुम चकित होओगेः दूर भी निकल आए, फिर भी तुम्हारे वस्त्रों के साथ लिपटी हुई रातरानी की गंध चली आई है! घर भी पहुंच गए, लेकिन गंध की कोई स्मृति तुमको अब भी आच्छादित किए हुए है, अब भी तुम्हारे नासापुटों को भरे हुए है! ऐसे गुरु के पास जो बैठेगा, वह गुरु की सत्ता से आच्छादित होता है।
"उपसीदन द्रष्टा भवति।"
और पास बैठने से द्रष्टा बनता है। उपसीदन शब्द से ही उपनिषद बना है।
उपसीदन यानी पास बैठना।
यह जान कर तुम हैरान होओगे कि उपसीदन शब्द से उपनिषद निर्मित हुआ।
उपनिषद का अर्थ है, गुरु के पास बैठ कर जो पाया; पास बैठ-बैठ कर जो मिला। कभी बोलने से मिला। कभी न बोलने से मिला; कभी गुरु को देखने से मिला; कभी गुरु के पास आंख बंद करने से मिला। कभी गुरु के उठने से मिला, चलने से मिला। कहना कठिन है। मगर गुरु के पास होने पर अनेक-अनेक रूपों में मिलता है। अनेक-अनेक तरह से संग बैठता है, संगीत बैठता है। तार छिड़ने लगते हैं वीणा के।
कुछ शब्द इसी के जैसे हैं। जैसे उपासना। उपासना का भी वही अर्थ होता है, पास बैठना; उप-आसन। तुम अगर सोचते हो कि तुम जाकर मंदिर में और परमात्मा की उपासना कर रहे हो, तो तुम गलती में हो। जब तक तुम जीवित गुरु के पास न बैठोगे, उपासना का अर्थ ही न जानोगे। वहां तो पत्थर की मूर्ति है। उसके पास बैठ-बैठ कर तुम भी पत्थर हो जाओगे। पत्थर हो ही गए हो।
इस देश में जितने पाषाण हैं, शायद कहीं और न होंगे। क्योंकि पत्थरों
के पास बैठ कर और होगा क्या! तुम भी पत्थर जैसे ही कठोर हो जाओगे। तुम्हारे भीतर से भी करुणा खो जाएगी, प्रेम खो जाएगा, रस सूख जाएगा।
जरा सोच-समझ कर बैठना, किसके पास बैठते हो! क्योंकि जिसके पास बैठोगे, वैसे ही हो जाओगे। सदा अपने से ऊपर को खोजना। और ख्याल रहे, मन चाहता है सदा अपने से नीचे को खोजना। क्योंकि जब तुम अपने से नीचे आदमी के पास बैठते हो, तो तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिलती है कि अहा, मैं कितना बड़ा! इसलिए राजनेता चमचों से घिरे रहते हैं। चमचों का अर्थ है, जिनके पास बैठ कर उनको लगता है कि मैं कितना महान! छोटे-छोटे आदमी कीड़े-मकोड़ों की तरह उनके आस-पास घूम रहे हैं, खुशामद कर रहे हैं। तो उनको रस आता है।
अहंकार की इच्छा यही होती है कि सदा अपने से छोटे को खोजो। क्योंकि छोटे के सामने तुलना में तुम बड़े मालूम होते हो। और गुरु के पास बैठना यूं है, जैसे ऊंट पहली दफे हिमालय के पास आए! इसलिए अक्सर ऊंट पहाड़ों के पास नहीं पाए जाते, मरुस्थलों में पाए जाते हैं! उन्होंने भी खूब चुना है! मरुस्थलों में रहते हैं, तो वहां पहाड़ मालूम होते हैं! स्वभावतः, मरुस्थल में ऊंट ही सबसे ऊंची चीज है। उससे ऊंचा और क्या! जब ऊंट पहाड़ के पास आता

है, तब उसको बेचैनी होती है, अड़चन होती है। पहले तो वह कहता है, पहाड़-पहाड़ कुछ नहीं, सब कल्पना है! सब झूठ है! पहले तो इनकार करता है, खंडन करता है, विरोध करता है। क्योंकि उसके अहंकार को चोट लग रही है।
गुरु के पास आकर भी अड़चन खड़ी होती है। आकर भी लोग चूक जाते हैं। एक सज्जन ने मुझे लिखा है कि मैं आपको अपने मित्र की तरह मानने को राजी हूं। बड़ी कृपा! मुझे कोई अड़चन नहीं। यह भी मेरा सौभाग्य! मैं तो इसको भी सौभाग्य मानता हूं कि जब कोई मुझे अपना शत्रु भी मान लेता है। यह भी क्या कम! कुछ तो माना। उपेक्षा तो न की। चलो, बड़ी कृपा कि मित्र की तरह मुझे मानने को तैयार हो। लेकिन चूक जाओगे। मुझे कुछ हर्ज न होगा, मगर तुम्हें हर्ज हो जाएगा। उपासना न हो पाएगी।
और मित्र ही मानना है, तो कहीं भी मिल जाएंगे मित्र। इतनी दूर आने की क्या जरूरत? मित्रों की कोई कमी है! यार-दोस्तों की कोई कमी है! एक खोजो हजार मिलते हैं! मत खोजो, तो तुम्हें खोजते हुए चले आते हैं!
इतने दूर! वे सज्जन कलकत्ता से यहां आए हैं! बड़ा कष्ट किया। कलकत्ते में कोई मित्रों की कमी है? लेकिन उन्होंने ऐसा लिखा है, जैसे मुझ पर बड़ी कृपा कर रहे हैं, अनुकंपा कर रहे हैं! बड़ा दया-भाव प्रकट किया है कि आपको मित्र-भाव में स्वीकार कर सकता हूं। लेकिन उनको शायद ख्याल भी न हो, शायद चेतना में उनके बात भी न हो कि यह उपासना को इनकार करना है।
मैं तो राजी हूं, जिस भाव में स्वीकार करो। मेरा क्या बनता-बिगड़ता है! मित्र तो मित्र; शत्रु तो शत्रु; कुछ नहीं तो कुछ नहीं! न मेरा कुछ खोता है, न मुझे कुछ मिलता है। न मुझे कुछ लेना, न मुझे कुछ देना। जो कुछ होना है, तुम्हारा है।
उपासना शब्द का अर्थ मंदिर की पूजा नहीं है। वह भी गुरु के पास बैठना है।
और वही उपवास शब्द का भी अर्थ है। उपवास का भी अर्थ होता है, पास निवास करना, पास वास करना। वह भी गुरु के पास ही हो सकता है।
अनशन उपवास नहीं है। भूखे मरना उपवास नहीं है। हां, गुरु के पास ऐसी तल्लीनता से बैठना कि न भूख याद रहे, न प्यास याद रहे। भूख भूल जाए, प्यास भूल जाए, कुछ भी याद न रहे। शरीर भी भूल जाए। यूं बैठने का नाम उपवास है। गुरु के पास यूं तल्लीन होकर बैठ जाना, कि तुम मिट ही जाओ, उपासना है।
और ऐसी उपासना में, ऐसे उपवास में जो सुन पड़ेगा, जो समझ आ जाएगा, जो किरण तुम्हारे प्राणों में उतर जाएगी, वही उपनिषद बन जाती है। उपनिषद का अर्थ है, पास बैठ कर जो पाया।
"उत्तिष्ठन परिचारिता भवति, परिचरन उपसत्ता भवति, उपसीदन द्रष्टा भवति।"
और जो पास बैठेगा, उसे आंख मिलती है, वह द्रष्टा हो जाता है। उसे नजर मिलती है देखने की, अपने को देखने की। और सब देखने की नजर तो तुम्हारे पास है। बस, अपने को देखने की नजर नहीं है। और सब तो तुम देख लेते हो, अपने से चूक जाते हो!
"गुरु के पास बैठने से द्रष्टा बनता है, श्रोता बनता है।"
ये बहुमूल्य शब्द हैं। श्रोता का अर्थ इतना ही नहीं होता कि तुमने सुन लिया। सुनते तो सभी हैं, मगर सभी श्रोता नहीं होते। सुनते सभी हैं, सभी श्रावक नहीं होते। सुन तो कोई भी लेता है, जिसके पास कान हैं। लेकिन एक कान से गई बात, और दूसरे कान से निकल जाती है! अगर तुम पुरुष हो तो एक कान से जाती है, दूसरे कान से निकल जाती है। अगर स्त्री हो, तो दोनों कान से जाती है और मुंह से निकल जाती है! मगर निकल जाती है। रुकती नहीं, अटकती नहीं, ठहरती नहीं।
ठहर जाए, हृदय में उतर जाए। और हृदय में तभी उतर सकती है, जब तर्क से न सुनी जाए, वितर्क से न सुनी जाए, विवाद से न सुनी जाए। जब संवाद घटित हो, जब संगीत बजे, जब शिष्य और गुरु के हृदय एक साथ धड़कते हैं; जब उनके बीच कोई भेद नहीं रह जाता; जब अभेद सधता है--तब व्यक्ति श्रोता बनता है। सुनता है; पहली बार सुनता है। देखता है; पहली बार देखता है। और हिंदी में अनुवाद ठीक नहीं किया तुमने। तुमने लिखा सहजानंदः
"मनन करने वाला बनता है।"

नहीं; मन्ता शब्द ठीक है। वह तुम देखो, ख्याल करो मूल में।
"उपसीदन द्रष्टा भवति, श्रोता भवति, मन्ता भवति।"
सुनने वाला नहीं बनता, श्रोता बनता है। देखने वाला नहीं बनता, द्रष्टा बनता है। मनन करने वाला नहीं बनता, मन्ता बनता है। फर्क क्या है? मनन तो सभी करते हैं, लेकिन मनन हमेशा किसी और चीज का किया जाता है, किसी विषय का किया जाता है। दर्शन तो सभी को होता है, लेकिन किसी और चीज का होता है। श्रवण तो सभी करते हैं। कान हैं, तो सुन लेते हैं; आंख हैं, तो देख लेते हैं; मन है, तो मनन कर लेते हैं। लेकिन यह कुछ और बात है। द्रष्टा, श्रोता, मन्ता, बाहर से इसका संबंध नहीं है। आंख भीतर मुड़ जाए, तो द्रष्टा। श्रवण भीतर मुड़ जाए, तो श्रोता। और मनन भीतर मुड़ जाए, तो मन्ता। यह अंतर्यात्रा है।
और जब ये तीन घटनाएं घटती हैं, तो इन तीनों घटनाओं का इकट्ठा जो अर्थ है, वह है बुद्ध। बुद्ध बनता है।
"बुद्धा भवति।"
और जो बुद्ध बन गया, उसके जीवन में पहली दफा कर्तृत्व पैदा होता है। "कर्त्ता भवति।"
बड़ा अनूठा सूत्र है। पूरा विज्ञान आ गया जीवन-क्रांति का। जीवन-रूपांतरण की सारी सीढ़ियां आ गईं। और बड़े क्रम से आईं, बड़ी व्यवस्था से आईं।
तुम भी कर्म करते हो, लेकिन तुम कर्ता नहीं हो। तुम्हारा कर्म असल में कर्म नहीं कहना चाहिए, उपकर्म कहना चाहिए; एक्शन नहीं, रिएक्शन।
किसी ने गाली दी, तो तुमने गाली दी। इसको कर्म नहीं कहना चाहिए, यह प्रतिकर्म है। न वह गाली देता, न तुम गाली देते। उसने गाली दी, तो उसकी प्रतिक्रिया हुई तुम्हारे भीतर, तुमने भी गाली दी। और उसने प्रशंसा की, तुम्हारे भीतर प्रतिक्रिया हुई, तुमने भी प्रशंसा की। मालिक वह है। उसने चाबी चलाई। उसने बटन दबाई, तुम्हारा पंखा चलने लगा; उसने बटन दबाई, तुम्हारा पंखा बंद हो गया। तुम मालिक नहीं हो। इसलिए तुम कर्ता नहीं हो। हां, क्रिया हो रही है। मगर क्रिया तो बिजली के पंखे से भी होती है। तुम बिजली के पंखे को कर्ता नहीं कह सकते। तुम बटन दबाओ, और बिजली का पंखा कहे कि आज नहीं! आज तो छुट्टी का दिन है। कि आज तो जवाहरलाल का जन्मदिन है। झूला झूलें जवाहरलाल! आज हम काम-धाम न करेंगे। नहीं; तुम बटन दबाते हो, पंखे को चलना ही पड़ता है।
कोई तुम्हें गाली दे और तुम कहो कि आज नहीं भाई! आज छुट्टी पर हैं। कल आना। तो कुछ मालकियत पता चलेगी। उसने गाली दी, तुम भनभना गए। भूल ही गए छुट्टी-वुट्टी। उठा लिया डंडा। याद ही न रही कि आज छुट्टी का दिन है; कि आज विश्राम करने की तय की थी; कि आज सोचा था, अनहद में विश्राम करेंगे! और यह उपद्रवी आ गया। तुम कर्ता नहीं हो, प्रतिकर्ता हो।
बुद्ध को किसी ने गाली दी। बुद्ध ने सुना और कहा कि अगर बात पूरी हो गई
हो तो मैं जाऊं! क्योंकि मुझे दूसरे गांव पहुंचना है, लोग प्रतीक्षा करते होंगे।
गाली देने वालों ने कहा कि हमने गालियां दी हैं; यह कोई बात नहीं!
बुद्ध ने कहा, तुम्हारी तरफ से गालियां होंगी। मेरी तरफ से तो बात ही है। तुमने कही, मैंने सुनी। लेकिन मुझे इसमें कुछ रस नहीं।
लोगों ने कहा, यह क्या बात कह रहे हैं आप! हमने ऐसी कठोर गालियां दीं, आपको कोई रस नहीं!
बुद्ध ने कहा, अगर रस का मजा लेना था, तो दस साल पहले आना था। तब मेरी तलवार खिंच जाती; तब तुम्हारी गर्दन जमीन पर पड़ी होती; तब यहां लहू बह जाता। मगर बड़ी देर करके तुम आए। अब मैं अपना मालिक हूं। अब तुम्हारी गाली देने से मैं परिचालित नहीं होता। अभी पिछले ही गांव में कुछ लोग मिठाइयां लेकर आए थे। और मैंने उनसे कहा, मेरा पेट भरा है। मैं तुमसे पूछता हूं, उन्होंने मिठाइयों का क्या किया होगा?
एक आदमी ने भीड़ में से कहा, क्या किया होगा! घर ले गए होंगे। बच्चों को बांट दी होंगी। बुद्ध ने कहा, वही तो मुझे तकलीफ हो रही है, कि अब तुम क्या करोगे? तुम गालियां लाए, मैं कहता हूं मैं लेता नहीं। मेरा पेट भर चुका।

अब तुम क्या करोगे? ले जाओ भाई! बच्चों को बांट देना, पत्नी को दे देना, भाई-बंधुओं को बांट देना! मैं तो नहीं लेता। तुम देते हो, यह तुम्हारी मर्जी। धन्यवाद! मगर मैं लेता नहीं। और जब तक मैं न लूं, तुम मुझे कैसे दे सकते हो! मालिक हूं मैं अपना।
यह सूत्र कहता हैः पहले व्यक्ति द्रष्टा बनता गुरु के पास बैठ कर। श्रोता बनता। मन्ता बनता। फिर बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता। यह त्रिकोण पूरा हो गया कि बुद्धत्व घटित हो जाता है। और तब कर्ता बनता है। सिर्फ बुद्ध ही कर्ता होते हैं। और जो कर्ता बन गया, वही विज्ञानी है। उसने ही, जानने योग्य जो है, उसे जाना। उसने अपने को जाना। अपने को जाना, तो सब जाना।
सहजानंद, मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूं। तुम्हें यह सूत्र अजीब लगा, क्योंकि विज्ञान के विरोध से शुरू होता है और विज्ञानी की प्रशंसा पर पूर्ण होता है!
मगर विज्ञान है पर को जानना। और विज्ञाता होना है स्व को जानना। विज्ञान है साइंस, विज्ञाता है धर्म। और ये बीच की सारी सीढ़ियां समझने योग्य हैं, बहुमूल्य हैं।
मगर हम अपने ही ढंग से समझते हैं, तो हमें कीमती से कीमती बातें भी अजीब सी लगने लगती हैं। हमारी भी मुसीबत है।
सेठ चंदूलाल ने अपने मित्र ढब्बूजी से कहा, मेरे दांत में बहुत दर्द है। ढब्बूजी, क्या करूं?
ढब्बूजी ने कहा, कुछ करने की जरूरत नहीं। मेरे भी दांत में एक बार ऐसा दर्द हुआ था। मैं अपने घर गया और मेरी पत्नी के एक चुंबन मात्र से ही सारा दर्द खतम हो गया। इसलिए मेरी मानो और जैसा मैंने किया वैसा करो!
सेठ चंदूलाल बोले, बात तो बिल्कुल ठीक है। लेकिन क्या तुम्हारी पत्नी
इस बात के लिए राजी हो जाएगी?
मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा फजलू कह रहा था, पापा, मैं पढ़ी-लिखी, बुद्धिमान, कुशल, सुशील और सुंदर लड़की से शादी करूंगा।
नसरुद्दीन ने कहा, मतलब! फजलू, पांच लड़कियों से एक साथ शादी करना चाहते हो?
एक स्त्री ने किसी फोटोग्राफर से मेले में पूछा, बच्चों की फोटो किस रेट से उतारते हो?
फोटोग्राफर ने कहा, दस रुपए में बारह!
तब तो मैं बाद में आऊंगी।
फोटोग्राफर ने कहा, क्यों?
उसने कहा, अभी तो मेरे सिर्फ दो ही बच्चे हैं!
समझने के ढंग! अपनी-अपनी समझ!
एक युवती जैसे ही नदी में कूदने को थी कि चौकीदार ने उसे टोक दिया, रोक दिया। बोला कि नदी में नहाने की मनाही है!
युवती ने गुस्से में कहा, जब मैं कपड़े उतार रही थी, तभी तुमने यह बात क्यों न बताई?
चौकीदार बोला, यहां सिर्फ नहाने की मनाही है, कपड़े उतारने की नहीं!
एक डाकखाने के पोस्ट मास्टर छुट्टी लेकर अपने घर आराम कर रहे थे। बाहर से पोस्टमैन ने आवाज दी, बाबूजी, रजिस्ट्री ले लो।
पोस्ट मास्टर साहब कमरे के अंदर से ही आंखें मूंदे चिल्ला कर बोले, अरे कमबख्त! आज तो मुझे चैन से रहने दे। मैं छुट्टी पर हूं!
वे बेचारे अपने दफ्तर में ही अपने को समझ रहे हैं! समझ तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ती। वह हमेशा खड़ी है वहां, और प्रत्येक चीज की व्याख्या करती रहती है।
एक अत्यंत सुंदर युवती ने एक नवजवान भिखारी को पेट भर खाना खिला कर कहा, और कुछ?
भिखारी ने कहा, जीसस का वचन याद करोः मनुष्य केवल रोटी के लिए ही नहीं जीना चाहता है!
किसी गुफा में तीन साधु ध्यानमग्न बैठे थे। एक दिन उधर से शेर गुजरा।
छह महीने बाद एक साधु बोला, कितना सुंदर शेर था!

एक साल बाद दूसरा साधु बोला, यह शेर नहीं चीता था!
दो साल बाद तीसरा साधु बोला, यदि तुम दोनों इसी प्रकार लड़ते-झगड़ते रहे
तो मैं किसी दूसरे स्थान पर चला जाऊंगा!
आज इतना ही।

अनहद में बिसराम
आठवां प्रवचन

चिंतन नहीं--मौन अनुभूति

पहला प्रश्नः ओशो,
उत्तमा तत्त्वचिंतैव मध्यम शास्त्रचिंतनम्।
अधमा तंत्रचिंता च तीर्थ भ्रांत्यधमाधमा।।
अनुभूतिं विना म.ूढो वृथा ब्रह्मणि मोदते।
प्रतिबिंबितशाखाग्रफलास्वादनमोदवत।।
तत्व का चिंतन उत्तम है, शास्त्र का चिंतन मध्यम है, तंत्र की चिंता अधम है और तीर्थों में भटकना अधम से भी अधम है। जैसे कोई पेड़ की छाया में प्रतिबिंबित फल को खाकर प्रसन्न हो, वैसे ही वास्तविक अनुभव के बिना मूढ़ मनुष्य ब्रह्म का आनंद पाने की व्यर्थ कल्पना करता है।
ओशो, हमें मैत्रेयी उपनिषद के इन दो सूत्रों का अभिप्राय समझाने की अनुकंपा करें।

पूर्णानंद!
तत्व का चिंतन उत्तम है, क्योंकि तत्व का चिंतन हो ही नहीं सकता। तत्व
का चिंतन असंभव है। तत्व वस्तु नहीं है, विषय नहीं है। तत्व तो तुम्हारी जीवन-ऊर्जा है, तुम्हारा स्वरूप है, तुम्हारी चेतना है। तत्व का चिंतन नहीं होता, तत्व की चेतना होती है। तत्व का अनुभव ही तब होता है, जब सब चिंतन छूट जाता, सब चिंता छूट जाती, सब विचार शून्य हो जाते। जहां कोई तरंग नहीं होती चित्त पर, जहां चित्त निस्तरंग होता है, वहीं अनुभूति है तत्व की।
इसलिए मैत्रेयी उपनिषद का यह सूत्र महत्वपूर्ण है, इशारा कर रहा है। लेकिन शब्दों में इशारा करना असंभव नहीं तो कठिन तो है ही। उन्हीं शब्दों का उपयोग करना होता है जो उपलब्ध हैं। और सभी शब्द आदमी के गढ़े हुए हैं, और तत्व तो आदमी का गढ़ा हुआ नहीं है। इसलिए किसी शब्द में तत्व समाता नहीं। एक होटल में मुल्ला नसरुद्दीन ने प्रवेश किया। गर्मी के दिन हैं, सूरज से आग बरसती है। थका-मांदा, पसीना-पसीना आकर होटल में बैठा।
मैनेजर ने आकर कहा कि क्या आपकी सेवा करें?
मैनेजर था कुछ दार्शनिक वृत्ति का व्यक्ति। फुरसत के समय में दर्शन पढ़ा करता था।
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, कुछ और नहीं। सबसे पहले तो पानी का एक गिलास!
मैनेजर ने कहा, क्षमा करें। कांच का गिलास तो दे सकता हूं; पानी का गिलास कहां से लाऊं?
पानी का गिलास होता ही नहीं। कहते हम सब हैं, पानी का गिलास। काम चल जाता है, समझने वाला समझ लेता है। ऐसे ही समझना इस सूत्र के प्रारंभ को, पानी के गिलास की भांति। इस पर अटक मत जाना।
"उत्तमा तत्त्वचिंतैव--उत्तम है तत्व का चिंतन।"
ऐसा मत सोच लेना कि तत्व का कोई चिंतन होता है। तत्व का कोई चिंतन होता ही नहीं; तत्व का तो अनुभव होता है। और अनुभव भी तब होता है, जब चिंतन शून्य हो जाता है।
लेकिन किसी भी शब्द का उपयोग करो, कठिनाई खड़ी हो जाती है। अगर कहो, तत्व का ध्यान। उपद्रव शुरू हुआ, क्योंकि ध्यान भी तो तुम किसी विषय का करते हो। धन का लोभी धन का ध्यान करता है। काम से पीड़ित काम का ध्यान करता है। तत्व का कैसे ध्यान होगा? ध्यान भी तो विषय का होता है।
मेरे पास लोग आकर पूछते हैं, किसका ध्यान करें? राम का, कृष्ण का, बुद्ध का, महावीर का--किसका ध्यान करें? कौन सा ध्यान सार्थक होगा?
शब्द ने भरमाया। शब्द ने खूब भरमाया है, सदियों से उलझाया है। जंगलों में भटके लोग तो कभी न कभी घर लौट आते हैं, शब्दों में भटके लोग जन्मों- जन्मों तक भटकते रहते हैं। फिर शब्दों में और-और शब्द लगते चले जाते हैं।

शब्दों में और नई-नई शाखाएं निकल आती हैं, नए-नए पत्ते, नए-नए फूल। शब्दों कीशृंखला का कोई अंत ही नहीं है।
यह पूछना कि किसका ध्यान करें, बुनियादी रूप से गलत सवाल है। मगर मैं उनकी मजबूरी समझता हूं। वे हमेशा बाहर की भाषा में ही सोच सकते हैं, क्योंकि सारी भाषा ही बाहर के लिए है। भीतर तो मौन है। भीतर की तो कोई भाषा होती नहीं। भीतर तो भाषा की कोई जरूरत भी नहीं। भाषा का उपयोग ही तब है, जब हम किसी और से बोल रहे हों। भाषा संवाद है। जहां मैं और तू हैं, वहां भाषा की उपादेयता है। जहां दो हैं, वहां भाषा है। और जहां एक ही बचा, वहां कैसी भाषा! वहां तो मौन रह जाता है। इसलिए मैं कहता हूं, परमात्मा की तो एक ही भाषा है, मौन। वहां बोल कर चूक जाओगे। न बोले, पा जाओगे। वहां एक शब्द भी उठ गया, तो जमीन और आसमान का फासला हो जाएगा। वहां बोलना ही मत।
पश्चिम के बहुत बड़े विचारक, यहूदी दार्शनिक मार्टिन बूबर ने अपनी प्रसिद्धतम पुस्तक में लिखा है... । पुस्तक का नाम हैः मैं और तू--आई एंड दाऊ। इस सदी में लिखी गई महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण किताबों में एक है। लेकिन बूबर एक दार्शनिक हैं, ऋषि नहीं। विचारक हैं, मनीषी नहीं। सोचा है, समझा है; जाना नहीं, पहचाना नहीं, अनुभव नहीं, स्वाद नहीं, पीया नहीं। प्यास वैसी की वैसी है।
शब्दों से प्यास बुझ भी नहीं सकती है। किसी को प्यास लगी हो और तुम सिर्फ पानी की बातें करो, सुंदर-सुंदर बातें करो; वर्षा के गीत गाओ, मेघ मल्हार छेड़ो; तो भी प्यास न बुझेगी। भूख लगी हो, तो पाक-शास्त्र किसी काम के नहीं हैं। रूखी-सूखी रोटी भी ज्यादा उपयोगी है। लेकिन परमात्मा के संबंध में हम पाक-शास्त्रों में उलझे हैं।
और क्या हैं वेद? और क्या हैं कुरान? और क्या हैं पुराण? और क्या हैं बाइबिलें? ब्रह्म की भूख है, सत्य की भूख है, और शब्दों के थाल सजे रखे हैं! सुंदर-सुंदर थाल! तुम भूखे बैठे हो, और रंगीन से रंगीन छपा हुआ मेनू भी तुम्हारे हाथ में पकड़ा दिया जाए, तो क्या करोगे? उलटोगे-पलटोगे, पेट तो न भरेगा! मेनू से तो कभी किसी का पेट भरा नहीं।
वैसी ही स्थिति दार्शनिक की, चिंतक की होती है। बूबर ने किताब तो बड़ी महत्वपूर्ण लिखी। लिखा है कि परमात्मा और व्यक्ति के बीच जो प्रार्थना का संबंध है, वह मैं और तू का संवाद है। लेकिन जहां मैं हो और तू हो, वहां संवाद होता है? वहां तू-तू मैं-मैं होती है, वहां विवाद होता है। संवाद तो वहां है, जहां मैं और तू मिल कर एक हो जाते हैं। जहां मैं मैं नहीं, तू तू नहीं; जहां दोनों गए; जहां अद्वय बचा।
लेकिन फिर वहां, जब विवाद नहीं है, तो संवाद भी कहां! संवाद की भी क्या जरूरत! मौन में ही बात कह दी गई, मौन में ही बात समझ ली गई। परमात्मा की भाषा मौन है।
बूबर जिस प्रार्थना की बात कर रहे हैं, वह प्रार्थना सच्ची नहीं। मैं
और तू का संवाद, वह कहते हैं, प्रार्थना है। मैं तुमसे कहता हूं, मैं और तू जब तक है तब तक कहां प्रार्थना?
जहां मैं नहीं तू नहीं, जहां दोनों गए, जहां कोई नहीं, जहां घर में सन्नाटा हो गया; जहां विवाद क्षीण, जहां संवाद क्षीण, जहां शून्य का साम्राज्य स्थापित हो गया; उस शून्य में जो संगीत बज उठता है, जो हृदयतंत्री कंपित हो उठती है, जो शब्द-शून्य, जो मौन गदगद अवस्था होती है-- आंखें आनंद से गीली हो आती हैं; प्राण आनंद से पुलक उठते हैं; एक नृत्य घेर लेता है--उस घड़ी का नाम प्रार्थना है। उसी घड़ी का नाम ध्यान है। ये शब्द ही अलग-अलग हैं। प्रार्थना प्रेमी का शब्द है। ध्यान ज्ञानी का शब्द है। प्रार्थना--मीरा का, चैतन्य का, राबिया का, जीसस का, जरथुस्त्र का। ध्यान-- पतंजलि का, लाओत्सु का, महावीर का, बुद्ध का। शब्द का ही भेद है, लेकिन अर्थ? अर्थ तो एक ही है। अर्थ में जरा भी अंतर नहीं है।
एक जर्मन सेनापति दूसरे महायुद्ध के बाद अपने मित्र अंग्रेज सेनापति
से बातें कर रहा था। और उसने कहा कि पता नहीं हम क्यों हारे? यह बात राज ही बनी रहेगी। यह रहस्य कभी खुलेगा या नहीं! क्योंकि शक्ति हमारे पास ज्यादा थी। वैज्ञानिक, तकनीकी दृष्टि से हम तुमसे ज्यादा संपन्न थे। फिर भी हम हारे और तुम जीत गए! यह बात गणित में बैठती नहीं!

अंग्रेज सेनापति मुस्कुराया और उसने कहा, उसका राज मैं तुम्हें बताए देता हूं। राज छोटा है। बात छोटी है, मगर गहरी है। हम इसलिए जीते कि हर युद्ध के दिन की शुरुआत में हम प्रार्थना करते थे। हम परमात्मा की प्रार्थना करके ही युद्ध में उतरते थे। माना कि तकनीकी दृष्टि से, वैज्ञानिक दृष्टि से हम तुमसे पीछे थे, मगर परमात्मा जब साथ हो, तो फिर किसी और चीज की जरूरत नहीं है। इसलिए हम जीते और तुम हारे।
जर्मन सेनापति ने कहा, यह बात तो और भी उलझा देती है मामले को, सुलझाती नहीं। क्योंकि प्रार्थना तो हम भी करते थे, रोज करते थे, नियम से करते थे। प्रार्थना के बाद ही युद्ध पर जाते थे। अगर प्रार्थना से ही निर्णय होना था, तो हमारी प्रार्थना तुमसे कुछ कमजोर न थी!
अंग्रेज सेनापति तो खिलखिला कर हंस पड़ा। उसने कहा, तुम समझते नहीं बात। तुम प्रार्थना किस भाषा में करते थे?
स्वभावतः, जर्मन ने कहा कि हम जर्मन भाषा में करते थे!
अंग्रेज ने कहा, बस बात साफ हो गई। अरे, भगवान जर्मन भाषा समझता है? हम अंग्रेजी में करते थे! इसलिए हमारी बात पहुंच गई और तुम्हारी बात नहीं पहुंची।
हंसो मत इस पर। सेनापति तो बुद्धू होते हैं। बुद्धू न हों तो सेनापति
न हों! सेनापतियों को माफ किया जा सकता है, लेकिन तुम्हारे पंडित-पुरोहित भी तो यही कहते रहे। वे कहते हैं, संस्कृत देव-भाषा है! वह ईश्वर की अपनी भाषा है। संस्कृत में बोलोगे तो समझेगा। और जैन कहते हैं, प्राकृत में बोलोगे तो समझेगा। और बौद्ध कहते हैं, पाली में बोलोगे तो समझेगा। और यहूदी कहते हैं, हिब्रू के सिवाय उसे कोई भाषा आती नहीं। और मुसलमान कहते हैं, अरबी ही बस उसकी भाषा है। और सब तो आदमियों की ईजादें हैं! अगर अरबी उसकी भाषा न होती, तो कुरान अरबी में क्यों उतरता?
सारी भाषाएं आदमी की हैं। उसकी कोई भाषा नहीं। मौन ही उसकी भाषा है।
और चिंतन मौन का अभाव है। तत्व को जानना हो तो शून्य होना होता है।
इसलिए इस पहली बात को ठीक से समझ लोः "उत्तमा तत्त्वचिंतैव।"
तत्व के चिंतन को उत्तम कहता है ऋषि, क्योंकि तत्व का चिंतन चिंतन ही नहीं होता। तत्व का चिंतन अर्थात चिंतन से रिक्त हो जाना, अचिंत्य हो जाना। तत्व का चिंतन अर्थात निर्विचार, निर्विकल्प, निर्बीज। इसलिए उत्तम। उत्तम होने का कारण? क्योंकि जहां शून्य है, वहां पूर्ण है। तुम शून्य हुए, और पूर्ण उतरा। पूर्ण उतरता ही शून्य में है। घड़े को भरना हो, तो पहले उसे कूड़े-करकट से तो खाली कर लेना होगा न! घड़ा खाली हो, तो ही भर सकता है।
इस प्रकृति का एक नियम है कि यह खालीपन को पसंद नहीं करती। यह खालीपन
को तत्क्षण भर देती है। तुमने कभी देखा, नदी की जलधार में अंजुलि बना कर पानी को भरा है! और जैसे ही अंजुलि को ऊपर उठाया है, वैसे ही चारों तरफ से जल दौड़ा है और अंजुलि में भरे जल के कारण जो थोड़ा सा गड्ढा पैदा हो गया था, वह फिर भर गया है। तत्क्षण भर जाता है। देर ही नहीं लगती। ऐसे ही तुम जरा शून्य तो होओ! और तुम पाओगे, तुम्हारे शून्य होने से चारों तरफ से परमात्मा की ऊर्जा दौड़ पड़ती है; तुम्हारी तरफ प्रवाहित होने लगती है। तुम्हें भर देती है। तुम्हें ऐसा भर देती है कि तुम कभी भी न भरे थे। लेकिन यह भराव तुम्हारे मैं का भराव नहीं है। इस भराव में तुम तो गए, तुम तो मिटे, परमात्मा बचा। यह भराव यूं है जैसे कोई बांसुरी में गीत को बजाए, जैसे कोई बांसुरी में सुर छेड़ दे। बांसुरी तो खाली है, और इसीलिए तो स्वर उससे प्रवाहित हो पाते हैं।
तत्व के चिंतन को उत्तम कहा, क्योंकि तत्व का चिंतन चिंतन ही नहीं है।
मैं आप अपनी तलाश में हूं, मेरा कोई रहनुमा नहीं है।
वो क्या दिखाएंगे राह मुझको, जिन्हें कुछ अपना पता नहीं है।
मसर्रतों की तलाश में है, मगर यह दिल जानता नहीं है,
अगर गमे-जिंदगी न हो, तो जिंदगी में मजा नहीं है।
शऊर-ए-सज्दा नहीं है मुझको, तू मेरे सज्दों की लाज रखना,
यह सर तेरे आस्तां से पहले, किसी के आगे झुका नहीं है।
ये इनके मंदिर, ये इनकी मस्जिद, ये जरपरस्तों की सज्दागाहें,

अगर ये इनके खुदा का घर है, तो इनमें मेरा खुदा नहीं है।
बहुत दिनों से मैं सुन रहा था, सजा वो देते हैं हर खता पर,
मुझे तो इसकी सजा मिली है, कि मेरी कोई खता नहीं है।
ये इनके मंदिर, ये इनकी मस्जिद, ये जरपरस्तों की सज्दागाहें,
अगर ये इनके खुदा का घर है, तो इनमें मेरा खुदा नहीं है।
यह सूत्र बड़ा क्रांतिकारी है। इस सूत्र में बड़ी आग है। जल सको, तो नए
हो जाओ। जल सको इसमें, तो नया जीवन मिल जाए।
"उत्तमा तत्त्वचिंतैव।"
उत्तम है तत्व का चिंतन।
"मध्यम शास्त्रचिंतनम्।"
और शास्त्र का चिंतन मध्यम; नंबर दो का।
क्यों? क्योंकि शास्त्र के चिंतन का अर्थ होता हैः उधार, बासा; किसी
और ने जाना, किसी और ने जीया, तुमने तो सिर्फ सुना। किसी ने स्वाद लिया, तुम्हारे हाथ तो सिर्फ शब्द पड़े। किसी ने अमृत पीया और अमृत हुआ, और तुम्हारे हाथ में तो बस यह कोरी बात रह गई। जैसे कोई नदी के तट पर चलता है, तो रेत पर पदचिह्न बन जाते हैं। आदमी तो गुजर जाता है, पदचिह्न पड़े रह जाते हैं। शास्त्र पदचिह्न हैं--समय की रेत पर बुद्धों के पैरों के चिह्न।
मगर समय की इस रेत पर बुद्धू भी चलते हैं! और बुद्धों के और बुद्धुओं
के पैरों के चिह्नों में कुछ बहुत भेद नहीं होता। एक तो बुद्धों के भी पैरों के चिह्न ही हैं वे, उन पर अगर चले भी तो भी तुम न पहुंच पाओगे। क्योंकि दो व्यक्ति एक जैसे नहीं होते। इसलिए जिसने भी किसी दूसरे व्यक्ति का अनुसरण करने की चेष्टा की, उसने अपने भाग्य में हार लिख ली, उसने अपने को बर्बाद करने का इंतजाम कर लिया।
सुनना सबकी, गुनना अपनी। समझो, बुद्धों ने जो कहा हो; मगर लकीर के फकीर
न हो जाना। और शास्त्रों का अध्येता लकीर का फकीर हो जाता है। उसकी आंखों पर शास्त्रों के चश्मे चढ़ जाते हैं। और इतने शास्त्रों के शब्द उसकी आंखों पर इकट्ठे हो जाते हैं कि उसे दिखाई ही पड़ना बंद हो जाता है। शास्त्रों ने जितने लोगों को अंधा किया है, उतना किसी और चीज ने नहीं। इस दुनिया में शास्त्रीय अंधों की भीड़ है, जमघट है! अलग-अलग शास्त्रों के कारण अंधे हैं! मगर किताबों को आंखों पर रख लोगे, तो देखोगे कैसे?
और फिर किताबें एकाध-दो हों, तो भी ठीक। बहुत किताबें हैं! और किताबों
पर किताबें हैं! पहाड़ खड़े हो जाते हैं तुम्हारी आंखों पर सिद्धांतों के, शब्दों के जालों के। और फिर तुम उन्हीं शब्दों के जालों को गुनते-बुनते रहते हो। फिर तुम्हें वह नहीं दिखाई पड़ता जो है, जो सामने खड़ा है, जो चारों तरफ से तुम्हें घेरे हुए है; जो तुम्हारे भीतर भी है और जो तुम्हारे बाहर भी है; जिसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है; वह तत्व फिर तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता।
शास्त्र का चिंतन मध्यम है, नंबर दो का। जिसकी हिम्मत न हो तत्व में उतरने के लिए, उस कायर के लिए शास्त्र हैं। चलो, कुछ न बने, तो बुद्धों के वचन ही दोहराते रहो। हालांकि कितना ही दोहराओ, तुम तोते ही रहोगे। तोते कितना ही राम-नाम जपें, तो भी परमात्मा की अनुभूति को उपलब्ध न हो जाएंगे। और तुमने सुना ही है कि वाल्मीकि तो राम का उलटा नाम जप कर भी परमात्म-अनुभव को पा लिए! मरा-मरा जपा, और पहुंच गए। और तोते तो शुद्ध राम-राम जपते हैं, फिर भी नहीं पहुंचते! क्या है बात?
सवाल, तुम क्या जपते हो, इसका नहीं है। भाव का है, प्रगाढ़ता का है, तन्मयता का है, तल्लीनता का है, ओत-प्रोत होने का है, डूबने का है, रंग जाने का है। तोता कहता तो राम-राम है, मगर बस कह ही रहा है।
मैंने सुना, आधी रात एक व्यक्ति थका-मंदा एक होटल के द्वार को खटखटाया। मैनेजर ने कहा, आधी रात है, तुम्हें लौटाऊं, यह भी अच्छा नहीं लगता। थके-मांदे, दूर से आए हो, भूखे-प्यासे हो, यह मैं देख सकता हूं चेहरे से। लेकिन सब कक्ष तो भरे हुए हैं। इतना ही कर सकता हूं, अगर तुम राजी होओ, एक कक्ष में दो बिस्तर हैं, लेकिन एक यहूदी धर्मगुरु, एक रबाई उसमें ठहरा हुआ है। आदमी भला है, इसलिए इनकार न करेगा, तुम भी सो सकते हो।

वह युवक इतना थका-मांदा था कि उसने कहा कि मुझे सिर्फ सोना ही है। कुछ थोड़ा खाने-पीने को दे दो, और फिर मैं जाकर सो जाऊं।
वह ऊपर कमरे में पहुंचाया गया। देख कर हैरान हुआ, थोड़ा चिंतित भी हुआ, थोड़ा किंकर्तव्यविमूढ़ भी मालूम पड़ा। क्योंकि रबाई, यहूदी धर्मगुरु अपने पलंग के बगल में घुटने टेके परमात्मा की प्रार्थना में लीन था। दो पलंग थे कमरे में। कौन सा पलंग मैं चुनूं? उस युवक के मन में सवाल उठा। धर्मगुरु से पूछ लेना जरूरी है, क्योंकि वह पहले से यहां रुका हुआ है। और पता नहीं उसने कोई बिस्तर चुन ही रखा हो! मगर वह कर रहा है प्रार्थना, टोकूं भी तो कैसे टोकूं! और पता नहीं यह प्रार्थना कितनी देर चलेगी, क्योंकि वह ऐसा लीन मालूम हो रहा है कि जल्दी तो टूटने वाली नहीं मालूम होती।
सो उसने सोचा, हिम्मत की, और उसने कहा कि परम पूज्य, बाधा तो नहीं देनी चाहिए आपकी प्रार्थना में, लेकिन मजबूरी है। सिर्फ इतना इशारा कर दें कि कौन सा बिस्तर मैं चुनूं!
डरते-डरते ही पूछा था। लेकिन धर्मगुरु ने प्रार्थना भी जारी रखी और हाथ से इशारा भी कर दिया कि वह दूसरा बिस्तर तुम चुन लो।
युवक निश्चिंत हुआ। बिस्तर ठीक-ठाक करके लेटने जा रहा था, फिर उसके मन में थोड़ी परेशानी हुई। प्यास लगी थी। क्या उठ कर खटर-पटर करे, पानी पी ले? प्रार्थना में बाधा पड़ेगी। पूछ लेना उचित है।
उसने कहा, परम पूज्य, प्यास लगी है जोर से। क्या पानी पी सकता हूं? धर्मगुरु ने प्रार्थना जारी रखी और हाथ से इशारा किया कि हां-हां, पीओ!
तब जरा युवक की हिम्मत भी बढ़ी और उसने कहा कि महामहिम, इतनी और बता दें
कि क्या मैं अपनी लड़की को भी, प्रेयसी को भी ला सकता हूं?
धर्मगुरु ने प्रार्थना जारी रखी और हाथ से इशारा किया कि दो ले आना! प्रार्थना चल रही है और यह सब कारबार भी चल रहा है! अब कितनी ही शुद्ध प्रार्थना पढ़ी जाए, बिल्कुल हिब्रू में पढ़ी जाए, तो भी क्या होगा! यह प्रार्थना कंठ तक भी नहीं जा रही है, हृदय तो बहुत दूर। इस प्रार्थना में कुछ भीग ही नहीं रहा है। यह तो व्यर्थ की बकवास है।
शास्त्रों को तुम दोहरा सकते हो, कंठस्थ कर सकते हो, लेकिन काश इतना आसान होता कि हम औरों के शब्दों को सीख कर सत्य को जान लेते, तो दुनिया ने कभी का सत्य जान लिया होता! सारे लोगों ने जान लिया होता। एक भी अज्ञानी न बचता। इस पृथ्वी पर सब चलते हुए दीए होते। दीवाली मनाई जा रही होती। हर फूल खिला होता। सुगंध ही सुगंध होती। हर वीणा बजती होती। संगीत ही संगीत होता। अनाहत नाद होता। अनहद में विश्राम होता।
शास्त्र तो सभी जानते हैं। हिंदू गीता पढ़ रहा है, मुसलमान कुरान पढ़ रहा है, ईसाई बाइबिल पढ़ रहे हैं। लेकिन कहीं कुछ भीगता नहीं। हृदय कहीं डुबकी नहीं मारता। शब्दों में डुबकी लगाओगे भी कैसे? अंधेरे कमरे में दीए की तस्वीर टांग भी लो, तो रोशनी तो नहीं हो जाएगी! लाख सुंदर तस्वीर हो, तो भी तस्वीर तस्वीर है।
और शास्त्रों के साथ बहुत खतरा है। खतरा यह कि जब कोई व्यक्ति प्रबुद्धता को उपलब्ध होता है, तो अनुभूति होती है मौन में। और जब वह उस अनुभूति को शब्दों में उतारता है, तभी विकृत हो जाती है, तभी बहुत कुछ खो जाता है। बूंदाबांदी रह जाती है। कहां सागर और कहां बूंद! और फिर जब वह बोलता है, तो और भी कुछ बचा होता है, वह भी खो जाता है। बूंद का भी हजारवां हिस्सा नहीं रह जाता। फिर जब दूसरा सुनता है, तब कुछ अगर बचा भी हो थोड़ा- बहुत, वह भी खो जाता है। क्योंकि दूसरा अपने हिसाब से सुनता है। उसकी अपनी धारणाएं हैं, अपने पूर्व से ही लिए गए निष्कर्ष हैं। वह उनके आधार से सुनता है।
और अक्सर दूसरों ने शास्त्र लिखे हैं। कृष्ण ने गीता बोली, लिखी नहीं। जीसस ने पर्वत का प्रवचन दिया, लिखा नहीं। बुद्ध बोले, लिखा नहीं। आज तक समस्त सदगुरुओं की यह प्रक्रिया रही कि उन्होंने बोला, लिखा नहीं। क्यों? क्योंकि बोलने में थोड़ी सी संभावना है कि अगर सुनने वाला प्रीतिपगा हो, अगर सुनने वाला भावाविष्ट हो, अगर सुनने वाले ने अपने हृदय के द्वार खोल रखे हों, अगर सुनने वाला गुरु के पास बैठने की कला जानता हो--

उपसीदन की कला, उपनिषद की कला, उपासना की कला; अगर गुरु के पास बैठना उसे आता हो--मौन में, चुप्पी में, अहोभाव में, आनंद में, मस्ती में; अगर वह किसी बुद्ध-ऊर्जा-क्षेत्र का हिस्सा हो; किन्हीं रिंदों की जमात में सम्मिलित हो गया हो; किन्हीं दीवानों से उसका संग-साथ हो गया हो; किन्हीं परवानों के साथ परवाना हो गया हो और चल पड़ा हो किसी ज्योति में मर मिटने को--तो शायद गुरु जो कह रहा है, वह तो शब्द ही होगा, लेकिन गुरु की भाव-भंगिमा, उसकी मुद्रा, उसकी आंखें, उसका उठना, उसका बैठना, उसकी सांसों की धड़कन उसके शब्दों के साथ-साथ लिपटी श्रोता के, द्रष्टा के, मन्ता के भीतर पहुंच जाएगी।
लेकिन लिखा हुआ शब्द तो मुरदा होता है, बिल्कुल मुरदा होता है। उसमें
न तो गुरु की उपस्थिति होती है, न गुरु की भाव-भंगिमा होती है, न गुरु का उठना-बैठना होता है। उसमें तो गुरु की दूर की भी कोई छाप नहीं होती। छापेखाने की छाप होती है, स्याही होती है कागज पर फैली। लाश होती है।
जीवंत कुछ भी नहीं होता।
इसलिए सारे गुरुओं ने सदा से बोलने के माध्यम को चुना है, क्योंकि बोलने में थोड़ी सी संभावना है कि शायद शब्दों के आस-पास लिपटी कोई किरण पहुंच जाए। कोई लेने वाला ले ले।
कबीर कहते हैं, है कोई लेवनहारा! है कोई लेवनहारा!
अगर है कोई लेने वाला तो शायद उसकी आंखों में झांक कर ही बात हो जाए। शायद उसका हाथ हाथ में लेकर ही बात हो जाए। शायद वह गुरु के चरणों पर सिर रख दे और बात हो जाए। जो नहीं कही जा सकती, वह कह दी जाए।
शास्त्र तो सदगुरुओं ने लिखे नहीं; जिन्होंने सुने हैं, उन्होंने लिखे हैं। इसलिए बौद्धों के सारे शास्त्र बड़े ठीक ढंग से शुरू होते हैं। बौद्धों के सारे शास्त्रों का जो प्रथम वचन होता है, वह यहः ऐसा मैंने सुना है। यह किसी शिष्य की टिप्पणी है। ऐसा मैंने सुना है कि भगवान आम्रकुंज में विचरते थे; कि निरंजना के तट पर रुके थे; कि फलां-फलां नगर में ठहरे थे; कि श्रावस्ती में उनका वर्षाकाल व्यतीत होता था। ऐसा मैंने सुना है। फिर वे जो बोले, वह मैं लिखता हूं। वह मैं अपनी सामर्थ्य से लिखता हूं। वे बोले थे अपनी सामर्थ्य से, मैं लिखता हूं अपनी सामर्थ्य से। फर्क तो बहुत हो जाने वाला है, बहुत हो जाने वाला है!
तुमने कभी देखा, एक सीधी लकड़ी के डंडे को पानी में डाला; और तुम तब चकित होकर देखोगे, पानी में पहुंचते ही डंडा तिरछा दिखाई पड़ने लगता है! तिरछा हो नहीं जाता। खींच कर देखो, सीधा का सीधा है! फिर पानी में डालो, फिर तिरछा दिखाई पड़ने लगता है। पानी उतनी विकृति तो ले आता है, सीधा डंडा तिरछा हो जाता है।
बुद्धों के सीधे-सीधे वचन भी तुम्हारे भीतर जाकर बहुत तिरछे हो जाते हैं, आड़े हो जाते हैं, कुछ के कुछ हो जाते हैं!
तो शास्त्रों की बात तो दोयम है, नंबर दो।
"मध्यम शास्त्रचिंतनम्, अधमा तंत्रचिंता।"
और उससे भी अधम है तंत्र, मंत्र, यंत्र की चिंता। विधि-विधान, यज्ञ-हवन-कुंड, पूजा-पत्री, ये धर्म के नाम पर जो क्रियाकांड चलते हैं, उन सबका नाम तंत्र। यह तो बिल्कुल ही गई-बीती बात हो गई। यह तो बिल्कुल तृतीय कोटि की बात हो गई।
लेकिन दुनिया इस तीसरी कोटि में उलझी है। कोई सत्यनारायण की कथा करवा रहा है। कोई विश्व-शांति के लिए यज्ञ करवा रहा है।
अभी किसी तांत्रिक ने चंडीगढ़ में विश्व-शांति के लिए यज्ञ करवाया। और यज्ञ हो जाने के बाद घोषणा कर दी कि यज्ञ सफल हुआ; विश्व में शांति हो गई! और पंद्रह दिन बाद फिर दूसरा यज्ञ दिल्ली में करवाने लगे वे। जब खबर मुझे मिली, तो मैंने कहा, अब किसलिए करवा रहे हो? दुनिया में तो शांति हो चुकी! वह तो चंडीगढ़ में यज्ञ जब हुआ तभी हो गई। अब यह कौन सी दूसरी दुनिया है जिसमें शांति करवानी है? मगर फिर शांति करवा रहे हैं वे।
और यहीं खतम नहीं हो जाएगा। उन्होंने कसम खाई है कि वे एक सौ बीस यज्ञ करवा कर रहेंगे। मतलब एक सौ बीस बार दुनिया में शांति करवा कर रहोगे! बहुत ज्यादा शांति हो जाएगी। आदमी को जिंदा रहने दोगे कि मार ही डालोगे? मरघट

हो जाएगा! एक सौ बीस बार शांति होती ही चली गई, होती ही चली गई, तो लोगों की सांसें निकल जाएंगी! शोरगुल ही बंद हो जाएगा! बोलचाल ही खो जाएगा!
मगर यह क्रियाकांड है। मैत्रेयी उपनिषद का यह वचन कहता हैः "अधमा तंत्रचिंता।"
अधम है तंत्र की चिंता। अब तो चिंतन भी न रहा, चिंता हो गई! पहला तो था अचिंत्य, तत्व का अनुभव। शास्त्र का चिंतन होता है; वह नीचे गिरना हुआ। और अब तो बात और बिगड़ गई। अब तो चिंतन से भी गिरे। अब तो चिंतन भी न बचा। अब तो चिंता हो गई। अब तो परेशानी और बेचैनी आ गई। अब तो लोभ-मोह का व्यापार शुरू हुआ। यह पा लूं, वह पा लूं! गंडे-ताबीज की दुनिया आ गई।
और तीर्थों में भटकना अधम से भी अधम!
"च तीर्थ भ्रांत्यधमाधमा।"
और तीर्थों में भटकने को तो मैत्रेयी उपनिषद कहता है, यह तो अधम से भी अधम! इसके पार तो गिरना ही नहीं हो सकता।
कोई काशी जा रहा है। कोई काबा जा रहा है। कोई कैलाश, कोई गिरनार। क्या पागलपन है! परमात्मा भीतर बैठा है, और तुम कहां जा रहे? जिसे तुम खोजने निकले हो, वह खोजने वाले के भीतर छिपा है। और जब तक तुम उसे कहीं और खोजते रहोगे, खोते रहोगे। जिस दिन सब खोज छोड़ दोगे और अपने भीतर ठहरोगे, अनहद में विश्राम करोगे, उस क्षण पा लोगे।
खोया तो उसे है ही नहीं। वह तो तुम्हारे भीतर मौजूद ही है। एक क्षण को नहीं खोया है। सिर्फ भूल गए हो, विस्मरण किया है। स्मरण भर की कोई आवश्यकता है। और यह स्मरण शायद किसी सदगुरु के सत्संग में तो मिल जाए, लेकिन तीर्थों में क्या है!
तीर्थ बने कैसे? कभी कोई सदगुरु वहां था, तो तीर्थ बन गए। लेकिन सदगुरु तो जा चुका कभी का!
बुद्ध कभी बोधगया में थे, तो तीर्थ बन गया। अब सारी दुनिया से बौद्ध आते हैं बोधगया की यात्रा करने। क्या पागलपन है!

कोई समझाए यह क्या रंग है मैखाने का,
आंख साकी की उठे नाम हो पैमाने का।
वह तो किसी साकी की आंख थी, जिससे नशा छा गया था, खुमारी आ गई थी।
कोई समझाए यह क्या रंग है मैखाने का,
आंख साकी की उठे नाम हो पैमाने का।
गर्मिए-शम्मा का अफसाना सुनाने वालो,
रक्स देखा ही नहीं तुमने अभी परवाने का।
किसको मालूम थी पहले से खिरद की कीमत,
आलमे-होश पर एहसान है दीवाने का।
चश्मे-साकी मुझे हर गाम पे याद आती है,
रास्ता भूल न जाऊं कहीं मैखाने का।
अब तो हर शाम गुजरती है उसी कूचे में,
यह नतीजा हुआ नासेह तेरे समझाने का।
मंजिले-गम से गुजरना तो है आसां "इकबाल"
इश्क है नाम खुद अपने से गुजर जाने का।
बात तो अपने से गुजर जाने की है। हां, किसी बुद्धपुरुष की आंख में शायद झलक मिल जाए। मगर तीर्थों में क्या रखा है? तीर्थ तो मजार हैं।
कोई समझाए यह क्या रंग है मैखाने का,
आंख साकी की उठे नाम हो पैमाने का।
गर्मिए-शम्मा का अफसाना सुनाने वालो,
रक्स देखा ही नहीं तुमने अभी परवाने का।
तुम्हें तो मस्तों की कोई महफिल खोजनी चाहिए। अगर रक्स ही देखना हो, अगर नाच ही देखना हो, तो परवाने का देखना चाहिए।
हां, जब कोई बुद्ध मौजूद होता है, तो मधुशाला जीवित होती है। तो वहां झरने फूटते हैं शराब के। वहां पियक्कड़ इकट्ठे होते हैं। कभी काबा में इकट्ठे हुए थे। वह काबा के पत्थर की बात न थी, वह मोहम्मद की मौजूदगी थी। मोहम्मद की मौजूदगी में काबा का पत्थर भी लोगों को नशा देने लगा था। आंख

साकी की थी और नाम पैमाने का हो गया! तीर्थ यूं बन जाते हैं, और फिर सदियों तक लोग तीर्थों में भटकते रहते हैं!
सूत्र ठीक कहता हैः
अधमा तंत्रचिंता च तीर्थ भ्रांत्यधमाधमा।।
अनुभूतिं विना मूढ़ो वृथा ब्रह्मणि मोदते।
प्रतिबिंबितशाखाग्रफलास्वादनमोदवत।।
प्यारी बात हैः "जैसे कोई पेड़ की छाया में प्रतिबिंबित फल को खाकर प्रसन्न हो... ।"
पेड़ के नीचे बैठो। छाया में फल दिखाई पड़ता हो--छाया में! आम लगे हों वृक्ष पर, और छाया में भी आम दिखाई पड़ेंगे। और उन्हीं को, छाया के आमों को खा-खा कर कोई जैसे प्रफुल्लित होता रहे, ऐसे तुम पागल हो--अगर शास्त्रों में उलझे हो, अगर तीर्थों में उलझे हो, अगर तंत्रों और मंत्रों में उलझे हो।
"वास्तविक अनुभव के बिना सिर्फ मूढ़ मनुष्य ही कल्पना करता रहता है ब्रह्म को पा लेने की।"
अनुभव हो सकता है अभी और यहीं। अनुभव के लिए एक क्षण भी ठहरने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन अनुभव होगा--उत्तमा तत्त्वचिंतैव--अनुभव तो उत्तम बात है, श्रेष्ठतम शिखर है। वह तो ध्यान में होगा, शून्य में होगा, मौन में होगा।
आंख से सारे पर्दे हटाओ। बाहर से आंख बंद करो, भीतर आंख खोलो। ठहरो चुप्पी में, मौन में, शून्य में। भीतर जब सारा जल ठहर जाए, तरंग भी न उठे, तो प्रतिफलित होगा परमात्मा। सारा अस्तित्व अपने सारे सौंदर्य के साथ तुम्हारे भीतर झलक उठेगा। वह झलक, बस एक झलक! और काफी है। जन्मों-जन्मों की भूली-बिसरी याद फिर आ जाती है। जिसे कभी खोया नहीं था, वह फिर मिल जाता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, डोंगरे महाराज अपने प्रवचन के बाद श्रोताओं को लस्सी-बूंदी इत्यादि प्रसाद वितरित करवाते हैं। कृपया समझाएं कि ब्रह्मचर्चा और लस्सी-बूंदी में क्या संबंध है।

सुभाष सरस्वती!
संबंध जरूर है। मैं रोज जब वापस लौटता हूं प्रवचन-स्थल से, तो सुभाष रास्ते में खड़े दिखाई पड़ते हैं। बिल्कुल उदास! तभी मैं सोचता हूं कि लस्सी-बूंदी की जरूरत है। सुभाष ऐसे खड़े रहते हैं, जैसे प्राण-पखेरू कभी के उड़ चुके हों! सारे संसार का भार लिए हुए! बोझ इतना कि उनकी गर्दन तक आड़ी रहती है।
तब मैं भी सोचने लगता हूं कि प्रवचन के बाद लस्सी और बूंदी बंटनी चाहिए। ये बेचारे सुभाष को देखो!
प्रसाद का तो बड़ा मूल्य है।
मेरे गांव में एक कबीरपंथी महंत थे, साहबदास जी! महामूढ़ थे। मतलब यह
कि डोंगरे महाराज वगैरह कुछ भी नहीं उनके सामने! मगर थे वे महंत, और बड़ा उनका अखाड़ा था, बड़ी जमीन-जायदाद थी। सो लोग मानते थे उन्हें। और मैं इसका लाभ उठाता था। लाभ यह था कि गांव में कोई भी सभा हो, मैं उनको निमंत्रित कर आता। मुझे उनके व्याख्यान में बहुत आनंद आता था। वे ऐसी-ऐसी गजब की बातें कहते थे कि न कभी आंखों देखी, न कभी कानों सुनी! वे क्या चले गए संसार से, संसार में वह बात ही न रही! मैं आमतौर से किसी के मरने पर दुखी नहीं होता, मगर साहबदास जब मरे तो मैं दुखी हुआ।
उनको मैं निमंत्रण कर आता था। कोई भी सभा हो, किसी तरह की सभा हो-- राजनीति की सभा हो, साहित्य की सभा हो, धर्म की सभा हो--मैं चला जाता, उनको निमंत्रित कर आता कि आपको आना ही है, बोलना ही है! वे बोलने को बड़े उत्सुक भी रहते थे। कभी-कभी मुझसे पूछते थे कि तू सभी सभाओं का इंतजाम करता है? कोई भी सभा हो, संयोजक तू ही?
मैंने कहा, क्या करूं! गांव के लोग मानते नहीं। वे कहते हैं कि सम्हालो, तो सम्हालना पड़ता है। और आपके बिना तो सभा यूं जैसे दूल्हे के बिना बारात! आपको तो आना ही होगा।

और पक्का कर लेने के लिए कि वे आ ही जाएंगे... । वे तो आ ही जाते; वे तो हमेशा ही आ जाते थे; फिर भी मैं किसी व्यक्ति को भेज देता कि तुम मौजूद ही रहना; देर-अबेर न हो। क्योंकि उनके बिना सभा बेकार है।
और जो भी सभा करते, वे मुझसे डरते। वे मेरे पास हाथ-पैर जोड़ कर खबर पहुंचाते कि आप साहबदास जी को मत बुला लाना। कि हम आपके हाथ जोड़ते हैं, आपके पैर पड़ते हैं, साहबदास जी को भर मत बुला लाना! नहीं तो वे सब खराब कर देंगे। क्योंकि वे कुछ-कुछ बोलते हैं, जिसका कोई मतलब ही नहीं है। और उनसे कोई कुछ कह भी नहीं सकता।
मगर मैं उनको निमंत्रण दे ही आता। और वे जैसे ही आते, मैं मंच के पास
ही खड़ा रहता और कहता, साहबदास जी आइए! विराजिए-विराजिए! सो उनको भी भरोसा रहता कि मैं संयोजक हूं। और उनके डर के मारे, क्योंकि थे तो वे महंत बड़े, कोई यह भी नहीं कह सकता था कि भई तुम कौन हो? तुम क्यों उनको बिठाते हो मंच पर जब हमने इनको बुलाया ही नहीं?
सो ऐसे दोनों के बीच में बात चल जाती थी। उनसे कोई कह नहीं सकता था कि
आप क्यों मंच पर चढ़ रहे हो? मुझसे कोई कह नहीं सकता था उनके सामने कि तुम क्यों उन्हें मंच पर बिठाल रहे हो? सो उनको भी भ्रांति रहती कि मैं संयोजक हूं और लोगों को भी पक्का था कि मैं बुला कर लाऊंगा, मैं बिना उनके सभा होने नहीं दूंगा।
और फिर मैं अपने पांच-सात विद्यार्थियों को रखता। उनसे चिटें लिखवा
कर पहुंचाने लगता कि साहबदास जी का भाषण होना चाहिए! बीच-बीच में मैं खड़ा हो जाता कि अब बहुत हो गई बकवास, साहबदास जी का भाषण होना चाहिए! यह जनता की मांग है! और जनता दुखी होती, मगर करो क्या! साहबदास जी का व्याख्यान होना चाहिए!
जयशंकर प्रसाद की जन्म-जयंती मनाई जा रही थी। मैं उनको बुला लाया। जब मैंने उनको निमंत्रण दिया, उन्होंने कहा, यह प्रसाद है कौन? अरे, मैंने कहा, प्रसाद यानी प्रसाद! अब आप नहीं जानते प्रसाद? मतलब हर सभा के बाद जो बंटता है वही!
उन्होंने कहा, फिर ठीक। फिर मैं बोलूंगा।
फिर आकर उन्होंने जो प्रसाद की महिमा गाई, जनता सिर ठोंके! कि जयशंकर प्रसाद की तो यह जयंती हो रही है और उसमें बूंदी और लस्सी की चर्चा चल रही है! और वे समझा रहे कि बिना प्रसाद के कोई सभा पूरी होती ही नहीं।
वही तो डोंगरे महाराज कहते हैं। और लाभ तो है ही।
तुमने डोंगरे महाराज का अभी कुछ ही दिन पहले तो वक्तव्य देखा कि पहले शक्ति चाहिए। लस्सी और बूंदी के बिना कहीं शक्ति होती है? अरे पंजाबी में जो शक्ति होती है, वह लस्सी के ही कारण तो होती है! जब पूरा पंजाबी गिलास भर कर लस्सी पीओगे, तब शक्ति उतरती है। और फिर उसके ऊपर से बूंदी भी होनी चाहिए। क्योंकि लस्सी में थोड़ी सी खटास होती है। कहीं बुद्धि बिल्कुल खट्टी न हो जाए। तो थोड़ी मिठास भी चाहिए।
वही तो उन्होंने समझाया कि शक्ति के बिना कुछ भी नहीं हो सकता। शक्ति
से होती भक्ति! भक्ति से होता ध्यान! डोंगरे महाराज समझाते हैं।
इसलिए तो मैंने तुमसे कहा कि--जैसे मेरी संन्यासिनी है, मां प्रेम शक्ति। अब उसकी शिष्याएं भी हो गईं। राज भारती की पत्नी नीलम उसकी शिष्या हो गई! और नीलम ने मुझे पत्र लिखा है कि भगवान, मुझे ऐसा लगता है कि शक्ति से मेरे जन्मों-जन्मों के संबंध हैं!
अरे, होने ही चाहिए। शक्ति के बिना कहीं भक्ति? भक्ति के बिना ज्ञान? कुछ भी नहीं। और जब नीलम शक्ति की भक्ति हो गई, तो राज भारती भी चले आए दो दिन बाद। वे भी दिखाई पड़ रहे हैं! अरे, जब पत्नी ही भक्ति हो गई, तो अब राज भारती भी क्या करें! पति को तो हमेशा पत्नी का अनुसरण करना पड़ता है। अब शक्ति का प्रचार हो रहा है!
तो उस शक्ति को बढ़वाने के लिए बेचारे मेहनत करते हैं। लस्सी बंटवाते हैं। बूंदी खिलवाते हैं। और प्रसाद की तो महिमा है। प्रसाद के बिना कहीं कोई प्रवचन पूरा होता है!
इसीलिए तो मेरे प्रवचन धार्मिक नहीं हैं, क्योंकि इनमें प्रसाद होता
ही नहीं। और लोग जाते ही क्यों हैं धार्मिक प्रवचन में? प्रसाद के लिए!

असली चीज तो प्रसाद है। धार्मिक प्रवचन तो मजबूरी है, सुनना पड़ता है; क्योंकि नहीं तो प्रसाद कहां से मिलेगा!
सरदार बिचित्तर सिंह ट्रेन में सफर कर रहे थे। पोपटलाल गुजराती और उसकी पत्नी भी उसी डिब्बे में थे। पोपटलाल की पत्नी ने पोपटलाल से कहा, पप्पू के पिता, गर्मी लग रही है, खिड़की खोल दें!
अब पोपटलाल बेचारे गुजराती! न पी कभी लस्सी, न खाई कभी बूंदी। पोपटलाल
ने बड़ी कोशिश की, पर खिड़की सख्त थी, सो न खुली। न खुली सो न खुली।
सरदार बिचित्तर सिंह यह देख रहे थे और मुस्कुरा रहे थे। फौरन उठे और
एक क्षण में खिड़की खोल दी। और पोपटलाल से बोले कि लाला, लस्सी पीओ! पोपटलाल को दुख तो बहुत हुआ कि कमबख्त सरदार! मगर करें भी क्या! और जब उसने खिड़की खोल दी, तो यह भी समझ में आ गया कि इससे झंझट लेना खतरे से खाली भी नहीं। खुद तो खिड़की नहीं खोल पाए थे, यह और भीतर तक की खिड़कियां खोल देगा। सो चुप ही रहे।
थोड़ी देर बाद पोपटलाल की पत्नी को ठंड लगने लगी। सो उसने पति से कहा
कि पप्पू के पिता, अब खिड़की बंद कर दो!
सख्त होने के कारण खिड़की पोपटलाल से बंद नहीं हुई। फिर बिचित्तर सिंह उठे और उठ कर खिड़की बंद कर दी। और बोले, लाला, लस्सी पीओ!
पोपटलाल को बहुत बुरा लगा। गुजराती थे, सहनशील थे, शांति रखी। गांधीवादी थे, अहिंसा में भरोसा करते थे। भीतर ही भीतर अहिंसा परमो धर्मः का विचार भी किया। मगर चोट तो बहुत लगी, कि लस्सी पीओ! यह कमबख्त सरदार बार-बार लस्सी पीओ! लस्सी पीओ! इसने समझ क्या रखा है? और फिर पत्नी के सामने ही बेइज्जती हो रही है! एकांत भी होता, पत्नी न होती, तो भी ठीक था। पत्नी पर भी बिचित्तर सिंह का असर पड़ रहा है। वह भी बिचित्तर सिंह की तरफ आंखें फाड़-फाड़ कर देख रही है। अरे, मर्द बच्चा मालूम होता है! पोपटलाल वैसे ही छोटे, और छोटे हुए जा रहे हैं!
पोपटलाल को बहुत बुरा लगा। बदला लेने का इरादा किया। रास्ता ढूंढ़ने लगे। अहिंसावादी कोई रास्ता होना चाहिए, जिसमें झगड़ा-झांसा भी न हो, क्योंकि यह आदमी खतरनाक है। और वहां कोई और है भी नहीं। पत्नी है, पोपटलाल हैं, और बिचित्तर सिंह है। पिटेंगे भी और पत्नी भी हाथ से जाएगी। क्योंकि पत्नी इतने गौर से देख रही है बिचित्तर सिंह को! वह जंजीर खींचने का झूठ-मूठ बहाना करने लगा। पोपटलाल ने तरकीब निकाली, गांधीवादी तरकीब! झूठ-मूठ जंजीर खींचने का बहाना करने लगा।
पोपटलाल से जंजीर न खिंचते देख कर बिचित्तर सिंह ने आव देखा न ताव, थे
तो सरदार ही, आ गए चक्कर में, सटाक से जंजीर खींच दी! और पोपटलाल से बोले, लाला, मैंने कहा न कि लस्सी पीओ!
झटके के साथ ट्रेन रुक गई। गार्ड आया। बिना किसी कारण जंजीर खींचने
के कारण बिचित्तर सिंह को पांच सौ रुपए का जुर्माना भरना पड़ा।
पोपटलाल प्रसन्न हैं कि क्या मारा! चारों खाने चित्त कर दिया। इशारे
से चित्त कर दिया। न हल्दी लगी न फिटकरी, रंग चोखा हो गया। सीना फुला कर गौर से पत्नी की तरफ देख कर मुस्कुरा रहे हैं, कि देखा पप्पू की मां! क्या लस्सी पिलाई सरदार को! अब बोलने की बारी स्वभावतः पोपटलाल की थी। बोले, सरदार जी, लस्सी के साथ थोड़ी-थोड़ी बूंदी भी खाया करो! क्योंकि बूंदी में मिठास होती है। और ज्ञान मीठा होता है। सो थोड़ा ज्ञान भी चाहिए। शक्ति तो चाहिए, मगर ज्ञान भी चाहिए।
इसलिए सुभाष! बेचारे डोंगरे महाराज लस्सी भी बंटवाते हैं, बूंदी भी खिलवाते हैं, जिससे कि शक्ति भी रहे और भक्ति भी रहे। लस्सी से शक्ति! बूंदी से भक्ति!
अरे, कबीरदास जी कह ही गए हैंः समुंद में बुंद समाना, सो कत हेरी जाई!
और बुंद में समुंद समाना, सो कत हेरी जाई! अरे, बूंदी में तो समुंद समाया हुआ है, जरा खोजो।
और सुभाष, तुम्हें दोनों चीजों की जरूरत है। तुम लस्सी भी पीओ और बूंदी भी खाओ। लस्सी से थोड़ा सरदारीपन तुममें आएगा। वह जो तुम गर्दन तिरछी करके खड़े रहते हो, वह सीधी हो जाएगी। और बूंदी से तुम्हारा ज्ञान भी थोड़ा बढ़ेगा। नहीं तो अज्ञानी के अज्ञानी रह जाओगे! और तुम्हारी अवस्था

पोपटलाल की है; क्योंकि पत्नी सुभाष की गुजराती है! सो तुम पत्नी का भी ख्याल रखो। अगर लस्सी न पी लाला, तो हमारे कोई संत महाराज तुम्हारी पत्नी को ले भागेंगे! पहले से ही सावधान कर देना उचित है।

आखिरी सवालः ओशो, मेरे पिताजी आप पर बहुत नाराज हैं। आपके विचारों से
तो सहमत हैं। यहां तक कि संन्यास भी लेना चाहते हैं। नाराजगी का कारण है, आपके चंदूलाल मारवाड़ी के लतीफे। मेरे पिताजी मारवाड़ी हैं और उनका नाम चंदूलाल है!

विजय!
यह तो बड़ा तुमने अच्छा किया, याद दिला दी। यह आठ-दस दिन से मैं चंदूलाल
को बिल्कुल भूला ही हुआ था। और तुम्हारे पिताजी हैं, सो तो स्वभावतः अब कभी नहीं भूलूंगा। तुम्हारे पिताजी के लिए कुछ लतीफे।
न्यायाधीश ने अदालत के कठघरे में खड़े सेठ चंदूलाल से कहा, इतनी छोटी
सी बात के आधार पर, सेठ, तलाक नहीं दिया जा सकता। क्या तुम्हारे पास कोई ठोस प्रमाण भी हैं जिनसे पता चले कि तुम्हारी पत्नी तुम्हारे प्रति वफादार नहीं?
चंदूलाल ने कहा, एक नहीं हजारों प्रमाण हैं, माई लार्ड! कल की ही रात
की बात है। यह रात को तीन घंटे गायब रही। और पूछने पर सफाई पेश करने लगी कि मैं अपनी सहेली गुलजान के साथ सिनेमा देखने गई थी।
जज ने पूछा, मगर तुम्हें यह कैसे पता चला कि तुम्हारी पत्नी झूठ बोल रही थी?
चंदूलाल ने कहा, क्योंकि कल रात को मैं तो खुद ही गुलजान के साथ सिनेमा देखने गया था! अब आप स्वयं सोचिए कि यह औरत मेरे साथ सरासर धोखा कर रही है या नहीं!
तुम्हारे पिताजी हैं तो मैं क्या करूं विजय, आदमी वे गजब के हैं!
फजलू अपने साथ पढ़ने वाली रीता नामक एक लड़की पर फिदा हो गया। एक दिन यह पता लगा कर कि वह किस मोहल्ले में रहती है, फजलू वहां जा पहुंचा। अब मुश्किल यह थी कि उसका घर कैसे ढूंढा जाए! फजलू ने सामने से चले आ रहे एक वृद्ध सज्जन से पूछा, दादा जी, क्या आपको पता है कि रीता कहां रहती है? मैं उसका भाई हूं। लेकिन पांच-छह सालों के बाद इस शहर में आया हूं। अतः पहचान नहीं पा रहा हूं कि उसका मकान कौन सा है। सब बदला-बदला नजर आ रहा है!
उस बूढ़े आदमी ने फजलू के कंधे पर हाथ रख कर कहा, तुमसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई बेटे। मैं रीता का बाप सेठ चंदूलाल मारवाड़ी हूं!
एक मोटा व्यक्ति समुद्रतट पर बैठा सामने की ओर देख रहा था, जहां जवान लड़कियां अल्प वस्त्रों में व्यायाम कर रही थीं। पास से गुजरते हुए दूसरे मोटे व्यक्ति ने कहा, आपका क्या ख्याल है सेठ चंदूलाल! क्या इससे वजन घटता है?
चंदूलाल ने जवाब दिया, क्यों नहीं! इसी दृश्य को देखने के लिए तो मैं रोज सुबह तीन मील चल कर आता हूं! अरे, वजन क्यों नहीं घटेगा? घटता है।
सेठ चंदूलाल मारवाड़ी ने अपने दोस्त ढब्बूजी को बताया कि मेरी पत्नी कपड़ों के पीछे दीवानी है। जब देखो तब कपड़ों की मांग करती रहती है। सुबह से शाम तक एक ही रट लगाए रखती है कि नए कपड़े चाहिए। मैं तो यह सुन-सुन कर घनचक्कर हुआ जा रहा हूं। शादी को बीस साल हो गए, एक दिन ऐसा नहीं होता, जब वह कपड़ों की रट न लगाती हो। बस कपड़े! कपड़े! कपड़े!
ढब्बूजी बोले, आश्चर्य की बात है! आखिर वह इतने कपड़ों का करती क्या है?
चंदूलाल ने कहा, मुझे क्या पता! मैंने तो आज तक एक भी कपड़ा खरीद कर दिया नहीं। अरे, जब दहेज में मिले वस्त्रों में सब आराम से चल रहा है, तो नए कपड़ों में भला क्यों पैसा व्यर्थ किया जाए! कल फिर मुझसे कहने लगी कि अब तो कपड़े नाम-मात्र को ही बचे हैं। पड़ोस के छोकरे खिड़की में से झांक-झांक कर तमाशा देखते हैं! अब तो कुछ करो, मोहल्ले भर में हंसी होती है!
ढब्बूजी ने पूछा, तो फिर तुमने कुछ किया?

सेठ चंदूलाल बोले, और भला क्या करता! यही किया कि एक पुरानी साड़ी का पर्दा बना कर खिड़की पर लटका दिया।
पहुंचे हुए व्यक्ति हैं तुम्हारे पिताजी, विजय!
नसरुद्दीन आफिस गया था और फजलू स्कूल। गुलजान घर में अकेली थी। दोपहर
को नसरुद्दीन के दोस्त सेठ चंदूलाल आए और धीरे-धीरे बातों ही बातों में एक हजार रुपए के बदले में गुलजान को अपना स्त्रीत्व बेचने के लिए फुसलाने लगे। कुछ समय तक आनाकानी करने के बाद गुलजान तैयार हो गई। चंदूलाल ने उसे नगद एक हजार रुपयों का बंडल थमा दिया।
शाम को नसरुद्दीन ने आफिस से आते ही पूछा, अरे, आज क्या मेरा दोस्त चंदूलाल आया था? उसकी छड़ी वहां कोने में टिकी है। लगता है छड़ी भूल गया! गुलजान को तो पसीना छूट गया। मगर अब क्या कर सकती थी, कोने में छड़ी टिकी तो थी। बोली, हां, आज दोपहर को आया था।
मुल्ला ने कहा, गजब हो गया। मारवाड़ी से ऐसी आशा न थी। क्या वह पूरे एक हजार रुपए दे गया?
यह सुन कर तो गुलजान पर जैसे बिजली गिर पड़ी हो। घबड़ाहट में उसके मुंह
से निकल गया, हां, पूरे एक हजार।
नसरुद्दीन ने खुशी से उछलते हुए कहा, मान गया मैं भी कि मारवाड़ी भी वायदे के पक्के होते हैं। पिछले महीने उसने एक हजार रुपए उधार लिए थे और वचन दिया था कि ठीक एक माह में आज की ही तारीख को लौटा दूंगा!
तुम घबड़ाओ मत विजय, अपने पिताजी को घर लौट कर कहना कि मैं तो चंदूलाल
के लतीफे कहना बंद नहीं कर सकता, एक तरकीब है आसान। वे आ जाएं और संन्यासी हो जाएं। उनका नाम बदल दूंगा।
आज इतना ही।

अनहद में बिसराम
नौवां प्रवचन

पहले ध्यान--फिर सेवा

पहला प्रश्नः ओशो, मैं एक विचारशील युवक हूं, जिसे अपने देश के मौजूदा हालात बिल्कुल पसंद नहीं। यह अंधविश्वासों तथा दकियानूसी विचारों से दबा हमारा भारत बिल्कुल नरक बन गया है। मेरा खून खौल-खौल उठता है इसकी सड़ी-गली स्थिति देख कर और इस अभागे देश के लिए कुछ करने के लिए अधीर हो उठता हूं।
ओशो, एक व्यक्ति के नाते इस देश के प्रति मेरा क्या कर्तव्य है? मैं क्या करूं कि इस देश की दीन-हीनता, भुखमरी, पाखंड, काहिलता और सड़ांध मिट जाए?

निर्मल घोष!
पहली बात, अकेले विचारशील होने से कुछ भी न होगा। अंधेरा हो, तो रोशनी
के विचार से मिटता नहीं। रोशनी चाहिए! बीमारी हो, तो स्वास्थ्य का कितना ही चिंतन करो, कुछ हाथ न लगेगा। औषधि चाहिए! विचार तो नपुंसक है। विचारशीलता कोई बहुत महत्वपूर्ण बात नहीं। ध्यान चाहिए!
ध्यान अपूर्व ऊर्जा है। और ध्यान से संभव है भीतर के दीए का जल जाना।
उस रोशनी में तुम भीतर भी देख सकोगे, बाहर भी देख सकोगे। ध्यान से मिलती है दृष्टि, दर्शन। विचार तो अंधे आदमी का अंधेरे में टटोलना है। विचारक की कोई बड़ी मूल्यवत्ता नहीं है।
दर्शनशास्त्र की परिभाषा की जाती हैः अंधेरी रात में, एक अंधेरे कक्ष में, एक अंधे आदमी के द्वारा एक काली बिल्ली की तलाश, जो कि वहां है ही नहीं!
पहले तो आंख चाहिए, नहीं तो तुम समस्याओं को ही न समझ पाओगे। और समाधान खोजने निकल गए, तो समस्याएं तो अपनी जगह, तुम्हारे समाधान और नई-नई समस्याएं ले आएंगे।
इस देश के उपद्रवों में एक गहन से गहन उपद्रव यही है। इसने बहुत सोचा है! सोचने की कुछ कमी नहीं की। विचार में हम किससे पीछे हैं! दुनिया की कोई जाति इस भांति विचारक होने का दावा नहीं कर सकती, जैसा हम कर सकते हैं।
पांच हजार वर्षों की सुनिश्चित, तर्कशुद्ध परंपरा है। मगर हाथ क्या आया? विचार से हाथ कुछ आता ही नहीं--पांच हजार साल या पचास हजार साल।
विचार तो कोरे शब्दों का जमाव है। ध्यान से रूपांतरण होता है।
तो पहली तो बात तुमसे कहूंगा, निर्मल घोष, विचारशील हो, यह काफी नहीं। युवक हो, यह भी काफी नहीं। क्योंकि युवावस्था में खून तो यूं ही खौल उठता है। इसके लिए कुछ खास कारणों की जरूरत नहीं होती। कारण हों तो ठीक; कारण न हों तो ठीक। युवावस्था में खून तो खौलता है, जैसे वर्षा में वर्षा होती है, सर्दी में सर्दी होती है, गरमी में गरमी होती है। युवावस्था में खून खौलता है; बुढ़ापे में खून सर्द होकर जम जाता है, बर्फ की चट्टान की तरह।
न तो बूढ़े आदमी का कोई गौरव है। अगर बूढ़ा आदमी कहे कि अब मैं शांत हो गया, शीतल हो गया, तो यह शीतलता और यह शांति कुछ मूल्य नहीं रखती। यह तो सिर्फ पतझड़ का लक्षण है। यह तो मौत करीब आने लगी, उसकी पगध्वनियां हैं। और ऐसे ही जवान आदमी का खून खौल जाए, तो कुछ खूबी मत समझना। यह तो बहाने ही तलाश करता है; यह तो खौलना ही चाहता है। जवानी के मौसम में खून का खौलना बिल्कुल स्वाभाविक है। कारण कुछ भी हो सकता है। कारण का मूल्य ही नहीं है। अगर कारण न होगा, तो तुम कारण ईजाद कर लोगे।
खून तो खौलेगा, लेकिन अकेले तुम्हारे खून के खौलने से क्या होगा? सिर्फ तुम्हें थोड़ी तकलीफ होगी; थोड़ी बेचैनी होगी। बहुत ही समझदारी का काम किया, तो थोड़ी चाय डाल लेना, तो चाय भी खौल जाएगी! जवानी का थोड़ा मजा आ जाएगा, और क्या होगा! शक्कर तो मिलती नहीं; नहीं तो मैं कहता, थोड़ी शक्कर डाल लेना! तो बिना शक्कर की ही चाय पी लेना! खून खौल रहा है, ईंधन का काम ले लो। ईंधन भी मुश्किल हो गया! गैस मिलती नहीं; कोयला मिलता नहीं; केरोसिन

मिलता नहीं! अच्छा है कि कम से कम तुम्हारा खून तो खौलता है, इस पर केटली चढ़ा दो, इसके पहले कि यह ठंडा हो जाए। जब ठंडा होने लगे, तब कुल्फी जमा लेना! ठंडा भी होगा। इसको बहुत कीमत मत दो।
लेकिन हर जवान को यह वहम होता है। जैसे हर बच्चे को तितलियां पकड़ने का नशा चढ़ता है। जैसे तितलियां पकड़ लेगा तो कुछ हो जाएगा! जैसे तितलियां पकड़ लेगा तो कुछ मिल जाएगा! कंकड़-पत्थर बीन लेता है, रंगीन पत्थर, जैसे हीरे- जवाहरात हों! गुड्डियों का विवाह रचाता है। वह सब ठीक है। वे बचपने के लक्षण हैं। ऐसे ही जवानी में खून खौलता है। हर छोटी-मोटी चीज पर जवान मरने- मारने को तत्पर हो जाता है! उसको मरने-मारने के लिए कोई भी बहाना चाहिए-- राजनीति हो, धर्म हो, देश हो, जाति हो--कोई भी बहाना मिल जाए, वह मरने-मारने को राजी है! और ये कोई छोटे-मोटे लोग नहीं, जिनको तुम बड़े-बड़े लोग कहते हो, उनके साथ भी यही मामला है।
अभी-अभी विवेकानंद का एक वक्तव्य पढ़ रहा था कि जो व्यक्ति हिंदू धर्म
के खिलाफ बोलेगा, उसे उठा कर समुद्र में फेंक दूंगा!
यह भाषा, यह ढंग एक मतांध हिंदू का हो सकता है। ये शब्द आक्रामक सांप्रदायिकता के लक्षण हैं; न तो संस्कृति के, न संतत्व के। और किसी को समुद्र में फेंक दोगे, इससे क्या होगा? अगर वह आदमी होशियार हुआ, तो पूरे समुद्र को हिंदू धर्म के खिलाफ खड़ा कर देगा!
और मुसलमान भी इसी के लिए तैयार हैं! और ईसाई भी इसी के लिए तैयार हैं! जमीन पर किसी को रहने दोगे कि सभी को समुद्र में फेंक देना है? क्योंकि जैन हिंदू धर्म के खिलाफ बोल रहे हैं हजारों साल से। विवेकानंद ने क्या किया? कितने जैन समुद्र में फेंके? और बौद्ध हिंदू धर्म के खिलाफ बोल रहे हैं ढाई हजार साल से। कितने बौद्धों को विवेकानंद ने समुद्र में फेंका? और मुसलमान, और ईसाई, और न मालूम कितने वर्ग हैं नास्तिकों के--और कुछ नए नहीं, चार्वाक से लेकर कार्ल मार्क्स तक--कितनों को विवेकानंद ने समुद्र में फेंक दिया?
मगर जवानी में उत्तेजक बातें कहने का मजा होता है। एक तरह का पागलपन
है जवानी। एक तरह की मूढ़ता है जवानी। जवान मूर्खता न करे तो आश्चर्य! उससे कुछ न कुछ मूढ़ता होगी। तो विचार अकेला नपुंसक है और जवानी अकेली अंधी है। इन दोनों को राह पर लगाने के लिए सिवाय ध्यान के कोई मार्ग नहीं है, निर्मल घोष! ध्यान तुम्हारे विचार को प्राण देगा और तुम्हारी जवानी को समझ देगा। तो पहला तो काम करो कि ध्यान में उतरो, ताकि ठीक-ठीक समस्याओं को देख सको। समस्याएं निश्चित हैं। मगर तुमने जो प्रश्न पूछा है, उस प्रश्न में ही जाहिर है कि तुम्हें समस्याएं स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ रही हैं।
जैसे तुम कहते हो, "मैं एक विचारशील युवक हूं।"
यह भी अहंकार की भाषा है। अभी क्या खाक विचार किया होगा! और अभी से तुम्हें विचारशील होने की भ्रांति चढ़ गई।
सुकरात तो अपने अंतिम जीवन के क्षणों में कहता है, मैं इतना ही जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता!
यह है विचारशीलता। अगर विचारशीलता ही कहना हो, तो यह सुकरात है विचारशील। यह है द्रष्टा। जीवन भर के चिंतन-मनन के बाद यह उदघोषणा, कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं! जीवन रहस्य है इतना बड़ा कि कहां कौन जान पाया! उपनिषद कहते हैं, जो कहे मैं जानता हूं, जानना कि नहीं जानता; जो कहे
कि मैं नहीं जानता हूं, शायद जानता हो! उपनिषद यह भी कहते हैं कि अज्ञानी तो अंधकार में भटक ही जाते हैं, मगर ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं। इस भ्रांति को उतारो। यह तो पहला कर्तव्य तुम्हारा अपने प्रति। और इसके पहले कि तुम दूसरों के प्रति कोई कर्तव्य करने जाओ, इसके पहले कि तुम देश की सेवा करने में लग जाओ, थोड़ी अपनी सेवा कर लो! नहीं तो अक्सर यह होता है कि जिनके दीए खुद ही नहीं जले हैं, वे दूसरों के दीए जलाने निकल पड़ते हैं! कैसे जलाएंगे? खुद की ज्योति तो हो, तो ज्योति बांटी जा सकती है। खुद की ज्योति न हो, तो फिर क्रोध आता है कि यह दूसरा दीया जलता क्यों नहीं! नाराजगी पैदा होती है। खून खौल-खौल जाता है! फिर जरा-जरा सी बातों में खून खौल जाता है। और मजबूरी समझ में नहीं आती कि बात असल यह है कि तुम्हारे

भीतर की ही ज्योति अभी नहीं है, और तुम दूसरे दीए में ज्योति डालने चले हो! बेचारा दूसरा दीया करे भी तो क्या करे? उसका कसूर कहां है?
पहले तो यह अहंकार छोड़ो। क्या तुमने अभी विचार किया है? जो तुमने प्रश्न पूछा है, वह कुछ बहुत विचारशीलता प्रकट नहीं करता है। मैं उसको एक-एक अंग चर्चा करूंगा, तो तुम्हारे ख्याल में आ जाएगा।
तुम कहते हो, "मैं एक विचारशील युवक हूं, जिसे अपने देश के मौजूदा हालात बिल्कुल पसंद नहीं।"
इससे ही जाहिर होता है कि तुम्हें देश के अतीत का कुछ बोध नहीं है। मौजूदा हालात मुझे पसंद नहीं! इसका अर्थ यह हुआ कि पहले हालात बेहतर थे। इसका अर्थ यह हुआ कि पहले सब ठीक था, सतयुग था, स्वर्णयुग था। अब सब विकृत हो गया। मौजूदा हालात पसंद नहीं! यह विचारशीलता हुई? यह तो इस देश का थोथे से थोथा पंडित रोज बक रहा है यही कि मौजूदा हालात पसंद नहीं!
और क्या तुम्हें पता है, मौजूदा हालात कभी भी पसंद थे किसी को?
चीन में छह हजार साल पुराना, आदमी की चमड़ी पर लिखा हुआ एक वक्तव्य मिला है, जिसमें ये शब्द हैं कि मुझे देश के मौजूदा हालात बिल्कुल पसंद नहीं। छह हजार साल पहले! बेबीलोन में करीब-करीब इतनी ही पुरानी एक ईंट मिली है, जिस पर वक्तव्य है--वक्तव्य ऐसा कि तुम पढ़ो तो लगे आज सुबह-सुबह ही पूना हेराल्ड का संपादकीय है--मौजूदा हालात बिल्कुल पसंद नहीं। विद्यार्थी गुरुओं की नहीं सुनते हैं; अनुशासन भ्रष्ट हो गया है। छह हजार साल पुराना पत्थर! बच्चे मां-बाप की नहीं सुनते। परिवार की आधारशिला टूट गई है। प्रेम तिरोहित हो गया है संसार से। घृणा और वैमनस्य का राज्य है! छह हजार साल पहले भी यही बात! आज भी यही बात! हालात कब अच्छे थे? सभी शास्त्र कहते हैं, पहले अच्छे थे। मगर यह पहले कब था?
यह पहले कभी भी नहीं था। पहले हालात और भी बुरे थे।
राम के समय को तुम रामराज्य कहते हो। हालात आज से भी बुरे थे। कभी भूल
कर रामराज्य फिर मत ले आना! एक बार जो भूल हो गई, हो गई। अब दुबारा मत करना। राम के राज्य में आदमी बाजारों में गुलाम की तरह बिकते थे। कम से कम
आज आदमी बाजार में गुलामों की तरह तो नहीं बिकता! और जब आदमी गुलामों की तरह बिकते रहे होंगे, तो दरिद्रता निश्चित रही होगी, नहीं तो कोई बिकेगा कैसे? किसलिए बिकेगा? दीन और दरिद्र ही बिकते होंगे। कोई अमीर तो बाजारों में बिकने न जाएंगे। कोई टाटा, बिड़ला, डालमिया तो बाजारों में बिकेंगे नहीं।
स्त्रियां बाजारों में बिकती थीं! वे स्त्रियां गरीबों की स्त्रियां
ही होंगी। उनकी ही बेटियां होंगी। कोई सीता तो बाजार में नहीं बिकती थी। उसका तो स्वयंवर होता था। तो किनकी बच्चियां बिकती थीं बाजारों में?
और हालात निश्चित ही भयंकर रहे होंगे। क्योंकि बाजारों में ये बिकती स्त्रियां और लोग--आदमी और औरतें दोनों, विशेषकर स्त्रियां--राजा तो खरीदते ही खरीदते थे, धनपति तो खरीदते ही खरीदते थे, जिनको तुम ऋषि-मुनि कहते हो, वे भी खरीदते थे! गजब की दुनिया थी! ऋषि-मुनि भी बाजारों में बिकती हुई स्त्रियों को खरीदते थे!
अब तो हम भूल ही गए वधु शब्द का असली अर्थ। अब तो हम शादी होती है नई-नई, तो वर-वधु को आशीर्वाद देने जाते हैं। हमको पता ही नहीं कि हम किसको आशीर्वाद दे रहे हैं! राम के समय में--और राम के पहले भी--वधु का अर्थ होता था, खरीदी गई स्त्री! जिसके साथ तुम्हें पत्नी जैसा व्यवहार करने का हक है, लेकिन उसके बच्चों को तुम्हारी संपत्ति पर कोई अधिकार नहीं होगा! पत्नी और वधु में यही फर्क था। सभी पत्नियां वधु नहीं थीं, और सभी वधुएं पत्नियां नहीं थीं। वधु नंबर दो की पत्नी थी। जैसे नंबर दो की बही होती है न, जिसमें चोरी-चपाटी का सब लिखते रहते हैं! ऐसी नंबर दो की पत्नी थी वधु। ऋषि-मुनि भी वधुएं रखते थे! और तुमको यही भ्रांति है कि ऋषि-मुनि गजब
के लोग थे। कुछ खास गजब के लोग नहीं थे। वैसे ऋषि-मुनि अभी भी तुम्हें मिल जाएंगे।
एक मां अपने छोटे से बच्चे को कह रही थी कि बेटा, तू नौ-नौ बजे उठता है! अरे, ऋषि-मुनि की संतान हो; ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए! ऋषि-मुनि हमेशा ब्रह्ममुहूर्त में उठते थे!

उस बेटे ने कहा कि नहीं मां; ऋषि तो कभी आठ बजे के पहले नहीं उठते। मुझे पता है। और मुनि भी कभी नौ बजे के पहले नहीं उठते।
मां ने कहा, तू यह कहां की बातें कर रहा है?
उसने कहा, मुझे मालूम है। ऋषि कपूर आठ बजे उठता है और दादा मुनि अशोक कुमार नौ बजे उठते हैं!
इन ऋषि-मुनियों में और तुम्हारे पुराने ऋषि-मुनियों में बहुत फर्क मत पाना तुम। कम से कम इनकी वधुएं तो नहीं हैं! कम से कम ये बाजार से स्त्रियां तो नहीं खरीद ले आते! इतना बुरा आदमी तो आज पाना मुश्किल है जो बाजार से स्त्री खरीद कर लाए। आज यह बात ही अमानवीय मालूम होगी। मगर यह जारी थी!
रामराज्य में शूद्र को हक नहीं था वेद पढ़ने का! यह तो कल्पना के बाहर
थी बात कि डाक्टर अंबेदकर जैसा शूद्र और राम के समय में भारत के विधान का रचयिता हो सकता था! असंभव। खुद राम ने एक शूद्र के कानों में सीसा पिघलवा कर भरवा दिया था--गरम सीसा, उबलता हुआ सीसा! क्योंकि उसने चोरी से, कहीं वेद के मंत्र पढ़े जा रहे थे, वे छिप कर सुन लिए थे। यह उसका पाप था; यह उसका अपराध था। और राम तुम्हारे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं! राम को तुम अवतार कहते हो! और महात्मा गांधी रामराज्य को फिर से लाना चाहते थे। क्या करना है? शूद्रों के कानों में फिर से सीसा पिघलवा कर भरवाना है? उसके कान तो फूट ही गए होंगे। शायद मस्तिष्क भी विकृत हो गया होगा। उस गरीब पर क्या गुजरी, किसी को क्या लेना-देना! शायद आंखें भी खराब हो गई होंगी। क्योंकि ये सब जुड़े हैं; कान, आंख, नाक, मस्तिष्क, सब जुड़े हैं। और दोनों कानों में अगर सीसा उबलता हुआ... !
तुम्हारा खून क्या खाक उबल रहा है निर्मल घोष! उबलते हुए शीशे की जरा सोचो! उबलता हुआ सीसा जब कानों में भर दिया गया होगा, तो चला गया होगा पर्दों को तोड़ कर, भीतर मांस-मज्जा तक को प्रवेश कर गया होगा; मस्तिष्क के स्नायुओं तक को जला गया होगा। फिर इस गरीब पर क्या गुजरी, किसी को क्या लेना-देना है! धर्म का कार्य पूर्ण हो गया। ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिया कि राम ने धर्म की रक्षा की। यह धर्म की रक्षा थी!
और तुम कहते हो, "मौजूदा हालात खराब हैं!"
युधिष्ठिर जुआ खेलते हैं, फिर भी धर्मराज थे! और तुम कहते हो, मौजूदा हालात खराब हैं! आज किसी जुआरी को धर्मराज कहने की हिम्मत कर सकोगे? और जुआरी भी कुछ छोटे-मोटे नहीं, सब जुए पर लगा दिया। पत्नी तक को दांव पर लगा दिया!
एक तो यह बात ही अशोभन है, क्योंकि पत्नी कोई संपत्ति नहीं है। मगर उन दिनों यही धारणा थी, स्त्री-संपत्ति! उसी धारणा के अनुसार आज भी जब बाप अपनी बेटी का विवाह करता है, तो उसको कहते हैं कन्यादान! क्या गजब कर रहे हो! गाय-भैंस दान करो तो भी समझ में आता है। कन्यादान कर रहे हो! यह दान है? स्त्री कोई वस्तु है? ये असभ्य शब्द, ये असंस्कृत हमारे प्रयोग शब्दों के बंद होने चाहिए। अमानवीय हैं, अशिष्ट हैं, असंस्कृत हैं।
मगर युधिष्ठिर धर्मराज थे। और दांव पर लगा दिया अपनी पत्नी को भी! हद्द का दीवानापन रहा होगा। पहुंचे हुए जुआरी रहे होंगे। इतना भी होश न रहा। और फिर भी धर्मराज धर्मराज ही बने रहे; इससे कुछ अंतर न आया। इससे उनकी प्रतिष्ठा में कोई भेद न पड़ा। इससे उनका समादर जारी रहा।
भीष्म पितामह को ब्रह्मज्ञानी समझा जाता था। मगर ब्रह्मज्ञानी कौरवों की तरफ से युद्ध लड़ रहे थे! गुरु द्रोण को ब्रह्मज्ञानी समझा जाता था। मगर गुरु द्रोण भी कौरवों की तरफ से युद्ध लड़ रहे थे! अगर कौरव अधार्मिक थे, दुष्ट थे, तो कम से कम भीष्म में इतनी हिम्मत तो होनी चाहिए थी! और बाल-ब्रह्मचारी थे और इतनी भी हिम्मत नहीं? तो खाक ब्रह्मचर्य था यह! किस लोलुपता के कारण गलत लोगों का साथ दे रहे थे? और द्रोण तो गुरु थे अर्जुन के भी, और अर्जुन को बहुत चाहा भी था। लेकिन धन तो कौरवों के पास था; पद कौरवों के पास था; प्रतिष्ठा कौरवों के पास थी। संभावना भी यही थी कि वही जीतेंगे। राज्य उनका था। पांडव तो भिखारी हो गए थे। इंच भर जमीन भी कौरव देने को राजी नहीं थे।

और कसूर कुछ कौरवों का हो, ऐसा समझ में आता नहीं। जब तुम्हीं दांव पर लगा कर सब हार गए, तो मांगते किस मुंह से थे? मांगने की बात ही गलत थी। जब हार गए तो हार गए। खुद ही हार गए, अब मांगना क्या है?
लेकिन गुरु द्रोण भी अर्जुन के साथ खड़े न हुए; खड़े हुए उनके साथ जो गलत थे।
यही गुरु द्रोण एकलव्य का अंगूठा कटवा कर आ गए थे अर्जुन के हित में, क्योंकि तब संभावना थी कि अर्जुन सम्राट बनेगा। तब इन्होंने एकलव्य को इनकार कर दिया था शिक्षा देने से। क्यों? क्योंकि शूद्र था।
और तुम कहते हो, "मौजूदा हालात बिल्कुल पसंद नहीं!"
निर्मल घोष, एकलव्य को मौजूदा हालात उस समय के पसंद पड़े होंगे? उस गरीब का कसूर क्या था अगर उसने मांग की थी, प्रार्थना की थी कि मुझे भी स्वीकार कर लो शिष्य की भांति, मुझे भी सीखने का अवसर दे दो? लेकिन नहीं, शूद्र को कैसे सीखने का अवसर दिया जा सकता है!
मगर एकलव्य अनूठा युवक रहा होगा। अनूठा इसलिए कहता हूं कि उसका खून नहीं खौला। खून खौलता तो साधारण युवक, दो कौड़ी का। सभी युवकों का खौलता है, इसमें कुछ खास बात नहीं। उसका खून नहीं खौला। शांत मन से उसने इसको स्वीकार कर लिया। एकांत जंगल में जाकर गुरु द्रोण की प्रतिमा बना ली। और उसी प्रतिमा के सामने शर-संधान करता रहा। उसी के सामने धनुर्विद्या का अभ्यास करता रहा। अदभुत युवक था। उस गुरु के सामने धनुर्विद्या का अभ्यास करता रहा जिसने उसे शूद्र के कारण इनकार कर दिया था; अपमान न लिया। अहंकार पर चोट तो लगी होगी, लेकिन शांति से, समता से पी गया।
धीरे-धीरे खबर फैलनी शुरू हो गई कि वह बड़ा निष्णात हो गया है। तो गुरु द्रोण को बेचैनी हुई, क्योंकि बेचैनी यह थी कि खबरें आने लगीं कि अर्जुन उसके मुकाबले कुछ भी नहीं। और अर्जुन पर ही सारा दांव था। अगर अर्जुन सम्राट बने, और सारे जगत में सबसे बड़ा धनुर्धर बने, तो उसी के साथ गुरु द्रोण की भी प्रतिष्ठा होगी। उनका शिष्य, उनका शागिर्द ऊंचाई पर पहुंच जाए, तो गुरु भी ऊंचाई पर पहुंच जाएगा। उनका सारा का सारा न्यस्त स्वार्थ अर्जुन में था। और एकलव्य अगर आगे निकल जाए, तो बड़ी बेचैनी की बात थी।
तो यह बेशर्म आदमी, जिसको कि ब्रह्मज्ञानी कहा जाता है, यह गुरु द्रोण, जिसने इनकार कर दिया था एकलव्य को शिक्षा देने से, यह उससे दक्षिणा लेने पहुंच गया! शिक्षा देने से इनकार करने वाला गुरु, जिसने दीक्षा ही न दी, वह दक्षिणा लेने पहुंच गया! हालात बड़े अजीब रहे होंगे! शर्म भी कोई चीज होती है! इज्जत भी कोई बात होती है! आदमी की नाक भी होती है! ये गुरु द्रोण तो बिल्कुल नाक-कटे आदमी रहे होंगे! किस मुंह से--जिसको दुत्कार दिया था-- उससे जाकर दक्षिणा लेने पहुंच गए!
और फिर भी मैं कहता हूं, एकलव्य अदभुत युवक था; दक्षिणा देने को राजी
हो गया। उस गुरु को, जिसने दीक्षा ही नहीं दी कभी! यह जरा सोचो तो! उस गुरु को, जिसने दुत्कार दिया था और कहा कि तू शूद्र है! हम शूद्र को शिष्य की तरह स्वीकार नहीं कर सकते!
बड़ा मजा है! जिस शूद्र को शिष्य की तरह स्वीकार नहीं कर सकते, उस शूद्र
की भी दक्षिणा स्वीकार कर सकते हो! मगर उसमें शड्यंत्र था, चालबाजी थी। उसने चरणों पर गिर कर कहा, आप जो कहें। मैं तो गरीब हूं, मेरे पास कुछ
है नहीं देने को। मगर जो आप कहें, जो मेरे पास हो, तो मैं देने को राजी हूं। यूं प्राण भी देने को राजी हूं।
तो क्या मांगा? मांगा कि अपने दाएं हाथ का अंगूठा काट कर मुझे दे दे! जालसाजी की भी कोई सीमा होती है! अमानवीयता की भी कोई सीमा होती है! कपट की, कूटनीति की भी कोई सीमा होती है! और यह ब्रह्मज्ञानी! उस गरीब एकलव्य से अंगूठा मांग लिया। और अदभुत युवक रहा होगा, निर्मल घोष, दे दिया उसने अपना अंगूठा! तत्क्षण काट कर अपना अंगूठा दे दिया! जानते हुए कि दाएं हाथ का अंगूठा कट जाने का अर्थ है कि मेरी धनुर्विद्या समाप्त हो गई। अब मेरा कोई भविष्य नहीं। इस आदमी ने सारा भविष्य ले लिया। शिक्षा दी नहीं, और दक्षिणा में, जो मैंने अपने आप सीखा था, उस सब को विनष्ट कर दिया।
ये अर्जुन के पक्ष में उसका अंगूठा काट लाए थे! हालात अच्छे नहीं थे। हालात कभी अच्छे नहीं रहे। हालात बहुत बुरे थे। असल में हालात बहुत बुरे

थे, इसीलिए तो आज बुरे हैं। नहीं तो आज कैसे बुरे हो जाते! आज आया कहां से? यह सारे कलों की निष्पत्ति है। वह जो बीत गया अतीत, उसका ही निचोड़ है। उससे ही तो पैदा हुआ है। हम कहते हैं, वृक्ष को उसके फल से जाना जाता है, बाप को उसके बेटे से जाना जाता है। तुम्हारे वर्तमान से तुम्हारे अतीत का पता चलता है; और तो कोई पता चलने का आधार नहीं होता। तुम्हारा वर्तमान कह रहा है कि तुम्हारा अतीत बहुत बदतर था।
इसलिए पहली तो बात, अगर तुम ध्यान में उतरोगे, तो तुम्हें यह दिखाई पड़ेगी कि हालात हमेशा से खराब थे। मामला आसान नहीं है, उथला-उथला नहीं है। बीमारी आज की नहीं है, संक्रामक है; और बहुत गहरी है, बहुत दूर तक घुस गई है, हड्डियों में प्रवेश कर गई है। अगर तुमने ठीक से बीमारी को न समझा, तो तुम ऊपर ही ऊपर पलस्तर करते रहना, पुल्टिस बांधते रहना। अब कैंसर कोई पुल्टिस बांधने से ठीक होने वाले नहीं हैं। कैंसर का इलाज करने के पहले यह तो जानना जरूरी है कि यह कैंसर है। चिकित्सा के पहले निदान जरूरी है। और ध्यान के बिना कोई निदान नहीं।
तुम्हारा यह कहना कि "आज के हालात मुझे बिल्कुल पसंद नहीं... ।"
तुम्हारी पसंदगी और नापसंदगी का सवाल नहीं है, क्योंकि बहुतों को पसंद हैं। अगर पसंदगी-नापसंदगी से तय होना है, तब तो मामला बड़ा मुश्किल हो जाएगा। जिनके भी स्वार्थ निहित हैं इसी मौजूदा स्थिति में, उनको तो पसंद हैं। पंडित को, पुरोहित को, राजनेता को, धनपति को, उनको तो पसंद हैं; बिल्कुल पसंद हैं; बहुत रास आ रहे हैं। तुमको पसंद नहीं हैं। लेकिन तुम्हारी नापसंदगी निर्णायक नहीं हो सकती। सवाल तो इसका है कि सच में, पसंदगी-नापसंदगी को छोड़ कर, हालात क्या हैं, निष्पक्ष होकर देखना पड़ेगा। निष्पक्ष होकर देखोगे, तो ही निदान कर सकोगे।
यह थोड़े ही सवाल है कि डाक्टर को तुम्हारी बीमारी पसंद नहीं है या तुम्हारी बीमारी पसंद है। सवाल यह है कि तुम्हारी बीमारी तुम्हें खा रही है, डाक्टर को पसंद हो कि नापसंद हो, यह सवाल नहीं है। तुम्हारी बीमारी संघातक है, प्राण-लेवा है। इसको निष्पक्ष भाव से देखना होगा।
तुम कहते हो, "यह अंधविश्वासों तथा दकियानूसी विचारों से दबा हुआ हमारा भारत बिल्कुल नरक बन गया है।"
इसलिए मैंने ध्यान की शर्त पहले लगाना चाही। जब तक यह तुम्हारा ख्याल है, हमारा भारत, तब तक तुम उसी बीमारी के अंग हो; तुम उस बीमारी को ठीक नहीं कर सकते।
दुनिया सिकुड़ कर बहुत छोटी हो गई है; अब यह मेरा-तेरा नहीं चलेगा। अब
यह मेरा-तेरा मूर्खतापूर्ण है। यह बैलगाड़ी का जमाना नहीं है। जमीन इतनी छोटी हो गई है! न्यूयार्क में चाय पीओ; लंदन में सुबह का भोजन लो; और सांझ को पूना में आकर अपच झेलो! इतने करीब हो गई है! इस छोटी दुनिया में हमारा भारत! फिर हमारे की सीमाएं कहां बनाओगे? फिर महाराष्ट्रियन को लगता है, हमारा महाराष्ट्र! और यह देश तो हमारा गजब का है! यहां राष्ट्र के भीतर महाराष्ट्र है! ऐसा दुनिया में कहीं भी नहीं। छोटे डब्बे के भीतर बड़ा डब्बा! राष्ट्र के भीतर महाराष्ट्र! क्या-क्या लोग हैं! कैसे-कैसे लोग हैं! और फिर इसको भी कहां तोड़ोगे? किस जगह जाकर सीमा बनाओगे? टुकड़े-टुकड़े होते जाते हैं।
विज्ञान ने दुनिया को अब एक कर दिया। अब यह मेरा भारत जब तक रहेगा, तब
तक बीमारी नहीं मिट सकती। क्योंकि भारत तुम्हारा है, तो अमरीका क्यों परेशान हो? तुम्हारी गरीबी को दूर करने के लिए अमरीका अपने वैभव में थोड़ी सी क्षीणता क्यों करे? किसलिए करे? और मजा यह है कि लाख अपने धन में कमी करे तुम्हारी दीनता को दूर करने के लिए, तो भी तुम दुश्मन रहोगे, तो भी तुम्हारी ईर्ष्या की आग जलती रहेगी।
अमरीका के संबंध में सारी दुनिया में जो ईर्ष्या है, वह उसके वैभव के कारण है। और मजा यह है कि अमरीका जितनी सहायता करता है दुनिया की, गरीबों की, उतना और कोई नहीं करता। अमरीकी चिंतक बड़े हैरान हैं कि हम सेवा करते हैं--दूध भेजें, दवाइयां भेजें, कपड़े भेजें, कंबल भेजें; अकाल पड़े तो सामान भेजें; भूकंप आए तो सामान भेजें।

और ऐसा ही नहीं कि अपने वालों को। अगर रूस को भी जरूरत पड़ती है गेहूं की, तो अमरीका देता है! सब को हम सहायता दें, और फिर भी हम सब के दुश्मन! किसी के मन में अमरीका के प्रति सदभाव नहीं--किसी के मन में। अमरीका के जो अपने को दोस्त मानते हैं, उनके मन में भी सदभाव नहीं।
असल में समृद्धि के प्रति इतनी ईर्ष्या होती है, इतनी जलन होती है... ।
और जितना दीन-हीन होता है व्यक्ति, उतनी ही ईर्ष्या से उबलता होता है। उसको तुम कितना ही दो, वह तुम्हें कभी क्षमा नहीं करेगा। अमरीका को कोई क्षमा नहीं कर रहा है। कोई क्षमा कर नहीं सकता।
तो अमरीका किसलिए परेशान हो? सहायता दे, और गालियां खाए! जगह-जगह सहायता पहुंचाए, और जगह-जगह उसके झंडे जलाए जाएं! और उसकी एंबेसियों में आग लगाई जाए! प्रयोजन क्या है फिर?
यह मेरे-तेरे का भाव अब जाना चाहिए। विज्ञान ने दुनिया को उस जगह लाकर खड़ा कर दिया है, जहां हम चाहें तो पृथ्वी को स्वर्ग बना सकते हैं। मगर पृथ्वी तब तक स्वर्ग नहीं बन सकती, जब तक हम पृथ्वी के एक होने की घोषणा नहीं करते। और हमारे भीतर इतने बंटाव हैं! हिंदू को फिक्र है हिंदू की; मुसलमान मरता हो तो मरे! हिंदू को क्या करना है? मुसलमान को फिक्र है मुसलमान की; हिंदू मरता हो मरे! मुसलमान को क्या करना है? और बात इतने पर ही नहीं रुकती। अगर शूद्र मरता है तो मरे; ब्राह्मण को क्या करना है! टुकड़े में टुकड़े बंटते चले जाते हैं। ऐसे तो हल नहीं हो सकता।
इस विराट समस्या को हल करने का एक ही उपाय है कि पृथ्वी पर कोई राष्ट्र न रह जाएं। क्योंकि हमारी सत्तर प्रतिशत ऊर्जा एक-दूसरे से रक्षा करने में लग रही है; जब कि रक्षा की कोई जरूरत ही नहीं है। प्रयोजन क्या है? सत्तर प्रतिशत शक्ति हमारी युद्ध में व्यय हो रही है; जब कि युद्ध बिल्कुल ही व्यर्थ है, उसकी कोई जरूरत ही नहीं है।
लेकिन राजनेता कैसे जीएगा? अगर सीमाएं न हों, तो राजनेता गया! अगर युद्ध न हों, तो सेनापतियों का और सेनाओं का क्या हो? और अगर युद्ध न हों, तो सैन्य विशेषज्ञों का, और बम बनाने वाले कारखानों का, और हथियार ढालने वाले धनपतियों का क्या हो?
नोबल प्राइज मिलती है आज। प्रत्येक नोबल प्राइज के साथ कोई बीस लाख रुपया होता है करीब। और हर क्षेत्र में नोबल प्राइज दी जाती है प्रतिवर्ष। लेकिन जिस आदमी ने नोबल प्राइज शुरुआत की, वह आदमी बम बनाने वाला इस दुनिया का सबसे बड़ा उद्योगपति था। उसने सारा धन इकट्ठा किया बम बनाने से। पहला महायुद्ध नोबल के ही बमों से लड़ा गया। लाखों लोग मरे उसके ही बमों से। और आज नोबल पुरस्कार शांति के लिए दिया जाता है। गजब की दुनिया है! मजेदार लोग हैं! धन आया है सब हिंसा से, खून से; लहूलुहान है। न लेने वालों को संकोच है, न देने वालों को कोई संकोच है।
ये जो करोड़ों रुपए प्रतिवर्ष नोबल प्राइज में मिलते हैं, वह आदमी इतना धन इकट्ठा करके छोड़ गया है! यह सिर्फ ब्याज से ही नोबल प्राइज दी जा रही है। उसके मूल धन को तो इससे कोई हानि पहुंचती ही नहीं। मूल धन तो जमा है। यह मूल धन आया है संगीनों से, बमों से, हिंसक अस्त्रों से, शस्त्रों से। मूल धन तो जमा है। अनंत काल तक उस मूल धन के सिर्फ ब्याज से ये नोबल प्राइज दी जाती रहेंगी। करोड़ों रुपए की नोबल प्राइज हर साल बांट दी जाएगी--साहित्य में, शांति के लिए, सौमनस्य के लिए, सेवा के लिए--हर चीज के लिए नोबल प्राइज है। और कोई यह फिक्र नहीं करता कि यह पैसा आया कहां से? और यूं नहीं है कि नोबल प्राइज की घोषणा करने के बाद नोबल ने कोई अपने कारखाने बंद कर दिए थे। नोबल के कारखाने भी जारी रहे। शांति-पुरस्कार भी बंटने लगा, और कारखाने भी जारी रहे! युद्ध का सामान भी बनता रहा, और शांति का पुरस्कार भी बंटता रहा!
यहां बड़े निहित स्वार्थ हैं। सीमाओं में सारे स्वार्थ बंधे हुए हैं।
और बड़ी हैरानी की बात यह है कि सीमाओं की जरूरत क्या है? क्या जमीन बिना सीमाओं के नहीं हो सकती? जमीन पर यूं भी कोई सीमाएं नहीं हैं; सब सीमाएं नक्शों में हैं। क्या फर्क पड़ता है कि एक जिला हिंदुस्तान में है कि पाकिस्तान में है? उस जिले के लोग खुश रहें, कहीं भी रहें। भारत में रहें कि पाकिस्तान में रहें, क्या फर्क पड़ता है! मगर इंच-इंच के लिए उपद्रव है।

किसी को इसकी चिंता नहीं है कि आदमी सुख से रहे, आनंद से रहे। इसकी फिक्र है कि किसकी सीमा के भीतर? और इस पर सत्तर प्रतिशत ऊर्जा व्यय हो रही है!

तो पहली तो बात, तुम यह भाषा छोड़ो, हमारा भारत! ये भारत और चीन और जापान, या तो सब हमारे हैं या कोई भी हमारा नहीं। यह सारी पृथ्वी हमारी है, यह उदघोषणा होनी चाहिए।

मैं राष्ट्रों के विरोध में हूं। मैं राष्ट्रीयता के विरोध में हूं। मैं एक अंतर्राष्ट्रीय समाज चाहता हूं। तो वह जो सत्तर प्रतिशत हर देश खराब कर रहा है युद्ध के लिए... । और वह भी खराब होने की बड़ी अजीब हालत है।

तुम्हारा पड़ोसी डंड-बैठक लगा रहा है। तुमने देख लिया खिड़की में से कि वह डंड-बैठक लगा रहा है! तुमको घबड़ाहट फैली। तुम्हारी पत्नी ने कहा, क्या कर रहे हो मुन्ना के बाप! पड़ोसी डंड-बैठक लगा रहा है! तुम भी डंड-बैठक लगाओ! अरे, दूध-जलेबी खाओ। लस्सी पीओ। अभी बूंदी तैयार करती हूं! यह कमबख्त पड़ोसी कुछ खतरनाक इरादा रखता है! इसके इरादे नेक नहीं। सो तुम भी डंड-बैठक लगाने लगे! पड़ोसी ने देखा कि अरे, मुन्ना के बाप भी डंड-बैठक लगा रहे हैं! मामला कुछ गड़बड़ है। पड़ोसी ने देखा कि लस्सी पी रहे हैं! लाला लस्सी पी रहे हैं! पड़ोसी के प्राण संकट में पड़े। उसको भी बूंदी बनवानी पड़ेगी। बुंद में समुंद समाना! फिर उसको बूंदी ही बूंदी दिखाई पड़ेगी। जहां देखेगा, वहीं मोतीचूर के लड्डू।

अब चलो दांव-पेंच। एक-दूसरे पर नजर रखने लगे। और एक-दूसरे पर नजर रखेंगे, यह भी एक-दूसरे को समझ में आएगा कि दूसरा नजर रखता है। छिप-छिप कर देखता है। जब मैं लस्सी पीता हूं, छिप-छिप कर देखता है! दूसरा देखता है कि जब भी मेरे घर में बूंदी बनती है, छप्पर पर चढ़ कर देखता है! जासूसी कर रहा है। जरूर इसके इरादे बुरे हैं! बस, अब फिक्र छोड़ो। अब सब काम-धाम व्यर्थ है। अब तो सारा काम यह है कि मारो जितने डंड-बैठक लगा सकते हो। और जितनी बूंदी पचा सको, पचाओ! इसके पहले कि कुछ खतरा हो जाए।

यही हो रहा है। एक देश दूसरे देश पर नजर रखता है। पाकिस्तान ने अमरीका से इतने शस्त्र ले लिए! बस, भारत में तहलका, शोरगुल, कि पाकिस्तान तैयारी कर रहा है! कि इसके सिपाही डंड-बैठक मार रहे हैं! कि इसके फौजी सीमाओं पर संगीनें लेकर टहल रहे हैं! अल्लाहो अकबर बोल रहे हैं!

और वे भी बेचारे क्या करें न बोलें तो! वे देखते हैं कि इधर हनुमान चालीसा पढ़ा जा रहा है! लोग भुजाएं फड़का रहे हैं! बमबम भोले की आवाज लगा रहे हैं! तो कुछ खतरा है।

तो हिंदुस्तान तत्क्षण दंडवत करता है रूस की कि जल्दी से अस्त्र-शस्त्र भेजो! इधर पाकिस्तान को खबर लगती है कि रूस से अस्त्र-शस्त्र आ रहे हैं, मामला खतरा है। अमरीका के चरणों पर गिरो! तो यह पागलपन जारी है। छोटे-मोटे देश भी, जैसे नेपाल, उसको फिकर लगी है, क्योंकि सिक्किम को भारत पी गया। अब कहीं ऐसा नेपाल को न पी जाए! तो वह चीन की खुशामद में लगा रहता है। और बड़े देशों को भी यही छोटे देश धंधे का उपाय हैं। इन्हीं को एक-दूसरे के प्रति शंकित रखो, तो अस्त्र-शस्त्र बिकते हैं। नहीं तो अस्त्र-शस्त्र कैसे बिकें? उनका सारा का सारा उद्योग गिर जाए! सारा अर्थशास्त्र अस्त्र-शस्त्रों पर टिका हुआ है! यह अर्थशास्त्र क्या है अनर्थशास्त्र है।

यह जब तक हमारे और तुम्हारे का भाव न जाएगा, तब तक हम इस पृथ्वी को मूढ़ताओं से मुक्त नहीं कर सकते हैं। इसलिए तुम यह तो ख्याल छोड़ ही दो, हमारा भारत! यह भी दंभ है, व्यर्थ का दंभ है, दो कौड़ी की बात है। क्या हमारा! मगर मूढ़ताएं ऐसी ही होती हैं। मूढ़ताएं दिखाई नहीं पड़तीं। इसलिए मैंने कहा, सिर्फ विचार से काम न चलेगा, ध्यान की आंख चाहिए; तो मूर्खता दिखाई पड़ेगी।

क्या-क्या बातें होती हैं! एक वक्तव्य देखा आज सुबह। दत्ताबाल ने एक वक्तव्य दिया है मेरे खिलाफ कि यह छत्रपति शिवाजी की भूमि... !

अब छत्रपति शिवाजी से मुझे क्या लेना-देना! और छत्रपति शिवाजी कौन सी खास बात है। अरे, कोई भी छाता लगा लो, छत्रपति हो जाओ! छाते ही छाते मिल रहे हैं। अभी तो बरसात खतम हुई है; जितने चाहो उतने ले लो। सस्ते मिल रहे हैं। छत्रपति होने से क्या होता है? छत्रपति शिवाजी की भूमि! जैसे कोई भारी बात हो गई यह छत्रपति शिवाजी का होना! मगर बस, इस तरह के अहंकार।

छत्रपति शिवाजी की भूमि, दत्ताबाल ने कहा। और उन्होंने अपने लिए कहा
कि मेरे जैसे सिंह इस भूमि में अभी मौजूद हैं! सिंह की छाती वाले लोग मौजूद हैं! मैं आचार्य रजनीश को चुनौती देता हूं वाद-विवाद की।
मैंने तो दत्ताबाल को कभी देखा नहीं, लेकिन दर्शन से मैंने पूछा था, कोई पांच-सात-दस वर्ष हो गए तब। वह दत्ताबाल को सुन कर आई थी। तो मैंने पूछा कि कैसे लगे? तो उसने कहा, बैठे रहें तो बिल्कुल ठीक। खड़े हो जाएं, तो सब गड़बड़! मैंने कहा, बात क्या है? तो वह कहने लगी कि छाती तो बड़ी है, मगर पैर बहुत छोटे हैं! सो बैठे रहें सो ठीक। खड़े होते ही से सब गड़बड़ हो जाता है! सो वे लिख रहे हैं कि सिंह जैसी छाती वाले... ।
वह तो ठीक, मगर पैरों का भी तो ख्याल करो! और सिंह की छाती कोई बड़ी खूबी
की बात है! कोई भी ऐरे-गैरे-नत्थूखैरे सिंह की, सभी की छाती होती है। उसमें क्या बात है! सरकस के सिंहों की भी होती है, जंगली सिंहों की भी होती है, इसमें कौन सी खास बात है? आदमी होकर और सिंहों से अपनी तुलना करना, पतन है और कुछ भी नहीं। तो किसी लायंस क्लब में भरती हो जाओ, और क्या करो! इसमें इतना शोरगुल मचाने की क्या जरूरत है?
और सत्य का निर्णय कोई वाद-विवाद से होता है? सत्य का अनुभव होता है, कोई वाद-विवाद तो होता नहीं। सत्य का कोई शास्त्रार्थ तो होता नहीं। मुझसे वाद-विवाद करके क्या निर्णय होगा? मैंने सत्य जाना। तुमने अगर सत्य जाना हो, तो सौभाग्य की बात है। अब वाद-विवाद क्या करना? और अगर तुमने सत्य न जाना हो, तो वाद-विवाद से तुम जान सकोगे? फिर उसके लिए तो शिष्यत्व चाहिए। वाद-विवाद से हल नहीं होगी बात। वाद-विवाद तुम क्या खाक करोगे! लेकिन उनको बेचैनी क्या हो गई? क्योंकि मैंने विवेकानंद की कुछ आलोचना कर दी। बस, उससे उनको बेचैनी हो गई। कहा कि विवेकानंद तो मेरे प्राण हैं!
जिसके भी प्राण किसी और में होते हैं, उसके पास अपने प्राण नहीं होते,
यह ख्याल रखना। विवेकानंद तुम्हारे प्राण हैं? वे तो मर चुके कभी के! सो तुम लाश ढो रहे हो अब। प्राण दूसरे में? तो तुममें क्या है फिर? तुम फिर पिंजड़े ही हो! प्राण तो विवेकानंद में हैं। और वे तो बेचारे गए!
अड़चन क्या आ जाती है इस तरह के लोगों को?
विवेकानंद की आलोचना हो गई, तो उनका अतीत गौरव, भारत का गौरव, छत्रपति शिवाजी की भूमि, सब को चोट लग गई एकदम।
जब तक तुम्हारा यह "हमारा भारत" ऐसा भाव बना रहेगा, तब तक तुम कभी भी अंधविश्वासों और दकियानूसी विचारों से न तो खुद को मुक्त कर पाओगे, न किसी और को मुक्त कर पाओगे। दकियानूसी विचार यही तो है, उसकी जड़ यही तो है, हमारा! फिर गलत भी हो, तो अपना अपना है। अरे, अपनी मां अगर कुरूप भी हो, तो कोई कुरूप थोड़े ही कहता है! अपना बाप अगर गधा भी हो, तो कोई गधा थोड़े ही कहता है! ऐसे वक्त पड़ जाए तो लोग गधे को बाप भला कह दें; मगर कितना ही वक्त पड़ जाए, अपने बाप को गधा थोड़े ही कहते हैं! मगर तुम कहो या न कहो, इससे क्या फर्क पड़ता है!
ध्यान की आंख चाहिए कि तुम देख सको; अपने और पराए का सवाल नहीं है। सही सही है, चाहे पराया हो। और गलत गलत है, चाहे अपना हो।
मैं एक घर में कोई पांच-सात साल मेहमान था। जब विद्यार्थी था, तो उस घर में रहा। उनका झगड़ा पड़ोसी से हो गया। थोड़े डरे। जैनी आदमी थे। जितने डरपोक हैं, सभी अहिंसा को परम धर्म मानते हैं। डरपोक के लिए यह सुरक्षा है, अहिंसा परमो धर्मः। इससे एक लाभ यह रहता है कि भई हिंसा वगैरह नहीं। मतलब यह है कि हम तो कर ही नहीं सकते हिंसा, तुम भी मत करना; क्योंकि अहिंसा परमो धर्मः! परम धर्म का पालन करो। हम भी करें; तुम भी करो।
जैनी थे, थोड़े घबड़ाए। पड़ोसी से झगड़ा हो गया। मैं उनके घर में रहता था,
तो मुझसे बोले कि कुछ करना पड़ेगा! मैंने कहा, मैं तो पड़ोसी के साथ हूं। उन्होंने कहा, क्या कह रहे हो? कहते क्या हो? अरे, रहते हमारे साथ हो, रहते हमारे घर में हो, और पड़ोसी का साथ दोगे?
मैंने कहा, बात उसकी सही है। मैं तो जिसकी बात सही है, उसके साथ हूं।
घर की फिक्र करूं कि बात की फिक्र करूं?

उन्होंने तो मुझे ऐसे देखा, जैसे मुझे पहली दफा देखा हो! थोड़ी देर तो बिल्कुल चुप ही बैठे रहे, गुमसुम हो गए। कहने लगे, यह तो मैंने कभी सोचा ही नहीं था कल्पना में कि तुम अपने वाले होकर धोखा दोगे!
मैंने कहा, अपने वाले होने का सवाल नहीं है। तुम्हारी बात ही गलत है। मैं साथ देने वाला नहीं हूं। अगर मार-पीट की नौबत आई, तो मैं तुम्हारी पिटाई करूंगा। और मैं कोई अहिंसा परम धर्म मानता भी नहीं। और तुमने बात उठा दी, तो ठीक। अभी पड़ोसी ने पूछा नहीं है मुझसे। मगर मैं बता दूंगा उसको कि मैं तुम्हारे साथ हूं।
वे कहने लगे कि यह तो मेरे सोच-विचार में ही नहीं आता!
मैंने कहा, फिर सोचो-विचारो। दिन, दो दिन का वक्त निकाल लो। तुम सोचो- विचारो। तुम्हारी बात गलत है; वह मैं समझाने को तुम्हें राजी हूं। लेकिन अगर तुम अपनी गलत बात पर ही जिद्द करने पर अड़े हो, तो मैं पड़ोसी के साथ हूं। फिर चाहे यह घर रहे कि जाए! और फिर जरूरी थोड़े ही है कि घर जाए ही; क्योंकि जो जीतेगा वह रहेगा घर में!
वे कहने लगे, क्या इसका मतलब कि मुझे घर से जाना पड़ेगा?
जिसकी लाठी, उसकी भैंस! अगर मैं और पड़ोसी दोनों मिल कर जीत गए, तो मैं
भी रहूंगा और पड़ोसी भी इसी में रहेगा। तुम अपना समझो!
वे कहने लगे, मजाक का मामला नहीं है। तुम मजाक समझ रहे हो।
मैंने कहा, मजाक की बात मैं कर ही नहीं रहा। मैं मजाक की बात करता ही नहीं। मैं तो हर बात गंभीर करता हूं। और वक्त आएगा तो पता चल जाएगा तुम्हें।
यह देख कर उन्होंने फिर वक्त आने ही नहीं दिया। उन्होंने पड़ोसी से समझौता ही कर लिया कि यह झगड़े-झांसे का मामला है। अपने ही घर में अपनी दुश्मनी करने वाला मौजूद हो... ! मगर उस दिन से वे मुझसे शंकित हो गए। फिर मुझसे खुल कर बात न करें। कुछ कटे-कटे रहें।
मैंने कहा, तुम्हारी मर्जी। मगर गलत तुम थे, यह अगर तुम समझ लो, तो तुम मेरे प्रति धन्यवाद अनुभव करोगे। झगड़ा भी बच गया, पिटे-कुटे भी नहीं, बात भी समाप्त हो गई। और मैंने ही समाप्त करवाई। अगर तुम समझो दोनों, तो दोनों को अनुगृहीत होना चाहिए। अगर मैं तुम्हारे साथ होता, तो सोचो, झगड़ा होने वाला था।
सत्य के साथ खड़े होना सीखो। सत्य अपना और पराया नहीं होता। न हिंदू होता, न मुसलमान होता, न जैन, न ईसाई। सत्य तो सत्य है, उसका कोई विशेषण नहीं होता। और सत्य का कोई विवाद भी नहीं होता। एक दृष्टि होती है; देखने की एक आंख होती है।
अंधविश्वास जरूर भरे हुए हैं। लेकिन सभी विश्वास अंधे होते हैं। अंधविश्वास शब्द से इस भ्रांति में मत पड़ जाना कि कुछ विश्वास ऐसे भी होते हैं, जो अंधे नहीं होते। अंधविश्वास शब्द से यह भ्रांति पैदा होती है।
विश्वास मात्र अंधे होते हैं।
विश्वास का अर्थ क्या होता है? जो नहीं जाना, उसे मानना। यही तो अंधापन है। जिसे जाना, उसे मानने की जरूरत ही नहीं पड़ती। जिसको जाना, जाना। जिसको नहीं जाना, उसी को मानना पड़ता है।
सूरज ऊगता है। क्या तुम सोचते हो दुनिया बंटी हुई है उन लोगों में कि कुछ लोग सूरज को मानते हैं कि ऊगता है और कुछ लोग मानते हैं कि नहीं ऊगता? दुनिया में कोई बंटाव नहीं है, कोई झगड़ा नहीं है, कोई संप्रदाय नहीं है, कि ये सूरज को मानने वाले लोग, ये सूरज को न मानने वाले लोग! वृक्ष हरे हैं, इसमें कोई झगड़ा नहीं है।
लेकिन ईश्वर है या नहीं, इसमें झगड़ा है। जिस चीज में भी झगड़ा हो, समझ लेना कि उसमें मान्यता काम कर रही है, जानना काम नहीं कर रहा है। झगड़ा ही इस बात का सबूत है कि अभी विवाद हो सकता है, क्योंकि मामला धुंधला है। अंधविश्वास से ऐसा मत समझना कि कुछ ऐसे भी विश्वास होते हैं, जो आंख वाले होते हैं, कोई विश्वास आंख वाला नहीं होता। सब विश्वास अंधे होते हैं। राम में विश्वास करो, कि कृष्ण में, कि बुद्ध में, कि मोहम्मद में, कि जीसस में, कुछ फर्क नहीं पड़ता। विश्वास किया, कि तुम अंधे हुए।
अब ये दत्ताबाल हैं, विवेकानंद में विश्वास करते हैं।

यह अंधापन है। अपनी अनुभूति होनी चाहिए। मैं अपने बल से कुछ कह रहा हूं। किसी विवेकानंद, किसी रामकृष्ण, किसी रमण, किसी कृष्ण, किसी बुद्ध, किसी महावीर की गवाही की भी मुझे कोई जरूरत नहीं है। मैं जो कह रहा हूं, वह मेरा अनुभव है। किसी को रुच जाए, रुच जाए। रुच जाए तो प्रयोग करना पड़ेगा, विश्वास नहीं।
इसलिए मेरा जो संन्यासी है, वह कोई मेरा अनुयायी नहीं है। इस बात को स्मरण रखना। मेरा संन्यासी तो सिर्फ मेरे साथ प्रयोग करने को राजी हुआ है। मेरा संन्यासी तो वैज्ञानिक है।
विज्ञान में एक शब्द हैः परिकल्पना, हाइपोथीसिस। वह शब्द प्यारा है। उसका मतलब विश्वास नहीं होता, उसका मतलब होता है कामचलाऊ स्वीकार; खोज के लिए। खोज के लिए मान लेते हैं कि दो और दो चार होते हैं। अब खोज करेंगे। मान नहीं लिया कि दो और दो चार होते हैं। सिर्फ खोज के लिए अंगीकार कर लिया है कि चलो, इस परिकल्पना को मान कर चलते हैं कि दो और दो चार होते हैं; अब खोज करेंगे कि यह परिकल्पना सही है या नहीं? निर्णय तो प्रयोग से होगा।
जैसे विज्ञान में निर्णय प्रयोग से होता है, वैसे ही धर्म में निर्णय योग से होता है। प्रयोग अर्थात बाहर का योग; योग अर्थात भीतर का प्रयोग। विज्ञान में जैसे परीक्षण होता है, वैसे ही धर्म में भी परीक्षण होता है। विज्ञान अनुभव-निर्भर होता है; धर्म अनुभूति-निर्भर होता है।
मेरे प्राण किसी में भी नहीं हैं। अब दत्ताबाल कहते हैं कि वे मुझसे विवाद करना चाहते हैं, चुनौती देना चाहते हैं। निष्प्राण आदमियों से मैं क्या विवाद करूं? अपने प्राण होने चाहिए! कुछ अपना अनुभव होना चाहिए!
न विवेकानंद के पास अपने प्राण थे। उनके प्राण रामकृष्ण में थे! खुद विवेकानंद ने कहा है कि मैं नहीं जानता, लेकिन मैं एक व्यक्ति को जानता हूं जो जानता है।
यह तो उधार बात हो गई! विवेकानंद के प्राण रामकृष्ण में! और दत्ताबाल
के प्राण विवेकानंद में! यह तो हद्द हो गई। यह तो बहुत ही दूर हो गया मामला। यह तो उधार से भी उधार हो गई बात। अब इसमें तो कुछ भी बचा नहीं। मेरा संन्यासी अपने प्राण मुझ पर नहीं रख रहा है। मेरा संन्यासी मेरे साथ है, ताकि अपने प्राण खोज सके। मैं उसका प्राण नहीं हूं। कोई किसी दूसरे का प्राण नहीं हो सकता।
विश्वास का अर्थ होता है, अब खोज की जरूरत न रही। परिकल्पना का अर्थ होता है, अब खोज की शुरुआत हुई। चलो, माने लेते हैं कामचलाऊ कि ईश्वर है। अब हम खोजेंगे। हम आस्तिक नहीं; हम नास्तिक नहीं; क्योंकि दोनों ने विश्वास कर लिया। आस्तिक भी अंधे होते हैं, नास्तिक भी अंधे होते हैं। उनकी धारणाएं विपरीत होती हैं, मगर इससे क्या फर्क पड़ता है! दो अंधे आदमी एक-दूसरे की तरफ पीठ करके खड़े हो जाएं, इसका कोई अर्थ होता है कि उनके पास आंख आ गई? दोनों अंधे हैं, पीठ करके खड़े हैं।
आस्तिक भी अंधा होता है, नास्तिक भी अंधा होता है। रूस में अधिकतम लोग नास्तिक हैं, क्योंकि सरकार नास्तिकता पढ़ाती है, स्कूल नास्तिकता पढ़ाते हैं, मां-बाप नास्तिकता पढ़ाते हैं; आस्तिकता खतरनाक चीज है। हिंदुस्तान में लोग आस्तिक हैं, क्योंकि मां-बाप आस्तिकता पढ़ाते हैं; स्कूल, विद्यालय, विश्वविद्यालय, पंडित-पुरोहित, संत-महंत, महात्मा, सब आस्तिकता पढ़ाते हैं। आस्तिकता सुगम बात है; नास्तिकता खतरनाक बात है।
उन्नीस सौ सत्रह के पहले रूस भी इसी तरह आस्तिक था, जैसे तुम आस्तिक हो। और क्रांति के दस साल बाद नास्तिक हो गया! तुम भी दस साल से ज्यादा न लोगे। अगर यहां कम्युनिस्ट क्रांति हो जाए, दस साल में वे ही लोग, जो गीता लिए फिरते थे, वे कार्ल मार्क्स की किताब दास कैपिटल को बगल में दबाए हुए घूमने लगेंगे। यही दत्ताबाल जैसे लोग, जिनके प्राण अभी विवेकानंद में हैं, इनके प्राण एकदम से कार्ल मार्क्स में हो जाएंगे। क्योंकि जिसकी प्रतिष्ठा है, उसके साथ होने में मजा है, उसके साथ बल है।
मेरे साथ होने में तो हिम्मत चाहिए। मेरे साथ होने के लिए तो प्रयोग करने का दुस्साहस चाहिए, क्योंकि मैं तुम्हें कोई विश्वास नहीं दे रहा हूं। मैं तो सिर्फ तुम्हें इशारे दे रहा हूं कि इन रास्तों से मैंने खोजा। तुम भी कोशिश करो। शायद... । ख्याल रखना कि मैं कह रहा हूं, शायद! क्योंकि जो

मेरे लिए रास्ता ठीक सिद्ध हुआ, जरूरी तो नहीं कि तुम्हारे लिए भी ठीक सिद्ध हो। शायद तुम्हें भी मिल जाए! कोशिश कर लेने में कुछ बुराई नहीं। न भी मिला, तो भी कोशिश का फायदा है। इतना चलने का व्यायाम ही होगा। इतना अभ्यास ही होगा। इतनी खोज-बीन की सुधि आएगी। कम से कम इतनी परीक्षा तो कर लेने का गणित आ जाएगा। इतना विज्ञान तो सीख लोगे। कम से कम इतना तो तय है कि यह पता चल जाएगा कि इस रास्ते पर मेरा सत्य नहीं है। तो कोई और रास्ते पर खोजूं।
एडीसन प्रयोग कर रहा था बिजली के संबंध में। सात सौ प्रयोग किए और सात
सौ बार असफल गया। तीन साल लग गए। उसके विद्यार्थी, उसके सहयोगी, सब थक मरे। लेकिन उसे कोई थकान नहीं। रोज सुबह हाजिर हो जाए। फिर लग पड़े। रात बारह बजे तक लगा रहे। एक दिन उसके सारे सहयोगियों ने कहा कि अब तो क्षमा करें! तीन साल हो गए; सात सौ प्रयोग हम कर चुके, असफल होते गए। अब और क्या चाहिए? असफलता निश्चित हो गई!
एडीसन चौंका। एडीसन ने कहा, असफलता निश्चित हो गई? अरे, पागल हुए हो! सफलता करीब आ रही है। सात सौ दरवाजे हमने खटखटा कर देख लिए। अगर एक हजार दरवाजे हों, तो तीन सौ ही बचे अब। और अगर सात सौ एक ही दरवाजे हों, तो सिर्फ एक ही बचा अब। हम करीब आ रहे हैं। सात सौ दरवाजे हमने खटखटा कर देख लिए, वहां नहीं पाया। हम असफल नहीं हुए।
विज्ञान में कभी कोई असफल होता ही नहीं। हारो, तो भी जीत है। जीतो, तो
भी जीत है। हारे, तो इतना तय हो गया कि यह रास्ता हमारे लिए नहीं था। तो और रास्ते पर खोजें। एक रास्ते से छुटकारा हुआ। पहुंच गए, तो ठीक है। जीत ही जीत है। नहीं पहुंचे, तो एक रास्ते से मुक्ति हुई। थोड़े रास्ते बचे। ऐसे रास्ते कटते-कटते वही रास्ता मिल जाएगा, जिससे पहुंचना होता है।
और फिर मैं यहां सारे रास्ते उपलब्ध कर रहा हूं। ऐसा पृथ्वी पर कभी भी नहीं हुआ है। यहां ध्यान की सारी पद्धतियां उपलब्ध हैं। अगर एक से न पहुंचो, तो दूसरी पकड़ाता हूं। दूसरी से न पहुंचो, तो तीसरी पकड़ाता हूं। विश्वासियों का यहां काम नहीं है, क्योंकि सभी विश्वास अंधे होते हैं। यहां तो आंख खोलनी है। और आंख खोलने के लिए परीक्षण, प्रयोग, अनुभव... ! तुम कहते हो, "यह अंधविश्वासों तथा दकियानूसी विचारों से दबा हुआ भारत... ।"
सभी विचार दकियानूसी होते हैं। और सभी विश्वास अंधे होते हैं। विचार
का अर्थ ही दकियानूसी होता है। असल में विचार कभी मौलिक नहीं होता; हो ही नहीं सकता। अंधा आदमी कितना ही सोचे प्रकाश के संबंध में, क्या कोई मौलिक बात सोच पाएगा? कैसे सोच पाएगा? अरे, प्रकाश तो बहुत दूर, अंधकार के संबंध में भी कोई मौलिक बात न सोच पाएगा। अंधा आदमी प्रकाश या अंधकार के संबंध में कुछ सोच ही नहीं सकता। ज्यादा से ज्यादा इतना ही कर सकता है कि औरों ने जो कहा है प्रकाश और अंधकार के संबंध में, उसको कंठस्थ कर ले और दोहराने लगे। बस, इतना ही कर सकता है। शास्त्रीय हो सकता है, पांडित्यपूर्ण हो सकता है।
लेकिन प्रकाश के संबंध में लाख जान लो, तो भी प्रकाश को जानना और बात है।
यह देश दकियानूसी विचारों से दबा है, क्योंकि यह देश विचारों से दबा है। और सभी विचार दकियानूसी होते हैं। यह दत्ताबाल का वक्तव्य देखो! इससे तुम्हें समझ में आएगा कि किस तरह विचार दकियानूसी होते हैं।

सत्य वेदांत ने पूछा हैः ओशो, आपके विवेकानंद पर व्यक्त किए गए विचार
से क्षुब्ध होकर श्री दत्ताबाल ने एक अत्यंत बेसिर-पैर का लेख पूना के तरुण भारत में प्रकाशित करवाया है। उनका अनर्गल प्रलाप मुख्यतः इस प्रकार हैः
आपने विवेकानंद को कागजी गुलाब कहा है। परंतु स्वयं रामकृष्ण, केशवचंद्र तथा राजा राममोहन राय की तुलना में विवेकानंद को सहस्रदल कमल कहा करते थे।

इससे मुझे कोई एतराज नहीं। क्योंकि केशवचंद्र और राजा राममोहन राय की तुलना में विवेकानंद निश्चित ही सहस्रदल कमल थे।
इसको मैं कहता हूं, मूढ़तापूर्ण बातें, जिन्हें सोचने की भी अकल नहीं है।
मैंने कहा, रामकृष्ण की तुलना में विवेकानंद कागजी फूल थे। थोड़ा फर्क
तो समझो! रामकृष्ण की तुलना में विवेकानंद कागजी फूल थे। रामकृष्ण अगर असली कमल हैं, तो विवेकानंद केवल कागजी कमल हैं। और रामकृष्ण ने कहा, केशवचंद्र तथा राजा राममोहन राय की तुलना में विवेकानंद सहस्रदल कमल थे। मैं भी राजी। मगर बात ही और हो गई।
केशवचंद्र को तो मैं कागजी फूल भी नहीं कह सकता। केशवचंद्र तो केवल तार्किक थे, बस तार्किक। और तर्क तो वेश्या जैसा होता है। तर्क की कोई निष्ठा नहीं होती। जैसे वेश्या की कोई निष्ठा नहीं होती। जो पैसा दे, उसके साथ! जो खरीद ले, उसकी!
केशवचंद्र तो तार्किक थे। विवेकानंद कम से कम रामकृष्ण के चरणों में
तो बैठे थे! कम से कम कमल का संग-साथ तो हुआ था! और अगर तुम बगीचे से भी निकल जाओ, फूलों को छुओ भी मत, तो भी थोड़ी-बहुत गंध तुम्हारे कपड़ों से लिपटी हुई चली आती है। और अगर तुम फूल को छू लो, तब तो स्वभावतः तुम्हारे हाथों में थोड़ी गंध आ जाती है। हाथ फूल नहीं हो जाते, लेकिन गंध तो आ जाती है। विवेकानंद रामकृष्ण के पास थे, निकट थे। इससे थोड़ी सी गंध रामकृष्ण
की उनसे प्रवाहित हुई। इसलिए रामकृष्ण का थोड़ा सा स्वर उनको छू गया था। उसके कारण ही मैंने उन्हें इतना आदर दिया कि कम से कम कागजी कमल कहा! केशवचंद्र को तो मैं कागजी कमल भी नहीं कहूंगा। केशवचंद्र को तो कोई संबंध ही नहीं है कमल से। न कमल देखा है, न कमल सुना है।
और राजा राममोहन राय तो बेचारे एक समाज-सुधारक थे। और समाज-सुधारकों
को तो मैं उपद्रवी मानता हूं। दुनिया में अगर समाज-सुधारक न हों, तो समाज बड़ी शांति से रहे! मगर ये समाज-सुधारक उसे शांति से नहीं रहने देते। ये नए-नए उपद्रव खड़े करते रहते हैं। तुम्हारे ही हित के लिए तुम्हारी छाती पर सवार रहते हैं। ये कहते हैं, हम तो सेवा करेंगे!
मैं जयपुर से लौट रहा था। कोई बारह बजे होंगे, एक स्टेशन पर गाड़ी रुकी। एक आदमी भीतर घुस आया, एकदम मेरे पैर दबाने लगा! नींद मेरी खुली। मैंने कहा, भाई तू यह क्या कर रहा है?
उसने कहा, आप बिल्कुल सोइए। मैं तो सेवा कर रहा हूं। मैं तो जयपुर भी आया था, मगर लोगों ने मुझे आपकी सेवा करने ही नहीं दी। वे भीतर ही न घुसने दें! तो मैंने भी कहा, ठीक है। देख लेंगे!
मैंने कहा, तू उनको देख भैया! मैंने तो तुझे रोका नहीं। तू मुझे क्यों सताता है!
उन्होंने कहा, आप बिल्कुल बीच में पड़ें ही मत। ज्यादा समय भी नहीं है; गाड़ी फिर निकल जाएगी। आप तो शांति से सोएं। मैं तो सेवा करूंगा! मैं तो सेवा करके रहूंगा!
मैंने कहा, तुझे अगर मुझे सोने देना हो, तो फिर तुझे सेवा करनी बंद करनी पड़ेगी। क्योंकि तू इतने जोर से पैर दबा रहा है, मुझे पैर दबवाने की आदत नहीं है, कि मैं सोऊं तो कैसे सोऊं?
उसने कहा कि आप अपनी जानो! मैं यह पुण्य का अवसर नहीं छोड़ सकता हूं।
अब इसको कहते हैं सेवा करने वाले लोग! इन्हें पुण्य का अवसर नहीं छोड़ना है!
करपात्री, हिंदुओं के एक बड़े प्रसिद्ध महात्मा हैं। उन्होंने एक किताब लिखी है, समाजवाद और रामराज्य। उसमें उन्होंने समाजवाद के खिलाफ जो बहुत सी बातें कही हैं, उनमें एक बात बड़ी मजेदार कही। वह यह कि समाजवाद कभी नहीं आना चाहिए, क्योंकि अगर समाजवाद आ गया, तो धर्म का क्या होगा? क्योंकि धर्म की तो आधारशिला दान है। कहा ही है कि दान से बड़ा कोई पुण्य नहीं और लोभ से बड़ा कोई पाप नहीं। धर्म का आधार तो दान है। जब न कोई अमीर होगा, न कोई गरीब होगा, तो कौन दान देगा और कौन दान लेगा?
देखते हो, तर्क क्या साफ है! इसलिए समाजवाद तो कभी नहीं चाहिए, इससे तो धर्म का विनाश हो जाएगा! धर्म को बचाने के लिए गरीब का बचना जरूरी है। नहीं

तो दान किसको दोगे? बात तो जंचती है। बात तो तर्कपूर्ण है। अगर दान से ही धर्म होने वाला है, तो गरीबों का रखना आवश्यक है। उनकी सुरक्षा करो; बचाओ। गरीबी मिटने मत दो। अनाथ बच्चे चाहिए, भिखमंगे चाहिए, भूखे चाहिए, बीमार लोग चाहिए, बूढ़े चाहिए, विधवाएं चाहिए। ये तो बिल्कुल आवश्यक हैं; नहीं तो इनके बिना धर्म ही नष्ट हो जाएगा! इन्हीं पर तो चढ़-चढ़ कर महात्मागण स्वर्ग तक पहुंचते हैं। ये तो सीढ़ियां हैं मोक्ष की। और तुम सीढ़ियां ही मिटाए दे रहे हो! समाजवाद यानी सीढ़ियां ही खतम! न देने को कोई; न लेने को कोई! तो धर्म विनष्ट हो जाएगा। ये समाज-सुधारक हैं! ये कहते हैं, सेवा होनी चाहिए। मैं चाहूंगा ऐसी दुनिया, जहां सेवा की कोई जरूरत न हो, जहां किसी को सेवा की कोई जरूरत न हो। मैं चाहूंगा ऐसी दुनिया, जहां इन समाज-सुधारकों की कोई आवश्यकता न हो।
यह तो बड़ी अजीब सी स्थिति है! यह स्थिति यूं है कि एक समाज-सुधारक एक काम कर जाता है। वही काम बाद में पता चलता है बीमारी सिद्ध हो गया! फिर दूसरा समाज-सुधारक उसको सुधारता है। वह दूसरी बीमारी खड़ी करता है। फिर तीसरा आता है। यह एक शड्यंत्र है।
दो आदमी एक धंधा करते थे; पार्टनर थे। हालांकि धंधा उनका एक था, मगर काम बड़े अलग-अलग थे। एक का काम था, गांव में जाना, और रात जब लोग सोए हों, उनकी खिड़कियों पर कोलतार पोत आना। और दूसरे का काम था, दूसरे दिन सुबह से आवाज लगाना गांव में कि भाई, किसी को कोलतार तो साफ नहीं करवाना? स्वभावतः, जो-जो सुबह उठ कर देखते कि अरे, उनकी खिड़की पर कोलतार लगा है! बुलाते कि भैया, अच्छे मौके पर आ गए। संयोग की बात, यह कोलतार साफ करना है!
तब दिन भर वह आदमी कोलतार साफ करता, पैसे कमाता। तब तक दूसरा आदमी दूसरे गांव में कोलतार पोतता! यूं उनका धंधा खूब चलता। एक कोलतार पोत आता; दूसरा उसकी सफाई कर आता।
मनु महाराज समझा गए, सती होना चाहिए। और राजा राममोहन राय समझाते हैं
कि सती नहीं होना चाहिए। एक कोलतार पोतता है, एक कोलतार साफ करता है! एक समझाता है कि शूद्र होना चाहिए; क्योंकि शूद्र हुए ब्रह्मा के पैरों से; नहीं तो व्यवस्था ही नष्ट हो जाएगी। ये चार तो खंभे हैं समाज के। एक खंभा गिर गया, तो पूरा का पूरा मंदिर गिर जाएगा। और दूसरा समझाता है कि शूद्र को तो छुटकारा दिलाना चाहिए शूद्रता से। ये तो हरिजन हैं; दरिद्रनारायण हैं। बस यूं धंधा चलता है।
सदियों से समाज-सुधारक आते रहे। एक काम सुधार जाते हैं; दूसरा आ जाता
है उसको सुधारने! तीसरा आ जाता है उसको सुधारने! आदमी जहां का तहां यूं धक्के खाता रहता है।
राजा राममोहन राय एक समाज-सुधारक हैं। केशवचंद्र केवल एक तार्किक पंडित हैं। दोनों का कोई भी मूल्य नहीं; दो कौड़ी मूल्य नहीं। इसलिए दत्ताबाल से मैं राजी। मगर वे मेरी बात नहीं समझे। मैंने तुलना की थी रामकृष्ण से, और उन्होंने तुलना ही बदल दी।
"आगे उन्होंने कहा, केवल पैसे के बल पर आप बुद्धिवादी, तपस्वी व भगवान होने का आभास करवाते हैं। तथा विवेकानंद के प्रति द्वेष है। विवेकानंद लोगों को अपने हाथ से छूकर समाधि देते थे, जब कि आप में ऐसी कोई अतींद्रिय शक्ति भी नहीं, जैसी रासपुटिन में थी!"
यह थोड़ा सोचने जैसा है। अगर पैसे के बल पर कोई बुद्धिवादी हो सकता है,
तो फिर टाटा, बिड़ला बुद्धिवादी होंगे; मैं कैसे बुद्धिवादी हो पाऊंगा! और सच पूछो तो मेरे पास एक पैसा नहीं! जेब ही नहीं है! पैसा भी हो तो कहां रखूं? खाली हाथ आया; खाली हाथ हूं; खाली हाथ जाऊंगा!
यह किसने उनको कह दिया कि मैं पैसे के बल पर बुद्धिवादी हूं?
अगर पैसे के बल पर लोग बुद्धिवादी होते हों, तब तो फिर बहुत पैसे वाले हैं, उनको बुद्धिवादी होना चाहिए! और मैंने कब कहा कि मैं बुद्धिवादी? मैं तो बुद्धि का दुश्मन! बुद्धि को पोंछना ही तो मेरा काम! बुद्धि तो बीमारी है। लोग कैसे बुद्धि से मुक्त हो जाएं, यही तो मेरी एकमात्र चेष्टा है-- विचार से, बुद्धि से, मन से।

यह किस पागल ने दत्ताबाल को खबर दे दी! या उनके भीतर कौन सा पागलपन पैदा हो गया!
और किसने कहा कि मैं तपस्वी? आंख का अंधा भी नहीं कह सकता कि मैं तपस्वी! तपस्वी राल्स रायस गाड़ियों में चलते हैं? महलों में रहते हैं? वातानुकूलित कमरों में रहते हैं? मैं और तपस्वी? अरे, पैर भी एक जगह रख लेता हूं, तो हिलाता नहीं! तुम क्या तपस्वी की बात कर रहे? अंगद का भला हिल गया हो, मेरा पैर नहीं हिलता! मुझे कौन तपस्वी कहेगा? न सिर के बल खड़ा होता; न कोई योग साधता; न कोई उपवास करता; न कोई व्रत, न कोई नियम। मुझे कौन तपस्वी कहेगा? तपस्वियों को भ्रष्ट करना, इसके लिए तो सारे मैं आयोजन करता हूं! तपस्वियों को कैसे डगमगाना!
ये क्या-क्या बातें इनको पकड़ गई हैं कि तपस्वी और भगवान होने का आभास करवाते हैं!
आभास क्यों करवाऊंगा? मैं हूं ही। आभास वह करवाए, जो न हो। और मैं ही भगवान हूं, ऐसा थोड़े ही; दत्ताबाल को पता नहीं, वे भी हैं। वे लाख समझें कि सिंह हैं; सिंह नहीं, भगवान हैं! सभी भगवान हैं। जहां चेतना है, वहां भगवत्ता है।
हां, कुछ भगवान सोए हैं, जैसे दत्ताबाल। कोई जाग जाता है। जागने-सोने में कोई गुणात्मक भेद नहीं है। अरे जो सोया है, जग सकता है। जो अभी सोया था, अभी जग गया! जो अभी भी सोया है, थोड़ी देर बाद जग सकता है। जो सोने की क्षमता रखता है, वह जगने की क्षमता भी रखता है। सोया हुआ भी भगवान है, जागा हुआ भी भगवान है। सोए हुए को पता नहीं होता; दत्ताबाल जैसा वह सोचता है, मेरे प्राण विवेकानंद में हैं! विवेकानंद सोचते हैं, मेरे प्राण रामकृष्ण में! ये सोए हुओं के लक्षण। जागे हुए के लक्षण, कि वह जानता है कि मेरे प्राण मेरे भीतर। मेरी आत्मा मेरे भीतर। मेरा परमात्मा मेरे भीतर। परमात्मा आत्मा का ही शुद्धतम अनुभव है, और कुछ भी नहीं।
यह कोई विशिष्टता नहीं है। यह भ्रांति कब छूटेगी इस देश से! सदियों से ऋषि दोहराते रहे, अहं ब्रह्मास्मि! और यही नहीं कि मैं ब्रह्म हूं; यह भी दोहराते रहे, तत्वमसि! तुम भी वही हो! और फिर भी ये हिंदू धर्म के ठेकेदार, भारतीय संस्कृति के ठेकेदार, विवेकानंद के ठेकेदार, इनको इतना भी समझ में नहीं आता कि किसी को भगवान होना थोड़े ही पड़ता है। भगवान तो हम हैं ही। लाख भुलाने की कोशिश करो, तो भी भूल नहीं सकते। लाख मिटाने की कोशिश करो, तो भी मिटा नहीं सकते। भगवान होना हमारा स्वभाव है, हमारा स्वरूप है।
और वे कहते हैं कि मेरे भीतर विवेकानंद के प्रति द्वेष है।
विवेकानंद! बेचारों के पास ऐसा क्या है जिसके लिए मैं द्वेष करूं? मुझे तो ऐसा कुछ दिखाई नहीं पड़ता जिसमें कि द्वेष हो! न तो मुझे कोई ऐसी गरिमा, ऐसी महिमा दिखाई पड़ती है। न विवेकानंद के विचारों में कोई ऐसा प्रगाढ़ बुद्धत्व दिखाई पड़ता है। सब उधार है! सब बासा है!
और विवेकानंद ने स्वीकार किया है कि मैं जो भी कह रहा हूं, वह सब रामकृष्ण का अनुभव है; मेरा नहीं। विवेकानंद से जब अमरीका में किसी ने कहा कि आप जो कहते हैं, वह बहुत प्रभावित करता है! तो उन्होंने कहा--यह विनम्रता उनमें थी--कहा कि काश, तुम उसे देख लेते, जिसके शब्दों को मैं दोहरा रहा हूं! तब तुम जानते कि मैं तो कुछ भी नहीं, मैं तो केवल प्रतिध्वनि मात्र हूं।
तो विवेकानंद में क्या है जिससे मुझे द्वेष हो? जब मुझे बुद्ध से द्वेष नहीं है, लाओत्सु से द्वेष नहीं है, जीसस से द्वेष नहीं है, जरथुस्त्र से द्वेष नहीं है, महावीर से द्वेष नहीं है--जिनके पास कुछ है। रामकृष्ण से द्वेष नहीं है, रमण से द्वेष नहीं है, कृष्णमूर्ति से द्वेष नहीं है--जिनके पास कुछ है। तो बेचारे विवेकानंद से क्या द्वेष होगा! विवेकानंद तो दरिद्रनारायण, हरिजन!
उन्होंने कहा कि विवेकानंद लोगों को अपने हाथ से छूकर समाधि देते थे!
जो समाधि हाथ से छूकर दी जाती है, वह समाधि नहीं होती। नहीं तो बुद्ध पागल थे! किसी से भी छुआ लेते! रामकृष्ण पागल थे, जिंदगी भर मेहनत की, किसी से भी छुआ लेते!

और विवेकानंद ने छूकर कितने लोगों को समाधि दी? विवेकानंद को खुद को
भी समाधि मिली थी? आखिरी समय, मरते समय तक पीड़ित थे और परेशान थे, बेचैन थे, चिंतित थे, संतापग्रस्त थे!
छू लेने से कहीं समाधियां मिलती हैं? और अगर छू लेने से समाधियां मिलने लगें, तो समाधि दो कौड़ी की हो गई। समाधि अनुभव है; किसी के छूने से नहीं मिलती। यह कोई छूत की बीमारी थोड़े ही है! और छूने से मिले, तो कोई छीन भी ले! अरे, किसी ने दी, और कोई दूसरे मिल गए महात्मा, उन्होंने ले ली! तुम वहीं के वहीं रहे! एक ने छूकर दे दी; दूसरे ने छूकर ले ली--कि जा भाग! अपने काम से लग!
लेने-देने का सवाल ही नहीं है। समाधियां ली नहीं जातीं, दी नहीं जातीं।
लेकिन यह सब व्यर्थ की बकवास, जिनको तुम तथाकथित विचारक कहते हो, उनके भीतर पैदा होती है।
सारे विश्वास अंधे हैं। सारे विचार दकियानूसी हैं। और निश्चित ही, भारत इनके कारण नर्क बन गया है। खून के खौलने से कुछ भी न होगा। बुद्धि से मुक्त होओ, ध्यान में उतरो। जरूर, निर्मल घोष, तब तुम माध्यम बन सकते हो परमात्मा के। उसका संगीत तुमसे बह सकता है। उसकी वाणी तुमसे उतर सकती है।
उसकी सुगंध तुमसे आ सकती है; लोगों के जीवन में वसंत ला सकती है।
आज इतना ही।

अनहद में बिसराम
दसवां प्रवचन

सत्य की उदघोषणा

पहला प्रश्नः ओशो, श्री दत्ताबाल आपसे बहुत बुरी तरह जल-भुन गए हैं। लगता है कि उन्हें पहले से ही आपसे व्यक्तिगत रूप से जलन थी। और अब उन्हें विवेकानंद का बहाना मिल गया है। उन्होंने कहा है कि ओशो, चरस, गांजा, भांग खिला-पिला कर लोगों को समाधि दिलाते हैं, जब कि विवेकानंद सिर्फ छूकर ही समाधि दिला देते थे!
उन्होंने और भी निम्न बातें आपके संबंध में कही हैं, कृपया प्रकाश डालें।
पहली कि ओशो स्वघोषित भगवान हैं।
दूसरी कि ओशो अज्ञानी हैं।
तीसरी कि ओशो का व्यक्तित्व अत्यंत महत्वहीन है।
चौथी कि ओशो ने हिंदू देवताओं को कामी और भोगी कह कर हिंदू धर्म का अपमान किया है।
पांचवीं कि ओशो की तुलना विवेकानंद से कभी भी नहीं हो सकती है।
छठवीं कि स्वामी विवेकानंद ने अकालग्रस्त लोगों की सहायता के लिए अपना आश्रम बेचने की तैयारी दिखाई थी। क्या ओशो ऐसा कर सकते हैं?
और सातवीं कि श्री रामकृष्ण परमहंस ने कहा था कि अगले जन्म में मैं एक हरिजन की कुटिया की सफाई करूंगा। क्या ओशो भी ऐसा कर सकते हैं?

वंदना!
श्री दत्ताबाल ने जो भी कहा है, सोचने योग्य है।
पहली तो बात, मंगला भारती ने कुछ सूचनाएं श्री दत्ताबाल के संबंध में भेजी हैं, उन्हें ख्याल में लेना।
पहली कि एक साल पहले कोल्हापुर के महालक्ष्मी के मंदिर में श्री दत्ताबाल और उनके साथियों ने नशे में चूर होकर जब प्रवेश किया, तब मंदिर के पुजारी ने उन्हें मूर्ति के करीब जाने से मना किया। लेकिन उन्होंने उस पुजारी की मार-पीट की और झगड़ा भी किया। बात यहां तक बढ़ गई कि पुलिस आई और इन लोगों को पुलिस हिरासत में बंद किया गया।
मंगला ने यह भी लिखा है कि श्री दत्ताबाल मद्यपान ही नहीं करते, मांसाहारी भी हैं। और हिंदू धर्म के अभिमान से इतने भरे हुए हैं कि उनकी इच्छा थी कि स्वयं को विवेकानंद का उत्तराधिकारी सिद्ध करते और हिंदू धर्म की विजय-पताका पृथ्वी पर फहराते। इस हेतु उन्होंने दत्ताबाल मिशन नामक संस्था स्थापित की, लेकिन वहां कोई आता-जाता नहीं! बड़ी ही दयनीय अवस्था हो गई है अब उनकी! पूरे असफल हो गए हैं। अब फिर से अपना नाम प्रकाश में लाने के लिए आपके विवेकानंद के प्रवचन का जैसे उन्हें सहारा मिल गया है। दस-बारह साल से वे आपके प्रति ईर्ष्या से जल रहे हैं। और अब तो वे पूना वालों को भी भड़का रहे हैं। पहलवान होने के कारण वे बुद्धि का जरा भी उपयोग न करते हुए आपके विरोध में बिल्कुल ही बचकानी और मूढ़ता भरी बातें करते हैं। आपकी किसी बात का जवाब सप्रमाण देना उनके लिए असंभव सिद्ध हुआ है। इसलिए अब अपनी असलियत पर उतर आए हैं!
मंगला भारती ने यह भी लिखा है कि भगवान, उन्हीं के बारे में एक घटना याद आ रही हैः दस या बारह साल पहले दत्ताबाल के प्रवचन पूना में हुए थे। सोफा पर बैठ कर वे प्रवचन दे रहे थे। पर शराब के नशे में इस तरह डूबे थे कि उन्हें खुद का भी कोई होश नहीं था। दृश्य बड़ा ही देखने जैसा था! अपनी जगह से वे एक बार बाईं तरफ और एक बार दाईं तरफ इस तरह बार-बार हिल रहे थे, और चंचलता के कारण हिलना भी इतना जल्दी हो रहा था, कि उनके पाजामे की दो नाड़ियां, जो कि नीचे की तरफ लटक रही थीं, वे भी हिल रही थीं! हमें तो बड़ी हंसी आई थी, तब भी और अब भी। क्योंकि जिन्हें खुद का होश नहीं रहता, वे आप जैसे बुद्धपुरुष को होश की बातें समझा रहे हैं! अब तो हद हो गई मूढ़ता की भी!

मनुष्य अक्सर दूसरों में वही देख लेता है, जो भीतर छुपाए होता है। मैंने किसे गांजा, चरस और भांग पीने को कहा है? जरूर डुबाता हूं किसी नशे में, मगर वह नशा इस दुनिया का नशा तो नहीं! मस्ती भी चाहता हूं कि छाए लोगों में, गीत भी उगें, आनंद भी हो, उत्सव भी। मगर वह सब तो आकाश से उतरने वाली मधुवर्षा है। उसके लिए लोगों को तैयार करता हूं। निश्चित ही, यह मधुशाला है। लेकिन मधुशाला उसी अर्थों में, जिस अर्थ में बुद्ध का संघ मधुशाला थी, कृष्ण का सत्संग मधुशाला थी। यहां रिंद ही इकट्ठे हैं! मगर यह शराब बेहोश नहीं करती, होश में लाती है।

आए हैं समझाने लोग।
हैं कितने दीवाने लोग।
दैरो-हरम में चैन जो मिलता,
क्यों जाते मैखाने लोग।
जान के सब कुछ भी न जाने,
हैं कितने अनजाने लोग।
वक्त पे काम नहीं आते हैं,
ये जाने-पहचाने लोग।
अब जब मुझको होश नहीं है,
आए हैं समझाने लोग।
एक ऐसी भी बेहोशी है, जो बेहोशी भी नहीं। एक ऐसी भी मस्ती है, जो अंगूर
की शराब से नहीं मिलती, आत्मा की शराब से मिलती है।
दत्ताबाल को जो भीतर दबा पड़ा है, वह मेरे दर्पण में दिखाई पड़ गया होगा।
और तूने पूछा है वंदना, "कि प्रतीत होता है, वे आपसे व्यक्तिगत रूप से जले-भुने थे।"
स्वभावतः, जिनको किसी भी धर्म की मतांधता है, और जिन्हें यह भ्रांति
है कि वे हिंदू धर्म की पताका सारे जगत में फहराना चाहते हैं, उन्हें मुझसे अड़चन तो हो ही जाएगी।
और फिर इतने दीवानों की यहां जमात, दुनिया के कोने-कोने से आने वाले खोजियों का यह जमघट, यह मेला--न मालूम कितने लोगों की छातियों पर सांप लोट गए हैं! विवेकानंद से क्या लेना-देना है उन्हें।
चार साल, पांच साल पहले मुझसे मिलने के लिए व्यक्तिगत रूप से आना चाहते थे। एकांत में मुझसे मिलना था। मैंने खबर भेजी कि मैं तो एकांत में किसी से मिलता नहीं। जैसे सबसे मिलता हूं, वैसे आपसे मिल सकता हूं। जरूर आ जाएं। मगर विशिष्टता चाहिए, एकांत! उससे उन्हें बड़ी चोट लगी। बहुत भुनभुना गए। तब से उनको अड़चन है।
कौन रोता है किसी और की खातिर ऐ दोस्त!
सबको अपनी ही किसी बात पे रोना आया।
किसको पड़ी है विवेकानंद से?
कौन रोता है किसी और की खातिर ऐ दोस्त!
सबको अपनी ही किसी बात पे रोना आया।
मगर आदमी रोता भी है, तो उसके लिए भी आवरण खोजता है, मुखौटे खोजता है, बहाने खोजता है।
क्या मिलिए ऐसे लोगों से जिनकी फितरत छिपी रहे।
नकली चेहरा सामने आए असली सूरत छिपी रहे।
खुद से भी जो खुद को छिपाए क्या उनसे पहचान करें,
क्या उनके दामन से लिपटें क्या उनका अरमान करें,
जिनकी आधी नीयत उभरे आधी नीयत छिपी रहे।
मुखौटों से भरे हुए लोग! लेकिन धर्म के नाम से यही चलता रहा है, चल रहा है।
और मेरे साथ एक धर्म के पताका फहराने वालों को ही नहीं, सभी धर्मों की पताका फहराने वालों को अड़चन होगी। क्योंकि मेरा किसी धर्म से कोई लगाव नहीं, धार्मिकता से प्रेम है। और मेरे हिसाब में तो जो धार्मिक है, वह

हिंदू नहीं हो सकता, मुसलमान नहीं हो सकता, ईसाई नहीं हो सकता। धार्मिक होना पर्याप्त है। इस पर कोई विशेषण न लगाए जा सकते हैं, न आवश्यक हैं। विशेषण लगाने से तो बात खराब हो जाएगी, बात बिगड़ जाएगी। विशेषण तो सीमा दे देते हैं। विशेषण परिधि बना देते हैं। वह जो मुक्त आकाश की तरह है, उसे एक छोटा सा आंगन कर देते हैं।
यहां मेरे पास सारे धर्मों के लोग इकट्ठे हैं। संभवतः मनुष्य-जाति के इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ। पहली बार एक अभूतपूर्व घटना घट रही है। सारे धर्मों के लोग इकट्ठे हैं। लेकिन उन्होंने अपने विशेषणों को ऐसे हटा कर रख दिया है, जैसे कोई कूड़े-करकट को घर से सुबह साफ करके फेंक देता है। अब तो उनका एक ही धर्म है, ध्यान! अब तो उनका एक ही धर्म है, प्रेम! ध्यान अपने लिए, प्रेम सबके लिए। ध्यान--अंतर्यात्रा; प्रेम--बहिर्यात्रा।
बस, धर्म के ये दो पहलू, ये दो चाक, और धर्म की गाड़ी चल पड़ती है, अनंत यात्रा पर चल पड़ती है। ये दो पंख--प्रेम और ध्यान के--फिर अनंत दूरी भी तय की जा सकती है।
जितनी बातें तूने लिखी हैं, उनमें से एक-एक बात का विचार कर लेना उपयोगी है।
पहली तो बात, विवेकानंद स्वयं समाधि के अनुभव के बिना मरे। उनकी खुद
की डायरी सबूत है। मरने के तीन दिन पहले भी उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है कि मैं अभी तक वह पा नहीं सका जो पाना था, अभी तक वह प्रकाश घटित नहीं हुआ है। रामकृष्ण की बातों को वे दोहराते रहे; और ढंग से दोहराते रहे। पंडित थे। प्रगाढ़ पंडित थे। मेधावी थे। प्रतिभाशाली थे। लेकिन मेधा और प्रतिभा समाधि नहीं है। न पांडित्य प्रज्ञा है।
लेकिन हिंदू धर्म की अकड़ थी। उसी अकड़ के कारण भारत में विवेकानंद को सम्मान मिला। सम्मान मिलने का और कोई कारण न था। इतना ही कारण था कि हिंदू धर्म का जो आहत अहंकार था, उसको विवेकानंद ने आक्रामक रूप दिया।
अब उनका यह कहना कि जो व्यक्ति हिंदू धर्म के विपरीत कुछ कहेगा उसे समुद्र में उठा कर फेंक दूंगा, कोई धार्मिक व्यक्ति की बात नहीं। यह तो अधार्मिक चित्त की बात है। अगर हिंदू धर्म के समर्थन में कुछ कहने की स्वतंत्रता है, तो हिंदू धर्म के विरोध में भी कहने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। अन्यथा सत्य की शोध कैसे होगी?
हिंदुओं में सिर्फ दो ही मुसलमान हुए, एक दयानंद और एक विवेकानंद! इन दोनों की बुद्धि मुसलमान की थी। इन दोनों में न सहिष्णुता है, न उदारता है। दत्ताबाल ने स्वयं उल्लेख किया है। और इसलिए वे मेरी तुलना विवेकानंद से नहीं कर सकते। मैं भी नहीं करना चाहता। वे करने को राजी भी हों, तो मैं इनकार करूंगा।
दत्ताबाल ने लिखा है कि कहां विवेकानंद, जिन्होंने कहा कि जो हिंदू धर्म का विरोध करेगा उसको समुद्र में उठा कर फेंक दूंगा! और कहां आचार्य रजनीश, नर्म गद्दों पर सोने वाले!
मैं दोनों में कुछ संबंध नहीं देख पाया! और नर्म गद्दे पर सोने में ऐसा कौन सा अधर्म है? हां, किसी को समुद्र में फेंकना जरूर अधर्म की बात है। और स्वयं भगवान विष्णु क्षीर-सागर में विश्राम कर रहे हैं! और नरम गद्दा कहां से खोजोगे?
अब मेरे पास बहुत लोग थे; योग्य लोग थे; लेकिन मैंने कहा कि लक्ष्मी,
तू ही सम्हाल ले सचिव का पद! उसने कहा, क्यों? मैंने कहा कि तू लक्ष्मी है। मुझे तो क्षीर-सागर में विश्राम करना है। ऐसे तो मेरे पास बहुत योग्य लोग थे। लक्ष्मी को बेचारी को कुछ पता ही क्या था इस दुनिया के काम-धंधे का! लेकिन मैंने कहा, यही ठीक रहेगा। इससे पुरानी कथा भी फिर जी उठेगी!
यह तो पुराना ढंग है। क्षीर-सागर में विश्राम करने में तो कोई अड़चन नहीं। लेकिन किसी को क्षीर-सागर में उठा कर फेंक देने की बात तो सुनी नहीं! नहीं; तुलना मेरी उनके साथ हो ही नहीं सकती।
दत्ताबाल ने उल्लेख किया है--और इस तरह की बहुत कहानियों का हिंदुओं
के मन पर खूब असर पड़ा--कि विवेकानंद प्रथम श्रेणी में यात्रा कर रहे हैं। दो अंग्रेज उनके दोनों तरफ बैठे हैं। एक अंग्रेज कहता है कि मेरे बगल में एक सूअर का बच्चा बैठा हुआ है! दूसरा अंग्रेज कहता है कि मेरे बगल में भी

एक गधा बैठा हुआ है! और विवेकानंद कहते हैं कि मैं दोनों के बीच में बैठा हुआ हूं।
हिंदुओं को यह बात बहुत जंची। मगर मैं पूछता हूं कि गधे के बीच और सूअर के बच्चे के बीच विवेकानंद बैठ कर क्या उपनिषद साध रहे थे? अरे, उठ कर खड़े हो जाना था। ऐसे सत्संग में बैठना चाहिए क्या? मगर हिंदू अहंकार को सुख मिला।
और सवाल यह उठता है... । मैं अगर प्रथम श्रेणी में चलूं तो चल सकता हूं, मुझे चलना ही चाहिए। क्योंकि मैं वही कहता हूं जो करता हूं, और वही करता हूं जो कहता हूं। मैं ऐश्वर्य-विरोधी नहीं हूं। और विवेकानंद तो अपना आश्रम बेचने को तैयार थे अकालग्रस्त, दीन-दरिद्रों की सेवा में। प्रथम श्रेणी में यात्रा करके क्या कर रहे थे? इनको तो तृतीय श्रेणी में चलना चाहिए! यह तो पाखंड हो गया। मैं तो प्रथम श्रेणी में चल सकता हूं, कोई इसको पाखंड नहीं कह सकता। मैं तो तृतीय श्रेणी में चलूं, तो पाखंड हो जाएगा! क्योंकि मेरे सिद्धांत के विपरीत; कहता कुछ, करता कुछ! मैं तो वही करता हूं जो कहता हूं। विवेकानंद प्रथम श्रेणी में क्या कर रहे थे?
और अगर ये दोनों आदमी मूढ़ थे, तो विवेकानंद ने कुछ ज्यादा बुद्धिमत्ता जाहिर नहीं की। उन मूढ़ों के साथ खुद भी मूढ़ता ही प्रकट की! और जब देख लिया कि एक तरफ गधा बैठा है, एक तरफ सूअर का बच्चा बैठा है, तो उठ कर खड़े हो जाना था, कि भई ऐसे सत्संग में मैं कहां तक बैठूं!
मगर नहीं, हिंदू अहंकार को इस तरह की कहानियों से खूब रस मिला।
दत्ताबाल कहते हैं कि विवेकानंद ने पहल की थी कि मैं अकालग्रस्त लोगों के लिए अपने आश्रम को बेचने को तैयार हूं।
पूछता मैं यह हूं कि बेचा? पहल की थी; कहा था। सवाल है, बेचा? क्या कहने
से अकाल मिट गया था? और फिर सवाल यह है कि विवेकानंद का रहा होगा आश्रम। अपनी चीज हो तो बेच सकते हो। मुझसे पूछ रहे हैं कि क्या मैं भी यही कर सकता हूं? मेरा तो कोई आश्रम है नहीं! मैं तो यहां मेहमान हूं। न तो इस आश्रम में मैं ट्रस्टी हूं। न इस आश्रम के किसी पद पर हूं। मुझे छोड़ कर इस आश्रम में सभी का कुछ न कुछ हक है! मेरा कोई भी हक नहीं है। मेरी कोई कानूनी हैसियत नहीं है।
मुझे अगर इस आश्रम के ट्रस्टी--फलीभाई, लक्ष्मी, लहरू--कहें कि अब आप जाइए! तो मैं संत से कहूंगा कि संत चलो! संत को तो मुझे ले जाना पड़ेगा, क्योंकि दो तंदूर की रोटी बना देगा, छोले की सब्जी, लस्सी का गिलास; बस काफी है!
मुझसे तो जिस दिन कह दें, उसी दिन मुझे बाहर हो जाना पड़े, क्योंकि मेरा यहां कोई अधिकार ही नहीं! मैं इस आश्रम को बेचने की बात तो कैसे करूं? अपना हो, तो कोई बेच सकता है; मेरा तो यहां कुछ भी नहीं है। और इसलिए तो मजा है। अपना कुछ इसमें है नहीं, इसलिए चिंता कुछ है नहीं! रहे तो ठीक; जाए तो ठीक। मैं पूरे आश्रम में भी कभी घूमा नहीं हूं। जो घंटे भर के लिए भी आश्रम में आता है, वह भी पूरा आश्रम देख लेता है। मुझे तो सात साल हो गए, मैंने पूरा आश्रम देखा नहीं! पूरे आश्रम की बात छोड़ो, मैंने लाओत्सु, जहां मैं रहता हूं, उस भवन के भी सारे कमरों में नहीं गया हूं! सिर्फ अपने कमरे को छोड़ कर कहीं नहीं गया हूं।
यूं लोगों को देख कर लगता होगा कि राल्स में चलता हूं! औरों की तो बात छोड़ो, अभी एक मित्र कृष्णमूर्ति को मिल कर आए, तो कृष्णमूर्ति तक को यह बात कहनी पड़ी। कृष्णमूर्ति से मुझे आशा नहीं थी! दत्ताबाल वगैरह की मैं कोई गिनती नहीं करता। मगर कृष्णमूर्ति ने भी यह कहा कि आप भी जाते हैं उस खतरनाक आदमी के पास जिसने कि भारत में सबसे ज्यादा मंहगी कार रख छोड़ी है? वह कार मेरी है नहीं भइया! कार में बैठ गए, तो तुम्हारी हो गई क्या? अब
आज छोटा सिद्धार्थ मेरे साथ बैठ कर आ गया, तो कोई सिद्धार्थ की हो गई? कार शीला की है। मैं तो सिर्फ मेहमान हूं। और यह तो सिर्फ भारत में सबसे कीमती कार है। अभी शीला गई है अमरीका कि दुनिया में सबसे ज्यादा कीमती कार ले आए! अब मैं क्या करूं! मेरी कार हो, तो बेच दूं। मगर मेरी कार है नहीं; न मेरा मकान है, न मेरा आश्रम है। विवेकानंद का रहा होगा। तो उन्होंने पहल

की कि बेच दूं। हालांकि बेचा-किया नहीं! यही तो मजा है। इस देश में लोग बातों के धनी हैं!
मेरा कुछ भी नहीं है, बेचने का सवाल ही नहीं उठता। न बेचने का सवाल उठता है, न खरीदने का। क्योंकि खरीदने के लिए भी मेरे पास कुछ नहीं है। और इसलिए मुझसे ज्यादा मस्त आदमी इस दुनिया में दूसरा नहीं। कोई आए, कोई जाए, सब बराबर है। न मेरा कुछ जाता, न मेरा कुछ आता!
लेकिन ये प्रश्न सोच लेने जैसे हैं।
पहला। यह प्रश्न बहुतों के मन में उठता है और विचारणीय है।
वंदना! श्री दत्ताबाल ने कहा, "आचार्य रजनीश स्वघोषित भगवान हैं!"
यह आलोचना बहुत तरफ से उठती है। सवाल यह है कि कभी कोई और तरह का भगवान
भी दुनिया में हुआ है? क्या तुम सोचते हो, कृष्ण को किसी म्युनिसिपल कमेटी ने भगवान घोषित किया था? कि बुद्ध को किसी पंचायत ने सर्टिफिकेट दिया था? क्या जीसस को यहूदी धर्मगुरुओं ने प्रमाणित किया था? क्या महावीर को जनता ने वोट देकर भगवान चुना था? ये सब स्वघोषित थे। मेरा कसूर क्या है? इसके सिवाय कोई उपाय ही नहीं है। स्वघोषणा के सिवाय और कोई उपाय नहीं है। भगवान होने की घोषणा तो स्वानुभव है।
लेकिन यह आलोचना बार-बार उठती है। और जो लोग यह आलोचना करते हैं, वे कभी भी यह विचार नहीं करते कि जीसस, मोहम्मद, जरथुस्त्र, कृष्ण, राम, बुद्ध, महावीर--कौन स्वघोषित नहीं था? कौन था जिसके पास सर्टिफिकेट हो? और इन सबको भगवान मानने वाले मुझ पर आलोचना उठाते हैं कि मैं स्वघोषित भगवान हूं!
यह अनुभव ही ऐसा है कि सिवाय स्वघोषणा के और क्या होगा? क्या अज्ञानियों से वोट लेकर तय करना पड़ेगा? तब तो फिर जैसे कि राष्ट्रपति खड़े होते हैं, वैसे खड़े हो गए दस-पंद्रह भगवान! चुनाव हो गया। जो जीत गया, वह जीत गया। जो हार गया, वह हार गया! तो कभी कार्टर हो गए भगवान! कभी रीगन हो गए भगवान! जो जीत जाए! साल, दो साल रहे; फिर हार गए तो फिर खतम!
यह तो अनुभव की बात है। मैं घोषणा करता हूं कि मैं भगवान हूं, क्योंकि इसके अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं है। बुद्ध को जब परम समाधि मिली, तो उन्होंने जो पहली घोषणा की, वह यही थी कि मैंने परम सत्य को पा लिया है। मैंने परम संबोधि पा ली है। मैं उस अवस्था को पा गया, जिसको सम्यक संबुद्धत्व कहा जाता है। मैंने अपने सारे शत्रुओं का विनाश कर दिया--भीतर के शत्रुओं का। मैं अरिहंत हुआ। जीसस ने घोषणा की कि मैं और परमात्मा जिसने जगत बनाया, एक हैं। यही तो कसूर था; इसीलिए तो सूली लगी। क्योंकि लोग यही पूछ रहे थे उनसे भी कि आप ही घोषणा कर रहे हैं!
मगर अगर मेरे सिर में दर्द हो, तो कौन घोषणा करेगा कि मेरे सिर में दर्द है? मैं ही कहूंगा कि मेरे सिर में दर्द है। और मेरा दर्द ठीक हो जाए, तो भी मुझे ही कहना होगा कि मेरा दर्द ठीक हो गया! कौन घोषणा कर सकता है इस बात की? अगर मेरे भीतर अंधेरा है, तो मैं जानता हूं; और अगर रोशनी है, तो मैं जानता हूं। और जो खुद अंधे हैं, वे क्या देखेंगे कि मेरी आंखें खुल गई हैं!
भगवत्ता का अनुभव तो स्वघोषित ही हो सकता है। उपनिषद में जिस ऋषि ने कहा, अहं ब्रह्मास्मि! उसने किसके आधार पर कहा कि मैं ब्रह्म हूं? और अलहिल्लाज मंसूर ने घोषणा की, अनलहक! मैं परमात्मा हूं! वह किसके आधार पर? स्वानुभव के आधार पर! और कोई आधार न कभी था, न कभी होगा। यह कोई चुनाव की बात तो नहीं! यह किसी समिति के द्वारा निर्णीत तो नहीं होना है!
इसलिए मैं स्वीकार करता हूं कि मैं स्वघोषित भगवान हूं, क्योंकि जो
भी भगवत्ता को उपलब्ध हुए हैं, सभी स्वघोषित हैं। इनकार करना हो, सब को कर दो। लेकिन यह बेईमानी मत करो कि मुझ पर एक अलग नियम लगाओ और बाकी सब पर एक अलग नियम लगाओ।
दूसरा उन्होंने कहा, "आचार्य रजनीश अज्ञानी हैं।"
यह बात सच है! इसे मैं स्वीकार करता हूं। मैं अज्ञानी हूं; क्योंकि मैं तो उपनिषद के इस सूत्र को मानता हूं कि ज्ञानी महा अंधकार में भटक जाते हैं।

सुकरात ने तो कम से कम इतना कहा कि मैं इतना ही जानता हूं कि मैं कुछ
भी नहीं जानता। मगर इतना तो कहा कि मैं इतना ही जानता हूं। मैं मानता हूं कि इतनी ही कमी रह गई। मैं तुमसे कहता हूं, मैं इतना भी नहीं जानता कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। परम अज्ञानी हूं; महा अज्ञानी हूं। छोटा-मोटा काम ही मैं नहीं करता! जब काम ही करना हो, तो बड़ा। अज्ञान भी क्या! महा अज्ञान। मुझे कुछ भी नहीं मालूम। कबीरदास ने तो कहा कि मसि कागद छुओ नहीं। उन्होंने तो छुआ भी नहीं था। मैंने छुआ जरूर, लेकिन फिर भी तुमसे कहता हूं कि मसि कागद छुओ नहीं! अरे नहीं छुआ, यह कोई बड़ी बात हुई? छूकर और नहीं छुआ, यह कुछ बात हुई! चले पानी में और भीगे भी नहीं, यह कुछ बात हुई! कबीरदास तो चले ही नहीं, किनारे पर ही बैठे रहे। कहा भी है उन्होंने कि--
जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी खोजन गई, रही किनारे बैठ।।
तुम किनारे बैठोगे महाराज, तो फिर कैसे खोजोगे? मैंने डुबकी भी मारी,
और गीला भी नहीं हुआ। तो कहता हूं कि मसि कागद छुओ नहीं। बिल्कुल अज्ञानी हूं।
मगर परमात्मा को जानने में अज्ञान बाधा ही कब रहा? बाधा खड़ी होती है ज्ञान से।
कबीर कहते हैंः लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात।
लिखा-लिखी की नहीं है। इसलिए ज्ञान क्या करेगा? देखा-देखी बात। देखने
की बात है।
तो यह तो मैं स्वीकार करता हूं कि मैं अज्ञानी हूं। और अज्ञान में ही मैंने जाना भगवत्ता को। अज्ञान का अर्थ है, मैंने सारे ज्ञान को इनकार कर दिया। सारे ज्ञान को झाड़ कर अलग कर दिया। और जब सारे ज्ञान से छुटकारा हो गया, तो जो शेष बच रहता है, वही भगवत्ता है, वही दिव्यता है।
उन्होंने कहा कि "आचार्य रजनीश का व्यक्तित्व अत्यंत महत्वहीन है।"
यह भी सच है। पहली तो बात, मेरा कोई व्यक्तित्व ही नहीं। व्यक्तित्व
तो झूठी चीज है। वह तो जिनके पास आत्मा नहीं है, उनको ओढ़ना पड़ता है व्यक्तित्व। जिनके पास आत्मा है, उनको व्यक्तित्व की जरूरत क्या? और महत्वहीन, यह भी सच है। महत्ता की आकांक्षा ही दीन लोगों को होती है। पश्चिम के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक एडलर ने कहा है, महत्वाकांक्षी वे
ही लोग होते हैं, जो हीन-ग्रंथि से पीड़ित होते हैं। यह दुनिया में पताका फहराने की आकांक्षा, हीनता की ग्रंथि है। झंडा ऊंचा रहे हमारा! ये बचकानी बुद्धि के लक्षण हैं। फिर झंडा किस बात का है, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। बस, ऊंचा रहना चाहिए! क्योंकि भीतर का गड्ढा दिखाई पड़ता है। झंडे को ऊंचा करके भुलाने की चेष्टा चलती है।
ये दत्ताबाल के जो पैर छोटे हैं और ऊपर का हिस्सा बड़ा है... । अब यह मंगला ने लिखा कि बैठे सोफा पर बोल रहे थे और पाजामे का नाड़ा लटका और डोल रहा था! वह पाजामा था मंगला? पाजामे की उनको जरूरत है? अरे, जरा लंबा जांघिया रहा होगा! पैर भी तो होना चाहिए पाजामे के लिए!
लेनिन का मनोविश्लेषण जिन लोगों ने किया है, उनकी भी बीमारी यही थी लेनिन की, कि पैर छोटे थे। वे कुर्सी भी ऐसी बनवाते थे, जो बड़ी होती। उनके पैर जमीन से नहीं लगते थे। और टेबल ऐसी बनवाते कि पैर छिपे रहते। अपने पैरों को बचा कर चलते थे। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि लेनिन को बस एक ही धुन थी कि किसी तरह सिद्ध कर दें कि महत्वपूर्ण व्यक्ति हूं मैं। क्योंकि वह जो पैरों की दीनता थी छोटे होने की, वह बड़ा कष्ट दे रही थी।
अडोल्फ हिटलर का जिन लोगों ने मनोविश्लेषण किया है, उनका कहना है कि उसका एक अंडकोष छोटा था, एक बड़ा। उस कारण ही वह परेशान था! वही उसकी जिंदगी भर की पीड़ा थी। उसे सिद्ध करना था दुनिया में कि मैं कुछ हूं।
यह दत्ताबाल को भी कुछ हीन-ग्रंथि पकड़ी हुई है! उसी हीनता की ग्रंथि
से पीड़ित हैं।
बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति तो साधारण होता है, उसका कोई व्यक्तित्व होता ही नहीं। वह तो अति सामान्य हो जाता है, सहज हो जाता है, साधारण हो जाता है। भूख लगी, भोजन कर लिया; नींद आई, सो गए। सुबह हुई, उठे; सांझ हुई,

सोए। उसका जीवन तो सहज, स्वस्फूर्त हो जाता है। उसमें क्या असाधारणता? क्या विशिष्टता?
यह विशिष्टता का मोह और असाधारण होने की आकांक्षा अहंकार के ही अलग-अलग नाम हैं, और कुछ भी नहीं।
और उन्होंने कहा कि "आचार्य रजनीश ने हिंदू देवी-देवताओं को कामी और भोगी कह कर हिंदू धर्म का अपमान किया है।"
मैं क्या करूं? तुम्हारे पुराण अपमान कर रहे हैं। अपने पुराण उठा कर देख लो। तुम्हारे सारे पुराण तुम्हारे देवी-देवताओं की कामवासना, लिप्सा, भोग, इससे भरे पड़े हैं। तुम्हारे देवताओं का जो प्रमुख देवता है इंद्र, वह किसी भी ऋषि-मुनि को तपश्चर्या करते देख कर घबड़ा जाता है; उसका सिंहासन डोलने लगता है; इंद्रासन डोलने लगता है! घबड़ाहट पैदा हो जाती है उसको कि अब आया कोई दावेदार! तत्क्षण भेजता है उर्वशी-मेनकाओं को, कि जाओ भ्रष्ट करो इसे! और खुद भी भ्रष्ट करने में कुछ पीछे नहीं!
और कैसा मजा है! कैसे पुराण हैं! और किन बेईमानों ने लिखे हैं! कि इंद्र ने अहिल्या को भ्रष्ट किया, और सजा बेचारी अहिल्या को भुगतनी पड़ी! पत्थर होना पड़ा अहिल्या को, और कसूर था इंद्र का! कुछ न्याय भी होता है! कुछ थोड़ी तो न्याय-बुद्धि हो!
शरद जोशी का एक व्यंग्य मैं कल पढ़ रहा था, वह मुझे पसंद आया। शरद जोशी
ने लिखा है कि मैंने जब पहली बार यह श्लोक सुना कि यत्र नारी पूज्यन्ते, तत्र रमन्ते देवता, तो मेरे मन में तभी से देवताओं के चरित्र पर शक होने लगा है। क्योंकि मैं सोचता हूं, अगर किसी इलाके में नारी की पूजा हो रही है, तो उधर देवता लोगों के चक्कर काटने का क्या मतलब? यह तो कोई शराफत की बात न हुई! कि पराई बहू-बेटियां जहां उनके बाप-भाई और पतियों के खर्च पर आनंद कर रही हैं, जैसे बाग में झूला झूल रही हैं, या शापिंग कर रही हैं, या टी.वी. देख रही हैं। अपने रूप-सौंदर्य-स्वास्थ्य आदि गुणों के कारण घर और बाहर उनका रौब छाया हुआ है... । पता नहीं, कितने लोग उनमें से कितनी लड़कियों को पाने की साधना में गजलें गा रहे हैं! कविता छपाने की कोशिश में हैं! अर्थात बड़ा पूजामय वातावरण है!
सुंदर लड़कियां पुरुषों के सपनों में आ-जा रही हैं। स्वस्थ पुरुष शरीफ घरों की खिड़कियों के पास से लड़कियों के दर्शनों की अभिलाषा में गुजर रहे हैं। अर्थात बिल्कुल नारी पूज्यन्ते का वातावरण है।
संपादकगण अपने मुखपृष्ठों पर नारी की अधखुली तस्वीर छाप कर अभिभूत हैं! लेकिन भारतीय छपाई है! खराब होने के कारण महात्मागण बहुत दुखी हैं! क्योंकि तस्वीरें साफ-साफ समझ में नहीं आतीं। सो महात्मागण शिकायत कर रहे हैं कि नारी का अनादर हो रहा है!
पति अपनी पत्नियों की आरतियां उतार रहे हैं। उतारनी ही पड़ती है! हर पति को उतारनी पड़ती है!
ऐसे दिव्य माहौल में देवता क्या लेने को रमन्ते हैं? बंबइया भाषा का उपयोग किया हैः कायकू रमन्ते? किसके वास्ते रमन्ते? बिना रमन्ते काम नहीं चलता क्या? घर में मां-बहनें नहीं हैं जो इधर-उधर रमन्ते? जब देखो तभी रमन्ते! रमन्ते ही रमन्ते! और कुछ नहीं करन्ते! इंसान शांति से अपनी पत्नी की पूजा भी नहीं कर सकता? यों ही रमन्ते! हर कहीं रमन्ते! ये देवता हैं कि कालेज के लफंगे छोकरे हैं? इससे तो बेहतर हो कि सूत्र को बदल लो। यत्र नारी बलात्कारस्ते, रमन्ते तत्र देवता! जहां नारी पर बलात्कार हो रहा हो, वहां रमो भैया!
जहां नारी की पूजा हो रही है, जैसे हेमा मालिनी की पूजा हो रही है, वहीं-वहीं देवता रमन्ते! कायकू रमन्ते? इन्हें और कोई काम नहीं? कोई घर-गृहस्थी नहीं? बंबई-बंबई में ही रमन्ते! तभी तो, कायकू रमन्ते? रमन्ते ही रमन्ते!
मैं क्या करूं? तुम्हारे पुराणों में सारी कथा यह है। मेरा कोई कसूर नहीं। मैंने तुम्हारे पुराण नहीं लिखे। ऐसी भूल मैं कभी करूंगा भी नहीं। ऐसा कचरा मैं कभी लिखूंगा भी नहीं। अगर तुम्हें अपने पुराणों के कारण हिंदू धर्म का अपमान होता दिखाई पड़ता है, पुराणों को होली में चढ़ा दो।

श्री दत्ताबाल ने कहा कि "श्री रामकृष्ण परमहंस ने कहा था कि अगले जन्म में मैं एक हरिजन की कुटिया की सफाई करूंगा। क्या आचार्य रजनीश भी ऐसा कह सकते हैं?"
मुझे पता नहीं कि श्री रामकृष्ण ने ऐसा कहा था या नहीं। लेकिन दत्ताबाल कहते हैं, तो माने लेता हूं कि कहा होगा, जरूर कहा होगा!
अब सवाल यह है, क्या इस जन्म में रामकृष्ण को कोई हरिजन नहीं मिल रहा था, जो अगले जन्म में... ! हरिजनों की कोई कमी है? कोई हरिजनों की कुटियाओं की कमी है? इस जन्म में तो काली मैया की पूजा कर रहे हैं! पत्थर की मूर्ति पूज रहे हैं! आरती उतार रहे हैं; घंटी बजा रहे हैं! जिंदगी भर वही करते रहे। और हरिजन की कुटिया की सफाई अगले जन्म में करेंगे! क्या चालबाजियां हैं! कौन रोकता है अभी करने से? और एक ही कुटिया की सफाई करना है, सो कर ही दो न! अगले जन्म के लिए क्या टाल रहे हो?
छह-छह घंटे, आठ-आठ घंटे काली मैया की पूजा हो रही है! उन्हीं काली मैया की, जिनके लिए बकरे काटे जा रहे हैं! खून बहाया जा रहा है! कलकत्ते की काली के सामने जितना खून बहा है, दुनिया के किसी मंदिर में कभी नहीं बहा। जितनी प्राणियों की हिंसा कलकत्ते की काली के लिए हुई है, उतनी दुनिया के किसी देवता के सामने नहीं हुई। मगर वही कटे हुए बकरों का मांस और खून प्रसाद रूप में वितरित होता है! प्रसाद की तो बड़ी महिमा है!
ये डोंगरे जी महाराज क्या खाक प्रसाद बंटवाते हैं! लस्सी-बूंदी! अरे
यह कोई प्रसाद है? असली प्रसाद बंटता है कलकत्ते की काली के मंदिर में! यह रामकृष्ण परमहंस को कोई शूद्र नहीं मिल रहा था? दूर तो नहीं था शूद्र। क्योंकि जिनके मंदिर में वे पुजारी का काम करते थे, रानी रासमणि, रानी रासमणि खुद ही शूद्र थी! उसका ही बनवाया हुआ मंदिर था। रामकृष्ण परमहंस चौदह रुपए महीने की नौकरी पर वहीं तो पुजारी का काम करते थे। शूद्रों की कोई कमी थी!
सच तो यह है कि विवेकानंद खुद ही शूद्र हैं। कायस्थों की गिनती और कहां करोगे? कायस्थों की गिनती व्यवस्था से शूद्रों में ही होगी। असल में कायस्थ शब्द ही शूद्र का पर्यायवाची है--काया में स्थित! आत्मस्थ हो तो ब्राह्मण और कायस्थ हो तो शूद्र। और क्या चाहिए! सीधा-साफ हिसाब है। रामकृष्ण परमहंस अगले जन्म में सफाई करेंगे! बड़ी गजब की बात कही! जिंदगी भर ये पत्थर की मूर्ति पूजते रहे! तो यहीं कर लेनी थी! एकाध कुटिया साफ कर लेते। इसके लिए अगले जन्म का क्यों उपद्रव लेना!
और वे मुझसे पूछते हैं, "क्या आचार्य रजनीश ऐसा कर सकते हैं?"
पहली तो बात, मैं अपनी कुटिया की सफाई नहीं करता! किसी ब्राह्मण की कुटिया की सफाई नहीं की तो हरिजन की कुटिया की सफाई क्या खाक करूंगा? अरे, अपनी-अपनी कुटिया की सफाई करो!
मैं जब विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था, तो अपना बिस्तर दरवाजे के पास लगाए रखता था कि सीधा अपने बिस्तर में कूद जाता था, जिसमें कमरे की सफाई न करनी पड़े! कौन झंझट करे! अरे रोज सफाई करो, फिर कचरा इकट्ठा। फिर सफाई करो, फिर कचरा इकट्ठा। इधर भीतर की सफाई से फुर्सत नहीं है; बाहर की सफाई में कौन पड़े! और क्या फायदा? क्या मिल जाने वाला है? कचरा थोड़ा कम हुआ कि ज्यादा, कमरा ही है! और कोई अपना है? अरे, आज यहां कल वहां! होस्टल ही तो ठहरा; सरायघर है। तो मैं तो दरवाजे पर, बिल्कुल दरवाजे पर अपने बिस्तर को लगा कर रखता था, कि सीधा दरवाजे से कूद जाना बिस्तर में, और बिस्तर से कूद जाना बाहर। न देखना भीतर, न झंझट में पड़ना।
मगर मेरे प्रोफेसरों को दया आती। मेरे आस-पास के विद्यार्थियों को दया आती। मेरे साथ दो लड़कियां पढ़ती थीं, उनको दया आती। वे मुझसे कहतीं कि हमें आज्ञा दो कि आपका आकर एक दिन कमरा साफ कर दिया करें--सप्ताह में कम से कम एक दिन!
मैंने कहा, क्यों नाहक परेशान करना! तुम साफ करोगी, वह फिर धूल जम जाएगी। और मैं वहां जाता ही नहीं, उस स्थान में, जहां धूल जमी है! फायदा क्या है साफ करने का? मगर फिर भी कोई न कोई आकर साफ करता। तुम्हारी मर्जी! तुम्हें सेवा करके अगर मोक्ष पाना है, पाओ! हम तो अपने बिस्तर पर मोक्ष में हैं!

और अगले जन्म की तो बड़ी मुश्किल है। अगला जन्म मेरा होना नहीं! रामकृष्ण का होना होगा, तो वे करें अगले जन्म में! मेरा तो यह आखिरी जन्म है, दत्ताबाल! अब आगे कोई मेरा जन्म नहीं है। तुम जानो, तुम्हारे रामकृष्ण जानें! उनका होगा आगे जन्म।
यह तो दत्ताबाल, अगर यह बात रामकृष्ण ने कही हो, तो यह सिद्ध कर रहे हैं कि रामकृष्ण अभी मुक्त नहीं हुए। क्योंकि मुक्ति के बाद कहां जन्म है! मुक्ति के बाद कैसा जन्म है! यह तो इसका अर्थ इतना हुआ कि अभी भी बंधे हैं। और यह भी एक वासना ही रही कि एक हरिजन की कुटिया साफ करनी है। अरे, इतनी छोटी सी वासना! कर-करा लेते साफ; झंझट मिट जाती; अगले जन्म का उपद्रव खतम हो जाता। अब होंगे कहीं पैदा; कर रहे होंगे कोई हरिजन की कुटिया साफ!
यह भी क्या पतन हुआ! इसी को कहते हैं योगभ्रष्ट होना! कहां से कहां पहुंचे! काली मैया की पूजा करते-करते अब हरिजन की कुटिया साफ कर रहे हैं! मेरा तो कोई अगला जन्म नहीं है। मेरा तो काम पूरा हो चुका है। अब मुझे लौटना नहीं है। इसलिए कैसे वायदा करूं, दत्ताबाल, कि अगले जन्म में आकर हरिजन की कुटिया साफ करूंगा!
और दूसरी बात यह है कि मैं तो ब्राह्मण और शूद्र का भेद मानता नहीं।
जो मानते हों भेद, वे इन चिंताओं में पड़ें। मेरे लिए तो हरिजन शब्द का उपयोग करना शूद्र के लिए गलत है। हरिजन तो वह जो हरि को जाने।
क्या पागलपन है! बिना ब्रह्म को जाने ब्राह्मण बने बैठे हैं लोग, और बिना हरि को जाने हरिजन बने बैठे हैं लोग! ब्रह्म को जाने सो ब्राह्मण; हरि को जाने सो हरिजन। एक ही मतलब हुआ दोनों बातों का, चाहे हरि कहो, चाहे ब्रह्म कहो। मेरे लिए तो ये सारे लोग ही, जब तक ब्रह्म को नहीं जान लिए हैं, तब तक हरिजन नहीं हैं, ब्राह्मण नहीं हैं, शूद्र ही हैं। और इन्हीं की कुटियाएं तो साफ करने में लगा हूं। लेकिन कुटियाएं मेरे लिए भीतर हैं, बाहर नहीं। बाहर की कुटिया मैं क्या साफ करूं! असली सफाई में लगा हूं। भीतर तुम्हारी आत्मा का स्नान हो जाए--उसको ही मैं ध्यान कहता हूं। भीतर तुम स्वच्छ हो जाओ--उसी को मैं स्वास्थ्य कहता हूं। भीतर तुम आनंदमग्न हो जाओ, उत्सव आ जाए, दीए ही दीए जल जाएं, फूल ही फूल खिल जाएं--तो तुमने जाना, तुमने जीया, तुमने पहचाना। उसको मैं संन्यास कहता हूं। उसी कार्य में लगा हुआ हूं।
अजब जुनूंने-मुसाफत में घर से निकला था,
खबर नहीं है कि सूरज किधर से निकला था।
यह कौन फिर से उन्हें रास्तों पे छोड़ गया,
अभी-अभी तो अजाबे-सफर से निकला था।
ये तीर दिल में मगर बेसबब नहीं उतरा,
कोई तो हर्फ लबे-चारागर से निकला था।
वो कैस अब जिसे मजनू पुकारते हैं "फराज"
तेरी तरह कोई दीवाना घर से निकला था।
मैं तो दीवाना हूं। और मेरे पास दीवाने इकट्ठे हैं।
वो कैस अब जिसे मजनू पुकारते हैं "फराज"
तेरी तरह कोई दीवाना घर से निकला था।
मुझसे तुम हिसाब-किताब की बातें न पूछो। यहां कोई हिसाब-किताब नहीं, कोई गणित नहीं। यहां तो प्रेम एक शास्त्र है, और ध्यान एकमात्र धर्म है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मेरा प्रश्न भी वही है, जो कि श्री निर्मल घोष का था। आदेश दें कि मैं क्या करूं कि इस देश की दीन-हीनता, भुखमरी, पाखंड, काहिलता, और सड़ांध मिट जाए!

दयानंद!
यह सब हो सकता है। लेकिन हजार-हजार बाधाएं हैं। और बाधाएं गलत लोगों
की तरफ से नहीं हैं। बाधाएं उन लोगों की तरफ से हैं, जिन्हें तुम भला समझते हो, साधु समझते हो, संत समझते हो, महात्मा समझते हो। बाधाएं उनकी तरफ से हैं, जो तुम्हारे पंडित हैं, तुम्हारे पुरोहित हैं, तुम्हारे इमाम हैं,

तुम्हारे पादरी हैं। बाधाएं उनकी तरफ से हैं, जो तुम्हारे नीति के निर्धारक हैं, तुम्हारे नेता हैं।
इसलिए बड़ी कठिन बात है। क्योंकि उन्होंने ही तो तुम्हारे मन को रचा है। उन्होंने ही तुम्हारे अंतःकरण पर छाप छोड़ी है। वे बाहर भी खड़े हैं; उनके हाथ में बाहर भी बंदूक है। और वे तुम्हारे भीतर भी अंतःकरण बन कर खड़े हैं। उन्होंने तुम्हें दोनों तरफ से कसा है। बाहर से जंजीरें पहनाई हैं; भीतर से जंजीरें पहनाई हैं।
मगर फिर भी क्रांति घट सकती है; घटनी चाहिए। समय आ गया है कि घटे।
फेंक दो--
अपनी पुरानी कल्पनाओं के कफन,
हे कवि!
ग्रहण से पहले नया सूरज उगाना है
तुम्हें अब।
हो चुका है प्यार काफी दीप से भी, शलभ से भी,
तारिकाओं से,
गगन से,
चांद से,
चंचल कमल से,
विरह डूबी प्रिया का अब,
राजरथ आए न आए।
कली की अभ्यर्थना,
सहकार को भाए न भाए।
जीर्ण चिथड़ों से बुने उपमान मैले,
अब सहेजो।
अश्रु डूबी यक्ष-पाती मेघमाला में,
न भेजो।
लो नए परिधान, नूतन स्वर, नए त्यौहार लाओ, लो नया चश्मा, नया आलोक देखो,
अब नया संधान, नूतन लक्ष्य देखो।
फेंक दो--
अपनी पुरानी कल्पनाओं के कफन,
हे कवि!
ग्रहण से पहले नया सूरज उगाना है,
तुम्हें अब।

फेंकना होगा कफन जो हम ओढ़े बैठे हैं। लेकिन हम तो समझते हैं, वह चुनरी है! हम तो समझते हैं, वह बड़ा बहुमूल्य है, कफन नहीं।
इसलिए पहली बात तो यह समझना जरूरी है कि भारत इतना दीन-हीन क्यों है? क्या कारण है? किसका हाथ है? कौन से दुर्भाग्य ने इसे ग्रसा? इसकी छाती पर कौन से चट्टान रखे हैं कि यह दबा जा रहा है, मरा जा रहा है? किसने बनाया इसे भूखा, पाखंडी, काहिल? किसने इसके जीवन में सड़ांध भर दी है?
पहले तो मूल कारण खोजने पड़ें, दयानंद! और मूल कारण बड़े गहरे हैं, सदियों पुराने हैं। जब तक इस देश में कर्मवाद की गलत व्याख्या प्रचलित रहेगी, दीनता-हीनता मिट नहीं सकती। क्योंकि तुमने दीनता-हीनता को सांत्वना के बड़े सुंदर वस्त्रों में ढांक रखा है।
सदियों से तुमने यह समझाया है लोगों को कि तुम गरीब हो इसलिए कि तुमने पिछले जन्म में पाप किए थे! तुम अमीर हो इसलिए कि तुमने पिछले जन्म में पुण्य किए थे! चाहे शास्त्र हिंदुओं के हों, चाहे जैनों के, चाहे बौद्धों के, इस बात पर राजी हैं--तीनों धर्मों के शास्त्र इस बात पर राजी हैं--कि महावीर राजा के घर में पैदा हुए, हजारों हाथी, हजारों घोड़े, रथ! क्यों? क्योंकि पिछले जन्म में उन्होंने बहुत पुण्य कर्म किए थे। बुद्ध राजा के घर में पैदा हुए, पिछले जन्मों के पुण्यों का फल! कृष्ण, राम, सब राजाओं के बेटे! एक तीर्थंकर गरीब घर में पैदा न हुआ! एक अवतार गरीब घर में पैदा न

हुआ! एक बुद्ध गरीब घर में पैदा न हुआ! हो कैसे सकता है? गरीब हो तो उसका मतलब ही साफ है कि अतीत में तुमने बहुत दुष्कर्म किए हैं! पाप-कर्म किए हैं! बुद्धत्व को पाओगे कैसे? तीर्थंकर होओगे कैसे?
यह बात भयंकर है। यह जहर है, जिसने भारत की आत्मा को नष्ट किया, सड़ांध
से भर दिया। मेरे हिसाब में कर्म का सिद्धांत गलत नहीं है, मगर उस सिद्धांत की जो व्याख्या की गई वह गलत है। मेरे हिसाब में कर्म का सिद्धांत तो वैज्ञानिक हैः आग में हाथ डालोगे, तो हाथ जलेगा। लेकिन अभी! अगले जन्म में नहीं। यह अगले जन्म की बात बेईमानी से भरी हुई है। हाथ अभी डालोगे, और जलेगा अगले जन्म में? किसी की गर्दन अभी काटोगे, और कटेगी अगले जन्म में?
कर्म और उसका फल संयुक्त है। जैसे हर सिक्के के दो पहलू, ऐसे कर्म और
फल एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इधर कर्म, इधर फल। यहां देर नहीं है। तुमने कहावत सुनी है कि परमात्मा के घर में देर है, अंधेर नहीं। वह कहावत बेईमानों ने गढ़ी होगी। मैं तुमसे कहता हूं, न देर है, न अंधेर है। प्रकृति के नियम में, परमात्मा के नियम में कैसी देर और कैसी अंधेर! अगर देर हो गई, तो वही तो अंधेर है। और फिर अगर थोड़ी देर हुई, तो ज्यादा हो सकती है। फिर देर को लंबाया जा सकता है। फिर फाइल पड़ी रहे जन्मों-जन्मों तक! फिर पूजा- पत्री तुम करते ही रहो, सत्यनारायण की कथा करवाते रहो, यज्ञ-हवन करवाते रहो, फाइल पड़ी रहेगी! अंधेर फिर तो होता चला जाएगा।
नहीं, देर ही नहीं है। तुम जब क्रोध करते हो, तब क्रोध के साथ ही तुम्हारे भीतर जो जहर फैलता है, जो आग जलती है, वह उसका फल है। अगले जन्म में नहीं, बात यहीं है, नगद है।
मेरे लिए धर्म नगद है और तुम्हें समझाया गया है कि धर्म उधार है! तुम अगर अभी प्रेम करोगे, तो अभी तुम्हारे जीवन का फूल खिलेगा। तुम अगर अभी बांसुरी बजाओगे, तो अभी बांसुरी बजेगी, अभी गीत जागेगा। तुम अभी गाली दोगे, तो अभी गाली खाओगे। अभी प्रेम बांटोगे, तो अभी प्रेम पाओगे।
मैं चाहता हूं कि कर्म का सिद्धांत इस वैज्ञानिक व्यवस्था को समझ ले।
हम जो करते हैं, वह अभी हमें मिल जाता है, इसी क्षण। कल की कोई बात नहीं। लेकिन कल की बात क्यों ईजाद करनी पड़ी? कल की बात पंडित-पुरोहितों ने इसलिए ईजाद की कि वे समझाने में असमर्थ हुए बहुत सी बातें। जैसे कि बेईमानों को उन्होंने देखा धन कमा रहे हैं, और ईमानदारों को देखा कि भूखों मर रहे हैं। बस, उनको मुश्किल खड़ी हुई। अब क्या करें? अब कैसे इस बात को लीपापोती करें? क्योंकि बेईमान छाती पर चढ़े बैठे हैं। दादागिरी कर रहे हैं। और ईमानदार सड़ रहे हैं। उनकी छाती पर ये ही दादा चढ़े बैठे हैं! तो अब किस तरह समझाएं?
एक ही उपाय था कि पिछले जन्म पर बात को टाल दें। कि ये जो तुम्हारी छाती पर चढ़े बैठे हैं, इनके पास धन है, पद है, प्रतिष्ठा है, यह इस जन्म की बुराइयों के कारण नहीं है। यह पिछले जन्म की भलाइयों के कारण है। इस जन्म की बुराइयों का फल तो ये अगले जन्म में भोगेंगे! और तुम जो छाती कुचली जा रही है तुम्हारी, यह तुम्हारे इस जन्म की ईमानदारी का परिणाम नहीं है, पिछले जन्मों में की गई बेईमानियों का फल है। इसका पुण्य-फल तो तुम्हें अगले जन्म में मिलेगा।
इससे तरकीब मिल गई। इससे इस समाज की व्यवस्था को, जैसी है वैसा का वैसा बनाए रखने के लिए तर्क का सहारा मिल गया। यह पूंजीपतियों की ईजाद है। यह न्यस्त स्वार्थों की ईजाद है।
इस देश से दीनता मिट सकती है। कोई कारण नहीं है। अगर अमरीका से मिट सकती है, तो भारत से क्यों नहीं मिट सकती? भारत की भूमि कोई कम उर्वरा नहीं है। भारत के पास सब है। लेकिन सिर्फ भारत की बुद्धि को विकृत कर दिया गया है, विक्षिप्त कर दिया गया है। इस विक्षिप्तता से हम छूट जाएं, तो आज दीनता-हीनता बदल सकती है।
तो पहला तो काम यह करो दयानंद, कि कर्म के सिद्धांत का जो गलत रूपांतरण तुम्हारे प्राणों में समाविष्ट हो गया है, उसे निकाल फेंको। भाग्यवाद बैठ गया है सिर पर! कि हम क्या कर सकते हैं, विधाता ने लिख दिया है!

विधाता ने कुछ भी नहीं लिखा है। तुम जब आते हो, कोरे कागज की तरह आते हो। फिर तुम अपना भाग्य खुद ही लिखते हो। किसी और ने नहीं लिखा है।
लेकिन हमारे मन में यह धारणा बिठाई गई है कि भगवान लिख देता है किस्मत। लिख दिया जिसके जीवन में गरीबी, वह गरीब रहेगा; और लिख दी अमीरी, वह अमीर रहेगा।
बिल्कुल झूठी बात है। बिल्कुल व्यर्थ बात है। यह पोषण है व्यवस्था के लिए। जो न्यस्त स्वार्थों की व्यवस्था है, उसको सहारा देना है। भाग्यवाद उसके लिए सबसे बड़ी सुरक्षा है।
इसलिए भारत में कभी कोई क्रांति नहीं हो सकी। क्योंकि क्रांति के लिए बुनियादी आधार नहीं मिलते। यह भाग्यवाद हमारी क्रांति को बुझा देता है। भाग्य नहीं है। भाग्य हम निर्मित करते हैं।
तुम्हें नैतिकता की अस्वाभाविक धारणाएं समझाई गई हैं, इसलिए पाखंड है। पाखंड का अर्थ क्या होता है? तुमसे अगर कुछ अस्वाभाविक करने को कहा जाए, तो पाखंड होगा ही। पाखंड का इतना ही मतलब होता है कि तुम प्रकृति के अनुकूल नहीं, बल्कि प्रतिकूल चलने की कोशिश कर रहे हो। चल तो न पाओगे। न चल पाओगे, तो फिर तुम्हें एक इंतजाम करना पड़ेगा, कम से कम दिखाना पड़ेगा कि चल रहे हैं। तब तुम्हारी जिंदगी में दोहरापन हो जाएगा; भीतर कुछ, बाहर कुछ। बाहर एक काम करोगे, भीतर दूसरा काम करोगे। बाहर मंदिर में पूजा करोगे, गीता पढ़ोगे। और भीतर? भीतर सब तरह की वासनाओं के जाल चलते रहेंगे।
इस देश को इसके असंभव मूल्यों से मुक्त कराना जरूरी है, तो पाखंड मिटेगा।
मनुष्य की सहजता को स्वीकार करो। जो भी प्रकृति ने मनुष्य को दिया है, उसका रूपांतरण तो करना है, लेकिन दमन नहीं। और हमें दमन ही सिखाया गया है। तो सब अजीब हो गया है! कुछ का कुछ हो गया है! सब लोग मुखौटे लगाए हुए हैं। किसी आदमी की असली शक्ल पहचान में नहीं आती कि कौन कौन है!
चंदूलाल को उनके मित्र ने लताड़ा। कहा, अरे चंदूलाल! शर्म नहीं आती बुढ़ापे में, बाल सफेद हो गए, दांत गिर गए, और कल शाम एक पतली कमर, टाइट जीन्स और लहरदार लंबे बालों वाली वह कौन सी छोकरी थी जिसके साथ मीठा-मीठा बतियाते चले जा रहे थे?
हिश! छोकरी कैसी! चंदूलाल ने कहा, वह मेरा दामाद था।
मित्र बड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, अरे माफ करना भाई चंदूलाल, भूल हो गई!
और दूसरा छींटदार बुशर्ट वाला लड़का, वह कौन था?
अरे वह? वह मेरी कुन्नी थी, मेरी बेटी!
यहां सब गड़बड़ हो गया है। यहां कुछ पता ही नहीं चलता कि कौन कौन है! कौन कुन्नी है, कौन दामाद है! कौन आदमी है, कौन औरत है! कुछ साफ नहीं है।
यहां साधु असाधुओं में मिल जाएं तो मिल जाएं, साधुओं में नहीं मिलते! साधुओं में तो पाखंडियों का जाल है। सब तरह के बेईमान, सब तरह के चोर, सब तरह के नैतिक रूप से भ्रष्ट लोग! मगर अगर उन्होंने राम-नाम की चदरिया ओढ़ रखी है, तो बस पर्याप्त है!
और जब ये झूठी बातें बहुत प्रचलित की जाएंगी, तो आदमी तो विज्ञापनों
से जीता है, आदमी का मन तो विज्ञापनों से भरा होता है।
अब रोज-रोज पढ़ोगे कि लक्स टायलेट साबुन से सौंदर्य उपलब्ध हो जाता है,
तो सुंदर कौन नहीं होना चाहता! और जो देखो अभिनेत्री वही कह रही हैः लक्स टायलेट साबुन! पढ़ो, तो लक्स टायलेट! फिल्म देखो, तो लक्स टायलेट! रास्ते से गुजरो, तो लक्स टायलेट! तो फिर जो भी सुंदरी दिखाई पड़ती है, उसका चेहरा नहीं दिखाई पड़ता, एकदम लक्स टायलेट साबुन दिखाई पड़ने लगता है! हर सुंदरी की फोटो के साथ लक्स टायलेट साबुन छपा हुआ है। दोनों का संयोग हो जाता है। पावलव ने इस पर बहुत खोज की, संयोग का सिद्धांत। वह अपने कुत्ते को खाना खिलाता और घंटी बजाता। खाना जब सामने रखता, तो कुत्ते की लार टपकती, जो बिल्कुल स्वाभाविक है; और घंटी बजाता। पंद्रह दिन बाद खाना तो नहीं रखा, सिर्फ घंटी बजाई, और कुत्ते की लार टपकने लगी! अब घंटी से कुत्ते की लार टपकने का कोई संबंध नहीं। कुत्ता कोई भक्त थोड़े ही है! न भक्त है, न भगवान है। घंटी बजा रहे हो, और वह लार टपका रहा है!

यह संयोग का सिद्धांत, उसने कहा कि दोनों का संयोग हो गया। लार टपकती थी, तब घंटी भी बजती थी, रोटी भी देखता था। देखता था और घंटी बजती थी। रोटी में और घंटी में संबंध हो गया। अब घंटी बजाना काफी है, लार टपकने लगती है। कोई भी चीज बेचनी हो, सुंदर स्त्री पहले खड़ी करो! कुछ भी अंट-शंट बेचना हो, सुंदर स्त्री खड़ी कर दो, फिर लार टपकने लगेगी! पहले सुंदर स्त्री पर टपकेगी, स्वभावतः। फिर लक्स टायलेट साबुन पर टपकेगी। फिर तुम बाजार गए साबुन खरीदने। दुकानदार पूछता है, कौन सा साबुन? एकदम तुम्हारे मुंह से निकल जाता है, लक्स टायलेट! फिर तुम नहीं सोचते कि क्यों? तुम यही सोचते हो कि बहुत सोच-विचार करके कह रहे हैं, लक्स टायलेट साबुन! मगर वे विज्ञापन काम कर रहे हैं। उन्होंने संयोग करवा दिया।
पहले जब पहली दफे बिजली के विज्ञापन बने, तो वे ठहरे रहते थे अक्षर; लक्स टायलेट लिखा रहता था। फिर मनोवैज्ञानिकों ने कहा, इससे भी ज्यादा कारगर यह होगा कि इनको बुझाओ-जलाओ, बुझाओ-जलाओ। और प्रयोग किए और पाया कि वह ठीक, वह ज्यादा काम करता है। क्योंकि अगर लक्स टायलेट साबुन बिजली के थिर अक्षरों में लिखा रहे, और तुम वहां से गुजरो, तो एक दफा पढ़ोगे, बस। अगर वह जले, फिर बुझे; फिर जले, फिर बुझे; तो जितनी बार जलेगा-बुझेगा, उतनी बार तुमको पढ़ना पड़ेगा! तुम कोई बुद्ध थोड़े ही हो कि चार फीट ही नीचे देख कर चलोगे! कि अपने को देखना ही नहीं ऊपर क्या हो रहा है! होने दो, बिकने दो लक्स टायलेट साबुन!
नहीं; नीचे कौन देखता है! अरे, सबकी आंखें ऊपर टिकी हुई हैं। वह जितनी बार जलेगा-बुझेगा, उतनी बार, लक्स टायलेट साबुन! लक्स टायलेट साबुन! वह उतर रहा है भीतर। बूंद-बूंद भीतर जा रहा है। धीरे-धीरे तुम्हारी आत्मा में लक्स टायलेट साबुन भर गया!
तो तुम्हें जो भी नैतिक धारणाएं हजारों साल तक समझाई गई हैं, चाहे कितनी ही असंभव हों, कितनी ही मूर्खतापूर्ण हों... ।
अब दत्ताबाल ने अपने लेख में लिखा है कि वीर्य को ऊपर चढ़ाने की एक बड़ी गहरी तरकीब है।
अब यह मूर्खतापूर्ण बात है। वीर्य को ऊपर कभी चढ़ाया जा सकता नहीं। क्योंकि चढ़ाने के लिए कोई व्यवस्था ही शरीर में नहीं है। कोई न तो नाड़ी है, न कोई स्नायुओं का जाल है। वीर्य को ऊपर चढ़ाया ही नहीं जा सकता, चाहे तुम कितना ही शीर्षासन करो; लाख करो शीर्षासन। अरे, टोंटी ही नहीं है भीतर कि वीर्य ऊपर चढ़ जाए! टोंटी भी तो होनी चाहिए। भीतर जाल भी तो होना चाहिए। डी.एच.लारेंस ने लिखा है कि वह अपने कुछ मित्रों को लेकर पेरिस की प्रदर्शनी दिखाने ले गया था। वे मित्र थे खानाबदोश अरब के। अब अरब में सबसे ज्यादा तकलीफ है पानी की। पेरिस की होटल! उन्हें किसी चीज में रस ही नहीं। न पेरिस देखने जाएं, न प्रदर्शनी देखने जाएं; दिन भर बाथरूम में घुसे रहें! बैठे फव्वारे के नीचे! लेटे टब में! बस, उनके लिए सबसे बड़ा गुलछर्रा वही था। रेगिस्तानी बेचारे, क्या करें!
जिस दिन जाने का दिन आया; सब सामान तो रख दिया गया जाकर कारों में, लेकिन वे जितने खानाबदोश थे, बादायून थे, वे सब नदारद! लारेंस ने थोड़ी देर रास्ता देखा और पूछा कि भई, वे गए कहां? उन्होंने कहा, वे सब बाथरूमों में घुसे हुए हैं!
वह भागा, ऊपर पहुंचा कि इसमें हम तो गाड़ी चूक जाएंगे! क्या कर रहे हो? दरवाजा खोलो! दरवाजा खोला, तो देख कर हैरान हुआ। वे सब के सब नल की टोंटियां निकालने की कोशिश कर रहे थे! पूछा, यह तुम क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा, ये टोंटियां तो हम न छोड़ेंगे! अरे, दाम लगते हों तो लग जाएं। ये तो बड़ी गजब की टोंटियां हैं! इन टोंटियों को ले जाएंगे हम तो अपने साथ। अपने घर में लगा लेंगे टोंटियों को। और जब खोला, पानी ही पानी! लारेंस ने कहा, पागलो! इन टोंटियों के पीछे नालियों का जाल है। ये टोंटियां अकेली काम न आएंगी, अगर तुम टोंटियां खोल कर भी ले गए। तो मैं तुमको बाजार से टोंटियां दिलवाए देता हूं, इनको खोलने के पीछे मत पड़ो। मगर उन टोंटियों से कुछ भी नहीं निकलेगा। उनके पीछे तो नलों का जाल है। जालों के पीछे दूर सरोवर है। बड़ा लंबा विस्तार है। वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता, तुम्हें सिर्फ टोंटी दिखाई पड़ रही है!

वीर्य को ऊपर चढ़ाना! पागल हो गए हो तुम? किसी शरीर-शास्त्री से तो पूछो! हमारे अजित सरस्वती से पूछो! वे तो गायनोकोलाजिस्ट हैं। वे तुम्हें बता सकेंगे कि वीर्य कैसे ऊपर चढ़ सकता है?
दत्ताबाल वीर्य को ऊपर चढ़ाने की बातें बता रहे हैं लोगों को! मगर ये सदियों से सुनी गई बातें हैं, तो लोगों को भरोसा आता है।
ये मूढ़तापूर्ण बातें हैं। वीर्य इत्यादि कोई ऊपर नहीं चढ़ता। हां, कामवासना रूपांतरित होती है। काम राम बन सकता है। लेकिन कोई वीर्य ऊपर नहीं चढ़ जाता। और चढ़ जाए, तो तुम्हारी खोपड़ी गंदी हो जाए!
समझो, खोपड़ी में वीर्य चढ़ गया किसी के! अब गए ये काम से। और यह खोपड़ी में वीर्य चढ़ जाएगा, तो कभी नाक से बहेगा, कभी आंख से आएगा, कभी कान से निकलेगा। इनकी हालत बड़ी खस्ता हो जाएगी! मक्खियां भिनभिनाएंगी! देवता तो दूर, भूत-प्रेत भी इनके आस-पास न रमेंगे। जो देखेगा, वही भागेगा दूर! सड़ जाएगा यह आदमी!
मगर व्यर्थ की और मूर्खतापूर्ण बातें अगर बहुत दिन तक प्रचारित की जाएं, तो पकड़ जाती हैं। और प्रचार करने वालों को तो कोई संकोच लगता ही नहीं!
एक अंग्रेज यात्रा पर आया हुआ था। उसने देखा हिमालय में बड़ी चर्चा है
एक साधु की कि सात सौ साल उसकी उम्र है। भीड़ लगी हुई थी। उसने देखा कि ज्यादा से ज्यादा सत्तर साल का हो सकता है--ज्यादा से ज्यादा। सात सौ साल? हद्द हो गई! और वह जड़ी-बूटी बेच रहा था, कि जो भी यह जड़ी-बूटी लेगा, वह भी सात सौ साल का हो जाएगा। यह जड़ी-बूटी गारंटी है, सात सौ साल तो जिंदा रखेगी ही, कम से कम; ज्यादा कोई भला जिंदा रह जाए। मैं सबूत हूं।
उसने कहा, कुछ पता लगाना चाहिए! भारतीय तो खरीद रहे थे, क्योंकि भारतीयों को पता वगैरह लगाने का तो हिसाब ही नहीं होता! श्रद्धा करना इनका नियम है। अब जब कह रहा है, तो वृद्ध आदमी है, ठीक ही कह रहा होगा। खरीद रहे थे जड़ी-बूटी।
अंग्रेज था वह, इतने जल्दी श्रद्धा नहीं कर सका। उसने देखा कि एक छोकरा उसकी जड़ी-बूटी बेचने में सहायता कर रहा है। तोल रहा है इत्यादि; पैसे इकट्ठे कर रहा है। उसने उस छोकरे को अलग बुलाया और पांच रुपए का नोट दिया और कहा, भइया, तू एक बात बता! तेरे गुरु की सच में कितनी उम्र है? उसने कहा कि भई, मैं नहीं कह सकता। मेरी तो कुल उम्र तीन सौ साल है! तीन
सौ साल से उनके साथ हूं। अब उनकी कितनी उम्र है, वे जानें!
वह छोकरा तो कोई बारह-तेरह साल का था! अंग्रेज ने तो अपना सिर ठोंक लिया। उसने कहा, हद्द हो गई। यह छोकरा भी बदमाश है! तीन सौ साल से, कह रहा है, इनके गुरु के साथ हूं। मैं क्या कह सकता हूं! सात सौ साल कहते हैं, तो होंगे। जरूर होंगे! वे पांच रुपए भी गए! यह छोकरा भी बदमाश है!
क्या आप दावे के साथ कह सकते हैं कि इस दवा के रगड़ने से सिर पर बाल उग आएंगे? चंदूलाल ने दवाफरोश से पूछा।
दावा कैसा हुजूर! पिछले हफ्ते एक साहब ने इस्तेमाल की। कल शाम मियां- बीबी में जूती-पैंजार हुई। मोहल्ले वालों ने सिर के बाल पकड़ कर दोनों को जुदा किया और सोचते ही रह गए कि कौन सा सर मियां का था और कौन सा बीबी का! सात दिन में!
पाखंड है इसलिए कि तुम असंभव को मूल्य बनाए हुए हो। आदमी को हमने इस देश में सामान्य होने का अवसर ही नहीं दिया। हमने उसे साधारण, प्राकृतिक होने की सुविधा ही नहीं दी। न हमने उसकी किसी चीज को अंगीकार किया जो प्राकृतिक थी। हमने मूल्य थोप दिए। असंभव मूल्य! उनको वह पूरा कर पाता नहीं बेचारा, तो क्या करे? अगर स्वीकार करे कि पूरा नहीं कर पाता, तो लोग हंसी-मजाक उड़ाते हैं। लोग कहते हैं, अरे, तुम आदमी हो कि पशु! हम तो पूरा कर रहे हैं, तुमसे क्यों पूरा नहीं होता?
तो उसे भी कहना पड़ता है कि पूरा कर रहा हूं। बिल्कुल पूरा कर रहा हूं। सिद्धांत बड़े ऊंचे हैं; बिल्कुल सही साबित होते हैं! यह उसको भी चेहरा बना कर रखना पड़ता है। और भीतर जो उसे करना है, करना होता है। इस तरह पाखंड पैदा होता है। पीछे के दरवाजे से एक जीवन, बाहर के दरवाजे से एक जीवन।

सरदार बिचित्तर सिंह अमृतसर के माई सेवा बाजार में अपने बालों के लिए कंघा खरीद रहे थे। दुकानदार ने एक जैसे दिखने वाले दो कंघों का दाम पच्चीस पैसे और पचास पैसे बताया। बिचित्तर सिंह ने पूछा कि दूसरे कंघे के पचास पैसे क्यों? दुकानदार ने कंघे का ऊपरी भाग दिखाते हुए कहा कि यह देखो, यहां छोटी कृपाण भी फिट की गई है।
बिचित्तर सिंह ने खुश होते हुए कहा, यार तू एक रुपया ले ले, मगर मैंनूं ओहू कंघा दे दो जिहदे विच कच्छा वी फिट होवे! फिर तो मजा ही मजा आ जाए!
अरे, सरदार होने के लिए पांच ही चीजें तो जरूरी हैं; पांच ककार। कंघा होना चाहिए; समझो एक-बटा-पांच सरदार हो गए! कच्छा हुआ, और एक अंग जुड़ गया! कृपाण हुई, फिर तो कहना ही क्या; और तीसरा अंग जुड़ गया! कड़ा हुआ, फिर तो क्या कहना; चार अंग जुड़ गए! अब बचा ही क्या! केश और होना चाहिए। अब जब कंघा ही है, तो केश बढ़ाने में क्या दिक्कत! पांच क हो गए पूरे, कि सिक्ख हो गए!
क्या सरल बात निकाल दी! और बिचित्तर सिंह ने बेचारे ने कुछ गलत बात न पूछी। उसने कहा, यह तो बड़े मजे की बात है। कंघा में तीन चीजें आ गईं; अब दो ही बचीं। अरे, दो-चार केश और लपेट लिए तो चौथी भी हो गई! और कंघा ही में एक कड़ा और पहना दिया, फिर कहना ही क्या! कंघा रहा जेब में कि सब चीजें पूरी हो गईं। सरदारी पूरी हो गई!
जब तुम व्यर्थ की बातों को आदर देना शुरू करोगे और सार्थक और प्राकृतिक जीवन को इनकार करोगे, तो पाखंड पैदा होता है।
अब तुम पूछते हो दयानंद, पाखंड कैसे जाए?
आज जा सकता है; अभी जा सकता है। मगर उसके साथ तुम्हें हिम्मत करनी होगी। तुम्हें स्वीकार करना पड़ेगा जीवन की सहजता को।
अब तुम कहते हो, इतनी काहिलता है, यह कैसे जाएगी?
यह काहिलता इसलिए है कि तुम्हें सिखाई गई है काहिलता। तुम्हें कहा गया है, परमात्मा के बिना इशारे के पत्ता नहीं हिलता! अरे, तो तुम क्यों हिलो! जब पत्ता ही नहीं हिलता। और जब उसको हिलाना होगा हिलाएगा! जब तक नहीं हिलाना है, तुम लाख कोशिश करो, हिला नहीं सकते! तो फिर कोशिश ही क्यों करनी? सब परमात्मा पर छोड़ कर बैठ गए हो, इसलिए काहिल हो।
जीवन कर्म है। और कर्म का त्याग हमने सिखाया लोगों को! हम कहते हैं, संन्यास का अर्थ है कर्म को छोड़ दो! और संन्यासी महात्मा है। मैं तुमसे कहता हूं, कर्म के साथ ध्यान को जोड़ दो। और संन्यास पूरा हो गया। कर्म को छोड़ना नहीं है; कर्म को ध्यान के साथ जोड़ना है। और तब यह काहिलता मिट जाएगी।
और यह इतनी सड़ांध जो दिखाई पड़ती है, यह इसीलिए है। जब कमल कमल न हो पाए,
तो कीचड़ ही रह जाती है। कीचड़ कमल हो जाए, तो सुगंध; और कमल कमल न हो पाए, कीचड़ ही रह जाए, तो दुर्गंध।
यह देश कीचड़ ही रह गया। और इस देश को कीचड़ बनाए रखने में तुम्हारे महात्माओं का हाथ है, तुम्हारे धर्मों का हाथ है, तुम्हारे तथाकथित नैतिक गुरुओं का हाथ है। और जब तक तुम इस सारी गुलामी से मुक्त न होओगे, इस देश के भाग्य का सूर्योदय नहीं हो सकता है।
लेकिन सब तुम्हारे हाथ में है। सूर्योदय हो सकता है। उसी की हम यहां चेष्टा में लगे हैं।

शोर, केवल शोर चारों ओर
दर्द होता जा रहा मुंहजोर
इस तरह भटका हुआ है आदमी
शून्य में लटका हुआ है आदमी
एक तिनके सी बची है जिंदगी सांस की डोर हुई कमजोर।
हर दिशा ने आचरण बदले
किस तरह बागी उमर सम्हले इस कदर पथरा गया है मन
भीगती है आंख की बस कोर।
एक पत्ता तक नहीं अपना

खेत और खलिहान हैं सपना
एक दिन आकर रहेगी रोशनी
आज कुहरे में ढंकी है भोर।
आज तो जरूर रात है, लेकिन सुबह हो सकती है।
आज इतना ही।